इस्लाम और वर्तमान युग की समस्याओं का समाधान

मिर्ज़ा ताहिर अहमद

ABOUT THE BOOK

Islam's Response to Contemporary Issues is a lecture delivered at the Queen Elizabeth II Conference Centre (London) by Ḥaḍrat Mirza Tahir Ahmad, Khalifatul Masīḥ IV[th], the Head of the worldwide Ahmadiyya Muslim Community. Based on Quranic teachings, the Speaker argues that:

- Swords can win territories but not hearts, force can bend heads but not minds;
- The role of women is not of concubines in harems nor a society imprisoned in the four walls of their homes;
- Richer nations provide aid with strings attached and yet the flow of wealth continues to be in the direction of the rich while the poorer sink deeper in the red;
- Religion does not need to be the predominant legislative authority in the political affairs of a state;
- Irrespective of the thawing of the Cold War, the issue of war and peace does not only hang by the thread of superpower relationship;
- Without God there can be no peace.

It also contains comprehensive discussion on interest; financial aid international relations; and the role of Israel, America and the United Kingdom in a new world order.

Its message is timeless and relates to the future prospects for peace. It is a compulsory read for non-Muslims as well as for those Muslims who have forgotten the true message of Islam.

इस्लाम
और
वर्तमान युग की समस्याओं
का
समाधान

हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद साहिब[रह.]
जमाअत अहमदिया के चतुर्थ ख़लीफ़ा

नाम पुस्तक - इस्लाम और वर्तमान युग की समस्याओं का समाधान
Name of Book Islam's Response to Contemporary Issues
लेखक - हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद साहिब
जमाअत अहमदिया के चतुर्थ ख़लीफ़ा
Author - Hazrat Mirza Tahir Ahmad
Khalifatul Masih IV
अनुवादक - अन्सार अहमद, बी. ए. बी. एड. मौलवी फ़ाज़िल
Translator - Ansar Ahmad. B.A.B.Ed. Hons. in Arabic
संस्करण वर्ष - प्रथम संस्करण हिन्दी, जनवरी 2013
Edition - 1st Edition in Hindi January 2013
संख्या - 1000
Quantity - 1000
प्रकाशक - नज़ारत नश्र-व-इशाअत, क़ादियान
ज़िला - गुरदासपुर (पंजाब)
Publisher - Nazarat Nashr-o-Ishaat, Qadian
Distt. Gurdaspur (Punjab)
मुद्रक : फ़ज़्ले उमर प्रिंटिंग प्रेस
क़ादियान - 143516
Printer : Fazle Umar Printing Press
Qadian - 143516

ISBN - 978-81-7912-279-2

प्राक्कथन

संसार में बहुत से धर्म पाए जाते हैं तथापि उन धर्मों और इस्लाम धर्म के मध्य अन्तर यह है कि इस्लाम के समस्त आदेश मानव-प्रकृति के अनुसार हैं।

परमेश्वर ने क़ुर्आन करीम में जहां मानव अस्तित्व में होने वाले परिवर्तनों को दृष्टिगत रखते हुए उसके लिए बहुत से क़ानून बनाए हैं वहां इस संसार को चलाने के लिए भी बहुत से आदेश जारी किए हैं। क़ुर्आन करीम की शिक्षा के संबंध में हमारा विश्वास है कि संसार के प्रत्येक युग में प्रकट होने वाली समस्याओं का समाधान इसी ईश्वरीय ग्रन्थ में विद्यमान है और इस्लाम का आधार इसी ग्रन्थ पर है। अत: हमारा यह दावा है कि संसार की प्रत्येक प्रकार की समस्याएं चाहे वे सामाजिक हों, राजनीतिक हों अथवा आर्थिक सब का समाधान इस्लाम ही कर सकता है।

जमाअत अहमदिया के चतुर्थ ख़लीफ़ा हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद साहिब[रह.] ने वर्तमान संसार को जिन कठिनाइयों और समस्याओं का सामना है को दृष्टिगत रखते हुए उनका इस्लामी शिक्षा की दृष्टि से समाधान प्रस्तुत किया है तथा आपने वर्तमान संसार में होने वाले परिवर्तनों को सामने रखते हुए उनके परिणामस्वरूप प्रकट होने वाली घटनाओं की ओर ध्यान दिलाया है।

आपने अपने अंग्रेज़ी भाषण में जो क्वीन एलीज़ाबेथ द्वितीय कान्फ्रेंस सेन्टर लन्दन में 24 फ़रवरी सन 1990 ई. में जिन तथ्यों पर प्रकाश डाला था वे उस समय प्रत्यक्षत: दिखाई भी नहीं दे रहे थे। आज समय गुज़रने के साथ-साथ उन का चित्र उभरता दिखाई दे रहा है। ये समस्याएं सामाजिक भी हैं और आर्थिक भी हैं तथा इन का संबंध

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से भी है। आज संसार शान्ति के नाम पर बड़ी तीव्रता के साथ विनाश की ओर दौड़ा जा रहा है। यदि संसार शान्ति का अभिलाषी है, विनाश से सुरक्षित रहना चाहता है तो समस्त देशों को राजनैतिक, धार्मिक, व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर भी इन सिद्धान्तों का पाबन्द होना पड़ेगा जिन्हें इस्लाम प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से इस पुस्तक का प्रत्येक विषय वर्तमान युग में प्रकट होने वाली समस्याओं का यथावश्यक समाधान प्रस्तुत करता है। इस पुस्तक से न केवल सामान्य जनता लाभान्वित हो सकती है अपितु विभिन्न देशों के नेता और शासक भी लाभ उठाते हुए विश्वशान्ति प्रक्रिया में सहायक हो सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी सन्दर्भ में मार्ग-दर्शन की भूमिका में है।

समय की आवश्यकता और परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए प्रथम बार इसका हिन्दी अनुवाद जमाअत अहमदिया के वर्तमान ख़लीफ़ा हज़रत मिर्ज़ा मसरूर अहमद साहिब की अनुमति से श्री अन्सार अहमद ने सुबोध और सरल हिन्दी में बहुत कम समय में बड़े परिश्रम और तन्मयता से किया है। आशा है जनहिताय यह प्रस्तुति भारत जैसे प्रगतिशील देश की जनता इससे लाभान्वित हो सकेगी। इस सन्दर्भ में जिन-जिन लोगों का सहयोग रहा है वे धन्यवाद के पात्र हैं। परमेश्वर उन्हें श्रेष्ठ प्रतिफल प्रदान करे। तथास्तु

विनीत हाफ़िज़ मख़दूम शरीफ़
नाज़िर नश्र-व-इशाअत
क़ादियान।

अनुवादक की ओर से

क़ुर्आन करीम की प्रत्येक सूरह "बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम" से आरंभ होती है सिवाए सूरह अत्तौब: के। हमारे निकट यह क़ुर्आन का भाग है, इसलिए हर सूरह की पहली आयत में इसकी गणना होती है तथापि क़ुर्आन करीम को प्रकाशित करने वाले प्रकाशकगण इसकी सूरह की प्रथम आयत के तौर पर गणना नहीं करते। इसलिए यदि अध्ययनकर्ता को इस पुस्तक में लिखित किसी आयत का हवाला न मिले तो कथित आयत संख्या में से एक घटा दिया जाए। उदाहरणतया सूरह अलबक़रह आयत संख्या 286 जिसका इस पुस्तक में उल्लेख है क़ुर्आन करीम की कुछ प्रतियों में इसकी संख्या 285 होगी। अरबी की मूल इबारत (Arabic Text) के अनुवाद में यथोचित कुछ अतिरिक्त शब्दों को भी सम्मिलित किया गया है ताकि अर्थ स्पष्ट हो जाए। इन अतिरिक्त शब्दों तथा मूल अनुवाद की लेखन शैली में कोई अन्तर नहीं है। हदीसों की पुस्तकों के चूंकि बहुत से संस्करण मौजूद हैं इसलिए उद्धरण प्रस्तुत करते हुए केवल पुस्तक का नाम दिया गया है। संक्षेप को दृष्टिगत रखते हुए जिल्द (Volume) और बाब (Chapter) को उद्धृत नहीं किया गया।

- हज़रत मुहम्मद के नाम के आगे स.अ.व., किसी बुज़ुर्ग के नाम के आगे रह. तथा हज़रत मुहम्मद साहिब[स.अ.व.] के साथी जिन्हें सहाबा कहा जाता है के नाम के आगे रज़ि. का शब्द प्रयोग किया गया है। इसका क्रमश: पूर्ण रूप है सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम (परमेश्वर उन पर शान्ति और कृपा करे), रह. - रहिमहुल्लाह (परमेश्वर उस पर दया करे), रज़ि. रज़ियल्लाहो अन्हो (परमेश्वर उन से प्रसन्न हो)
- कहीं कहीं अनुवाद में आवश्यकतानुसार अरबी का मूल शब्द

ही रखा गया है परन्तु साथ ही उसकी सरल शब्दों में व्याख्या भी कर दी गई है।

- अनेक स्थानों पर **फ़रमाया** शब्द प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ है - **कहा।**
- **कुफ़्र** - परमेश्वर और उसके पैग़म्बरों का इनकार करना
- **फ़िक़्ह** - इस्लामी धार्मिक विधान की जानकारी देने वाला शास्त्र।
- भाषा को सरल और सुबोध रखने का प्रयास किया गया है। कहीं-कहीं इस्लामी धार्मिक पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। संभव है यत्र-तत्र भाषा-प्रवाह में बाधा का आभास खटके। इसी प्रकार भाषा की प्रांजलता तथा बाह्य साज-सज्जा के दोषों पर गहरी दृष्टि रखने के स्थान पर हंसवृत्ति रखने वाले विज्ञ पाठकों तथा अध्ययनकर्ताओं से आशा की जाती है कि वे इसमें निहित महान सन्देश तथा उद्देश्य पर विशेष रूप से ध्यानस्थ होने की कृपा करेंगे।

परिचय

जमाअत अहमदिया की नींव हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब क़ादियानी मसीह मौऊद-व-महदी मा'हूद अलैहिस्सलाम ने 1889 ई. में रखी थी। आपने परमेश्वर से सूचना पाकर यह दावा किया कि आप ही वह मौऊद मसीह और मेहदी हैं जिनके अन्तिम युग में आने की भविष्यवाणियां संसार के सभी बड़े धर्मों की पवित्र पुस्तकों में मौजूद हैं। जमाअत अहमदिया गत सौ वर्ष से अधिक समय से सम्पूर्ण विश्व में इस्लाम के प्रचार संबंधी प्रयासों में व्यस्त है।

हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद साहिब[रह.] का जन्म 1928 ई. में क़ादियान में हुआ। स्नातक की परीक्षा पूर्ण करने के पश्चात 1953 ई. में जामिया अहमदिया रब्वाह से 'शाहिद' की उपाधि प्राप्त की। 1955 ई. से 1957 ई. तक लन्दन स्कूल ऑफ़ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़ में शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात आप अहमदियत के केन्द्र रब्वाह में विभिन्न प्रमुख और केन्द्रीय पदों पर आसीन रह कर सेवारत रहे।

10 जून 1982 ई. को परमेश्वर ने आपको ख़िलाफ़त के स्थान पर सुशोभित करते हुए हज़रत मसीह मौऊद अलैहिस्सलाम का ख़लीफ़ा बना दिया। आपके 21 वर्षीय ख़िलाफ़त के युग में इस्लाम अहमदियत की उन्नति के नए मार्ग प्रशस्त हुए। विश्व की विभिन्न भाषाओं में क़ुर्आन करीम के अनुवाद तथा अन्य इस्लामी साहित्य का प्रकाशन, मुस्लिम टैलीविज़न अहमदिया इन्टरनैशनल (M.T.A) का उद्घाटन आपकी विशेष उपलब्धियां हैं।

हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद साहिब[रह.] धार्मिक और सांसारिक ज्ञानों का एक सागर थे। आपने धार्मिक विषयों पर हज़ारों भाषण दिए। वर्तमान युग की नितान्त महत्त्वपूर्ण और ज्वलंत समस्याओं के संबंध में असंख्य प्रश्नों के उत्तर दिए। अब भी आपके भाषण और प्रश्नोत्तर की

सभाओं को मुस्लिम टैलीविज़न अहमदिया इन्टरनैशनल (M.T.A.) पर सम्पूर्ण विश्व में देखा और सुना जा सकता है। आप[रह.] ने उर्दू और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में 20 से अधिक पुस्तकों की रचना की। जिनमें से कुछ के कई संस्करण एवं कई भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। अंग्रेज़ी भाषा में आपकी एक महान प्रसिद्धि प्राप्त और युग-निर्माण करने वाली रचना "Revelation, Rationality, Knowledge and Truth" अर्थात "इल्हाम, बुद्धि, ज्ञान और सच्चाई" 1998 ई. में लन्दन से प्रकाशित हुई।

आप[रह.] ने विभिन्न देशों में यूनीवर्सिटियों और विद्वानों की सभाओं में अनेक विषयों पर भाषण दिए। प्रस्तुत पुस्तक "इस्लाम और वर्तमान युग की समस्याओं का समाधान" आपके उस अंग्रेज़ी भाषण का हिन्दी अनुवाद है जो 1989 ई. में जमाअत अहमदिया की स्थापना पर 100 वर्ष पूरे होने पर शत वर्षीय जुबली के आयोजन पर 24 फ़रवरी 1990 को लन्दन में क्वीन एलीज़ाबेथ द्वितीय कान्फ्रेंस सेन्टर में दिया गया। इस भाषण को सुनने के लिए विद्वान वर्ग से संबंध रखने वाले 800 प्रतिष्ठित अतिथि सम्मिलित हुए। उनमें राजनीतिज्ञ, पत्रकार, प्रोफेसर, शिक्षकगण, धर्मशास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान, अरबी भाषाविद तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों से संबद्ध आदरणीय महिलाएं एवं पुरुष सम्मिलित थे।

तत्कालीन जमाअत अहमदिया लन्दन के अमीर आदरणीय आफ़ताब अहमद ख़ान साहिब (स्वर्गीय) ने अतिथियों का अभिनन्दन किया। आदरणीय एडवर्ड मॉरटीमर (Edward Mortimer) ने इस आयोजन को अपनी अध्यक्षता से सुशोभित किया। जबकि इस महत्त्वपूर्ण भाषण के पश्चात संसद सदस्य आदरणीय ह्यूगो समरसन (Hugo Summerson) ने अपनी कृतज्ञतापूर्ण भावनाओं को प्रकट किया। तत्पश्चात प्रश्नोत्तर की एक संक्षिप्त कांफ्रेंस हुई।

इस प्रकार के जनसमारोहों में सामान्यतया भाषणों के लिए जितना समय निर्धारित किया जाता है उसमें ऐसे विशाल विषय को यथोचित

वर्णन करना संभव नहीं होता, परन्तु हज़रत इमाम जमाअत अहमदिया[रह.] ने संक्षिप्त समय के बावजूद इस विषय पर उचित तौर पर बहस की है।

यह भाषण "Islam's Response to Contemporary Issues" के नाम से 1992 ई. में अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित हो चुका है। इस भाषण में जिन बातों पर हज़रत इमाम जमाअत अहमदिया ने प्रकाश डाला समय व्यतीत होने के साथ उनका महत्त्व और भी स्पष्ट होता जा रहा है। आपकी दूरदर्शी दृष्टि ने भविष्य की जिन संभावनाओं एवं ख़तरों की ओर संकेत किया था वे आश्चर्यजनक तौर पर सत्य सिद्ध हो रहे हैं। उदाहरणतया साम्यवाद की अवनति के पश्चात पूर्वी यूरोप के देशों में महान परिवर्तन हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में वही भूमिका निभा रही है जिसकी ओर आप[रह.] ने संकेत किया था। ब्रिटेन में ब्याज दर की नीति का परिणाम आर्थिक दुर्दशा के रूप में सामने आया है। यह समस्त बातें और वास्तव में इनके अतिरिक्त अन्य बहुत सी बातें इस भाषण में समय से पूर्व विस्तार के साथ वर्णन कर दी गई थीं। हज़रत इमाम जमाअत अहमदिया[रह.] ने 1990 ई. के प्रारंभ में जब यह भाषण दिया था उस समय अभी इन समस्त परिवर्तनों के लक्षण विश्व-क्षितिज पर प्रकट नहीं हुए थे। बहुत कम ऐसा हुआ है कि समय से पूर्व विश्व को इतनी स्पष्ट चेतावनी दे दी गई हो। आप का यह भाषण जिस संदेश पर आधारित है उसमें स्थायी महत्त्व है तथा उसका संबंध विश्व-शान्ति के भविष्य से है। जो भविष्यवाणियां इस भाषण में मौजूद हैं यदि उनमें से अधिकांश को भविष्य में प्रकट होने वाली घटनाओं ने सत्य कर दिखाया जैसा कि कुछ सिद्ध भी हो चुकी हैं। तो फिर विश्व के नेताओं को चाहिए कि वे इस सन्देश के महत्त्व को समझें तथा विश्व-व्यवस्था का नवनिर्माण करते हुए इससे भरपूर लाभ प्राप्त करें।

परमेश्वर करे ऐसा ही हो। तथास्तु।

विषय सूची

भूमिका

اشهد ان لا اله الا الله وحده لا شريك له و اشهد ان محمد عبده و رسوله
اما بعدُ فاعوذ بالله من الشيطن الرجيم بسم الله الرحمن الرحيم

माननीय अध्यक्ष श्री एडवर्ड मार्टीमर सा., आदरणीय अतिथिगण !

मैं आप सब मनीषियों और विद्वजनों का कृतज्ञ हूं कि आप समस्त महानुभाव आज के आयोजन में पधारे। आज मैं जिस विषय पर भाषण देना चाहता हूं वह मेरे लिए एक चुनौती के समान है। यह एक बहुत विशाल और सर्वव्यापी विषय है? मुझे आशंका है कि कदाचित इस सीमित समय में इस विषय का यथोचित प्रतिपादन न हो सके, तथापि मैं दो आधारभूत प्रश्न दृष्टिगत रख कर अपने इस भाषण का आरंभ करता हूं।

प्रथम प्रश्न तो यह है कि धर्म ऐसी परिस्थितियों में हमारा क्या मार्ग-दर्शन कर सकता है?

शांति का अभाव

वर्तमान युग की सब से महत्त्वपूर्ण समस्या अमन और शान्ति का अभाव है। भौतिक उन्नति की दृष्टि से संयुक्त तौर पर आज का मानव बहुत उच्च स्थान तक जा पहुंचा है। यह वह चहुंमुखी उन्नति है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान और टेक्नालोजी की आश्चर्यजनक उन्नति के कारण संभव हुई है। इस युग में इस विज्ञान संबंधी उन्नति के फल विशेषकर उन देशों के भाग में आए हैं जो प्रथम और द्वितीय संसार के देश कहलाते हैं तथापि तृतीय संसार के देशों ने भी एक सीमा तक उन से लाभ प्राप्त किया है यहां तक कि विज्ञान की उन्नति का प्रकाश संसार के उन नितान्त अज्ञान और असभ्य देशों तक भी जा पहुंचा है

जहां आज भी लोग प्राचीन काल जैसी परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। विकलता, व्याकुलता और भय की दशा बढ़ती जा रही है। एक अंधकारमय भविष्य की भयावह प्रतिच्छाया सघन होती जा रही है। मानव को अतीत से जो कुछ विरसे में प्राप्त हुआ है उस पर से विश्वास उठ रहा है, असंतोष है कि बढ़ता ही जा रहा है।

विश्व-शांति के लिए इस्लाम का योगदान

इस्लाम का शाब्दिक अर्थ अमन है। यदि देखा जाए तो इस एक शब्द में इस्लाम की समस्त शिक्षाएं परम सुन्दरता और व्यापकता के साथ आभामय दिखाई देती हैं। निःसन्देह इस्लाम शान्ति का धर्म है। उसकी शिक्षाएं मानव इच्छाओं तथा जिज्ञासाओं और अभिरुचियों के समस्त क्षेत्रों में अमन और शान्ति का आश्वासन देती हैं।

अतः आज के भाषण के लिए मैंने कुछ ऐसी समस्याओं का चयन किया है जिन के संबंध में विश्व को मार्ग–दर्शन की नितान्त आवश्यकता है। और वे ये हैं :–

1. विश्व के समस्त धर्मों के मध्य अमन और शान्ति का समन्वय
2. सामाजिक शान्ति
3. सामाजिक आर्थिक शान्ति
4. आर्थिक शान्ति
5. राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक शान्ति
6. व्यक्तिगत शान्ति

अध्याय - 1

विश्व के समस्त धर्मों के मध्य अमन और शान्ति का सामंजस्य

- धार्मिक मूल्यों को निरर्थक तथा अनावश्यक समझ लिया गया है।
- नबी (अवतार) प्रत्येक जाति में आते रहे हैं।
- पद दृष्टि से समस्त नबी (अवतार) समान हैं।
- क्या पद में समानता होते हुए श्रेणी और स्तर में अन्तर हो सकता है?
- मोक्ष (मुक्ति) पर किसी एक धर्म का एकाधिकार नहीं हो सकता।
- धर्मों के मध्य सामंजस्य तथा परस्पर आदर भाव का विकास
- धर्मों के सार्वभौमिक होने का दृष्टिकोण
- इस्लाम एक सार्वभौमिक धर्म है।
- धार्मिक प्रचार के माध्यम : ज़ोर ज़बरदस्ती का पूर्णतया निषेध।
- कौन सा धर्म शेष रहेगा? (शाश्वत मैत्री)
- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- स्वतंत्रता की सीमाएं
- धार्मिक पवित्रता का मर्दन
- धर्मों का परस्पर सहयोग
- निष्कर्ष

اِنْ اَنْتَ اِلَّا نَذِيْرٌ ○ اِنَّآ اَرْسَلْنٰكَ بِالْحَقِّ بَشِيْرًا وَّنَذِيْرًا ؕ وَاِنْ مِّنْ اُمَّةٍ اِلَّا خَلَا فِيْهَا نَذِيْرٌ ○

(सूरह फ़ातिर 24, 25)

अनुवाद *:- तू तो मात्र एक डराने वाला है। निश्चय ही हमने तुझे सत्य के साथ शुभ संदेश देने वाला और डराने वाला बना कर भेजा है और कोई जाति नहीं परन्तु उसमें कोई डराने वाला अवश्य गुज़रा है।*

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَالَّذِيْنَ هَادُوْا وَالصّٰبِئُوْنَ وَالنَّصٰرٰى مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ○

(सूरह फ़ातिर 24, 25)

अनुवाद *- निश्चय ही वे लोग जो ईमान लाए तथा जो यहूदी हुए, नक्षत्रपूजक तथा ईसाई, जो भी ईश्वर पर तथा अन्तिम दिवस पर ईमान लाया और शुभ कर्म किए ; उन पर कोई भी भय नहीं और न वे कोई संताप करेंगे।*

धार्मिक मूल्यों को अनावश्यक समझ लिया गया है

आज का धार्मिक संसार एक विचित्र विरोधाभास का शिकार हो चुका है। एक ओर तो सामान्यतया धर्म से विमुखता बढ़ रही है परन्तु दूसरी ओर कुछ पहलुओं से धर्म की पकड़ सुदृढ़ होती चली जा रही है। लोगों के हृदयों, मानसिक चेतनाओं तथा व्यावहारिक जीवन पर धर्म की यथार्थता क्षीण होती जा रही है परन्तु इसके साथ ही धार्मिक कट्टरपन को नए सिरे से धारण किया जा रहा है। सहिष्णुता का अभाव है तथा धार्मिक कट्टरवाद सार्वजनिक हो रहा है। दूसरी ओर यदि संसार के सामान्य नैतिक मापदण्ड को देखा जाए तो स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि धर्म अवनति की ओर अग्रसर है, अपराध तीव्रता से बढ़ रहे हैं, सत्य संसार से समाप्त होता जा रहा है, न्याय और इन्साफ़ दुर्लभ होता दिखाई दे रहा है, व्यक्ति समाज की ओर से दिए गए उत्तरदायित्वों की अवहेलना कर रहा है, स्वार्थपरायणता पर आधारित व्यक्तिवाद बल पकड़ता जा रहा है। ये सामाजिक दोष उन देशों में भी है जो धार्मिक होने के दावेदार हैं, इसके अतिरिक्त अन्य बहुत सी बुराइयां इस नैतिक-पतन की द्योतक हैं जो अब विश्व व्यवस्था का भाग बन चुकी हैं। यदि नैतिक मूल्य ही धर्म का प्राण हैं तो उन मूल्यों के शनैः शनैः पतन का अनिवार्य परिणाम यही है कि धर्म के बाह्य ढांचे और शरीर का नव-निर्माण तो हो रहा है परन्तु उस शरीर से आत्मा निकल चुकी है। अतः वास्तविकता यही है कि धर्म का यह पुनर्जीवन अपने अन्दर वास्तविक जीवन का कोई लक्षण नहीं रखता। यह तो वैसा ही है जैसा दक्षिणी अफ्रीका के कुछ क़बीलों में जादू के ज़ोर से शव को चलता-फिरता दिखाए जाने की कल्पना पाई जाती है।

इसके साथ-साथ कुछ स्थानों पर लम्बे समय तक अवहेलना तथा किसी उत्साहवर्धक उन्नति के अभाव के कारण धार्मिक प्रवृत्ति रखने

वाले लोगों में एक प्रकार की उदासीनता और उकताहट जन्म ले रही है, जिन चमत्कारों की आशा वे लगाए बैठे हैं वह पूरी होती दिखाई नहीं देतीं। वे चाहते हैं कि विश्व की घटनाएं किसी अद्‌भुत अलौकिक शक्ति द्वारा उनकी इच्छानुकूल परिवर्तित हो जाएं, परन्तु ऐसा विचित्र और अद्‌भुत चमत्कार यथार्थ संसार में उन्हें कहीं दिखाई नहीं देता, वे अद्‌भुत भविष्यवाणियों को पूर्ण होते देखने के अभिलाषी हैं ताकि उनके विश्वास में उन्नति हो परन्तु उनकी कोई अभिलाषा साकार होती दिखाई नहीं देती। यही वे लोग हैं जो नित्य नए गिरोहों (cults) के निर्माण में सहयोग दे रहे हैं, उनकी निराशा ऐसे गिरोहों के विकास के लिए अत्यन्त लाभकारी होती हैं। वास्तव में किसी नवीन वस्तु की खोज उस शून्य को भरने के लिए हुआ करती है जो अतीत से पलायन के कारण जन्म लेता है।

इन विनाशकारी रुझानों के अतिरिक्त विश्व-शान्ति के लिए भी धार्मिक कट्टरवाद का नए सिरे से जीवंत होना एक ख़तरा बना हुआ है ऐसी कट्टर आस्थाओं के कारण वातावरण विषाक्त हो जाता है जो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के प्रचार और उन पर स्वतंत्रतापूर्वक विचार-विमर्श के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध होता है। द्वितीय यह कि भ्रष्ट राजनीतिज्ञ ऐसी ज्वलंत परिस्थितियों से अनुचित लाभ प्राप्त करने पर सदैव कटिबद्ध रहते हैं। विभिन्न धर्मों के मध्य सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे विवाद ओर मतभेद इस अग्नि को और अधिक भड़काने का काम करते हैं। धर्म के नाम पर होने वाले इस सम्पूर्ण उपद्रव से स्वयं धर्म का सौन्दर्य भी कलुषित होता चला जा रहा है इसमें विश्व-मीडिया का भी एक महत्त्वपूर्ण रोल है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि मीडिया आज़ाद है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है अपितु उन का कन्ट्रोल पार्श्व में काम करने वाले कुछ अन्य हाथों में है, इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि ये विश्व-समस्याओं में एक स्वतंत्र और निष्पक्ष भूमिका निभाते हैं। एक देश जहां एक धर्म के अनुयायी भारी संख्या में हों वहां का मीडिया दूसरे धर्म के विरुद्ध युद्ध

में सम्मिलित हो जाता है इस प्रकार अल्प संख्यक धर्म के रूप को और भी अधिक बिगाड़ कर प्रस्तुत करता है जिससे वस्तु-स्थिति जटिल से जटिलतम होती चली जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस झगड़े और फ़साद का प्रथम शिकार स्वयं धर्म होता है।

धार्मिक जगत में आज जो कुछ हो रहा है वास्तव में मैं उसके संबंध में बहुत चिन्तित और परेशान हूं। आज इस बात की त्वरित आवश्यकता है कि धर्मों के मध्य व्याप्त कुधारणाओं को दूर करने के लिए ठोस और गंभीरतापूर्ण प्रयास किए जाएं। मैं विश्वास रखता हूं कि इस्लाम ही सबसे अधिक उत्तम रूप में तथा हमारी आवश्यकताओं को यथोचित रंग में पूर्ण करने की योग्यता रखता है।

मैंने इस विषय का कई भागों में विभाजन किया है ताकि बात अत्यन्त सरल और बोधगम्य हो जाए उदाहरणतया एक ऐसे धर्म के लिए जो विश्व-शान्ति को स्थापित करने में एक सकारात्मक भूमिका अदा कर सकता है (और जिसमें विश्व स्तर पर संयुक्त करने की योग्यता भी विद्यमान है) आवश्यक है कि वह पहले स्वयं धर्म की सार्वभौमिकता पर विश्वास रखता हो। धर्म की सार्वभौमिकता से अभिप्राय यह है कि समस्त मानव एक परमात्मा की सृष्टि हैं चाहे वे किसी भी रंग और जाति से संबंध रखते हों तथा विश्व के किसी भी देश में रहते हों। चूंकि उनका परमेश्वर एक है इसलिए वे समस्त इस बात में समान रूप से अधिकार रखते हैं कि उन्हें ईश्वरीय मार्ग-दर्शन प्रदान किया जाए। यदि परमेश्वर ने कभी किसी एक जाति की ओर वह्यी (ईशवाणी) उतारी है तो फिर एक विश्वव्यापी धर्म को स्वीकार करना चाहिए कि जहां तक अधिकार का प्रश्न है परमेश्वरीय वाणी प्रत्येक जाति में उतर सकती है।

अब तनिक विचार करके देखिए कि यह दृष्टिकोण सत्य पर

किसी एक धर्म के आधिपत्य की कल्पना का किस प्रकार सिरे से ही बहिष्कार करता है। समस्त धर्मों को यह अधिकार है कि यह दावा करें कि हमारे पास कोई ईश्वरीय सत्य है। उन धर्मों के नाम और आस्थाएं चाहे कुछ भी हों, विश्व में वे जहां कहीं भी हों अथवा मानव-इतिहास के किसी भी काल से संबंध रखते हों उन्हें यह अधिकार प्राप्त है कि वे अपने अन्दर इल्हामी सच्चाइयां विद्यमान होने के दावेदार हों तथा यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि आस्थाओं और शिक्षाओं के मतभेद के बावजूद समस्त धर्मों का उद्गम एक ही है। वह स्वच्छन्द सर्व शक्ति सम्पन्न परमेश्वर जिसने पृथ्वी के किसी एक भाग में एक धर्म को भेजा, अनिवार्य है कि उस परमेश्वर ने पृथ्वी के अन्य भागों तथा विभिन्न युगों के लोगों की धार्मिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने की व्यवस्था की हो। बिल्कुल यही वह सन्देश है जो क़ुर्आन करीम ने सम्पूर्ण विश्व को दिया है।

पैग़म्बर प्रत्येक जाति में अवतरित होते रहे हैं

नुबुव्वत की इस सार्वभौमिकता के बारे में क़ुर्आन करीम फ़रमाता है:-

وَلَقَدْ بَعَثْنَا فِيْ كُلِّ اُمَّةٍ رَّسُوْلًا اَنِ اعْبُدُوا اللّٰهَ وَاجْتَنِبُوا الطَّاغُوْتَ ۚ

(सूरह अन्नहल - 37)

अनुवाद - *और निश्चय ही हमने प्रत्येक उम्मत में एक पैग़म्बर भेजा कि परमेश्वर की उपासना करो और मूर्तियों से पृथक हो जाओ।*

तथा क़ुर्आन करीम हज़रत मुहम्मद[स.] को सम्बोधित करते हुए यह घोषणा भी करता है कि केवल आप ही रसूल नहीं। अत: फ़रमाता है :-

وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلًا مِّنْ قَبْلِكَ مِنْهُمْ مَّنْ قَصَصْنَا عَلَيْكَ وَمِنْهُمْ مَّنْ لَّمْ نَقْصُصْ عَلَيْكَ ؕ

(सूरह अलमोमिन - आयत 79)

अनुवाद :- *और निश्चय ही हम ने तुझे से पूर्व भी पैग़म्बर भेजे थे। कुछ उनमें से ऐसे थे जिनकी हमने तुझे से चर्चा कर दी है और कुछ उनमें से ऐसे थे जिन की हमने तुझ से चर्चा नहीं की।*

क़ुर्आन करीम पुन: आप[स.] को स्मरण कराते हुए फ़रमाता है -

اِنْ اَنْتَ اِلَّا نَذِيْرٌ ○ اِنَّآ اَرْسَلْنٰكَ بِالْحَقِّ بَشِيْرًا وَّنَذِيْرًا ؕ وَاِنْ مِّنْ اُمَّةٍ اِلَّا خَلَا فِيْهَا نَذِيْرٌ ○

(सूरह फ़ातिर - आयत 24, 25)

अनुवाद :- तू तो मात्र एक होशियार करने वाला है। निश्चय ही हम ने तुझे सत्य के साथ शुभ संदेश देने वाला और होशियार करने वाला बना कर भेजा है तथा कोई जाति नहीं परन्तु उसमें कोई होशियार करने वाला गुज़रा है।

क़ुर्आन करीम की इन आयतों से भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम अन्य धर्मों की अवहेलना करके सत्य पर अपने आधिपत्य का कदापि दावा नहीं करता अपितु स्पष्ट और निश्चित तौर पर यह घोषणा करता है कि ख़ुदा तआला ने संसार के समस्त देशों और समस्त युगों में अपने रसूल भेजे हैं ताकि लोगों की धार्मिक और आध्यात्मिक आवश्यकताएं पूर्ण हो सकें। अतः यह रसूल (अवतार) अपनी-अपनी जातियों तक परमेश्वर का सन्देश पहुंचाते रहे हैं।

पद की दृष्टि से समस्त पैग़म्बर समान हैं

प्रश्न यह उठता है कि समस्त लोगों के सुधार के लिए विभिन्न युगों और देशों में जिन नबियों (अवतारों) का आगमन होता रहा है क्या वे अपने पद की दृष्टि से समान हैं? क़ुर्आन करीम की दृष्टि से समस्त नबी परमेश्वर की ओर से ही आते रहे हैं। परमेश्वर के आदेशों को कार्यान्वित करने का जो अधिकार उन्हें प्राप्त होता है सारे नबी (अवतार) उसे पूर्ण दृढ़ता और विश्वास के साथ समान रूप से प्रयोग करते हैं। किसी मनुष्य को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह नबियों के मध्य किसी प्रकार का कोई अन्तर उचित समझे। समस्त अवतार तथा उनके द्वारा लाए गए सन्देश को विश्वसनीय स्वीकार करना अनिवार्य है।

विश्व-धर्मों, उनके प्रवर्तकों तथा अन्य समस्त अवतारों के संबंध में इस्लाम की यह शिक्षा विभिन्न धर्मों के मध्य समन्वय और एकता का

वातावरण पैदा करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह सिद्धान्त कि प्रत्येक अवतार पर अवतरित होने वाली ईशवाणी (वह्यी) चूंकि एक ही परमात्मा की ओर से है, इसलिए समान रूप से सम्मान योग्य है। धर्मों को परस्पर निकट लाने का अत्यन्त प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हो सकता है। इससे अन्य धर्मों के अवतारों तथा उनकी ईशवाणी के संबंध में विरोधी भावनाएं सम्माननीय भावनाओं में परिवर्तित हो जाती हैं और क़ुर्आन करीम का इस समस्या पर यही स्पष्ट और तर्कपूर्ण दृष्टिकोण है। अतः फ़रमाया -

اٰمَنَ الرَّسُوْلُ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِ مِنْ رَّبِّهٖ وَالْمُؤْمِنُوْنَ ؕ كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ ۟ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْ رُّسُلِهٖ ۟ وَقَالُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ٚ غُفْرَانَكَ رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ○

(सूरह अलबक़रह - 286)

अनुवाद - *रसूल उस पर ईमान ले आया जो उस के रब्ब की ओर से उसकी ओर उतारा गया और मोमिन भी (उनमें से) प्रत्येक ईमान ले आया परमेश्वर पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी पुस्तकों पर तथा उसके रसूलों (अवतारों) पर (यह कहते हुए) कि हम उसके अवतारों में से किसी के मध्य अन्तर नहीं करेंगे तथा उन्होंने कहा - कि हमने सुना और हमने पालन किया, तेरी क्षमा के अभिलाषी हैं हे हमारे प्रतिपालक ! और तेरी ओर ही लौट कर जाना है।*

पुनः फ़रमाता है -

اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَرُسُلِهٖ وَيُرِيْدُوْنَ اَنْ يُّفَرِّقُوْا بَيْنَ اللّٰهِ وَرُسُلِهٖ وَيَقُوْلُوْنَ نُؤْمِنُ بِبَعْضٍ وَّنَكْفُرُ بِبَعْضٍ ۙ وَّيُرِيْدُوْنَ اَنْ يَّتَّخِذُوْا بَيْنَ ذٰلِكَ

سَبِيْلًا ۝ أُولَٰٓئِكَ هُمُ الْكٰفِرُوْنَ حَقًّا ۚ وَأَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ۝
وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِاللّٰهِ وَرُسُلِهٖ وَلَمْ يُفَرِّقُوْا بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ اُولٰٓئِكَ سَوْفَ
يُؤْتِيْهِمْ اُجُوْرَهُمْ ۗ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ۝

(सूरह अन्निसा - 151 से 153)

अनुवाद - *निश्चय ही वे लोग जो परमेश्वर और उसके अवतारों का इन्कार करते हैं और चाहते हैं कि परमात्मा और उसके अवतारों के मध्य अन्तर करें तथा कहते हैं कि हम कुछ पर ईमान लाएंगे और कुछ का इन्कार कर देंगे तथा चाहते हैं कि इसके मध्य का कोई मार्ग धारण करें। यही लोग हैं जो पक्के काफ़िर हैं और हमने काफ़िरों के लिए अपमानित करने वाला अज़ाब तैयार कर रखा है, तथा वे लोग जो परमेश्वर और उसके अवतारों (रसूलों) पर ईमान लाए तथा उनमें से किसी के मध्य अन्तर न किया ; यही वे लोग हैं जिन्हें वह (परमात्मा) अवश्य उनके प्रतिफल प्रदान करेगा। परमेश्वर अत्यन्त क्षमा करने वाला (और) बारम्बार दया करने वाला है।*

पद में समानता के बावजूद नबियों की श्रेणी और स्तर में अन्तर हो सकता है

यदि समस्त अवतार अपने पद की दृष्टि से समान हैं तो क्या यह आवश्यक है कि वे श्रेणी की दृष्टि से भी समान हों ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि अवतार (पैग़म्बर) अपने व्यक्तिगत गुणों और कर्त्तव्यों को कार्यान्वित करने की पद्धति में कई दृष्टि से परस्पर भिन्न हो सकते हैं। परमेश्वर से सानिध्य की दृष्टि से परमेश्वर की दृष्टि में अवतारों और रसूलों की श्रेणियों में अन्तर हो सकता है। इस बात की पुष्टि

बाइबल, क़ुर्आन तथा अन्य ग्रन्थों में वर्णित अवतारों के इतिहास के अध्ययन से भली भांति हो जाती है।

क़ुर्आन करीम इस बात को स्वीकार करता है कि पद में बराबर होने के बावजूद अवतारों की श्रेणियों में अन्तर हो सकता है परन्तु यह ऐसा अन्तर नहीं जिसके कारण विभिन्न धर्मानुयायी परस्पर एक दूसरे के शत्रु हो जाएं। क़ुर्आन करीम जहां यह घोषणा करता है कि समस्त अवतार ईश्वर की ओर से एक समान प्रमाणित सन्देश लेकर आए हैं वहां यह घोषणा भी करता है कि -

تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۘ مِنْهُمْ مَّنْ كَلَّمَ اللّٰهُ وَرَفَعَ بَعْضَهُمْ دَرَجٰتٍ ؕ

(सूरह अल बक़रह – 254)

अनुवाद – *ये वे रसूल हैं जिन में से कुछ को हम ने कुछ (अन्य) पर श्रेष्ठता प्रदान की। उनमें से कुछ वे हैं जिन से परमेश्वर ने (आमने-सामने) वार्तालाप किया तथा उनमें से कुछ को (कुछ अन्य से) श्रेणियों में उच्च किया।*

इस बात को स्वीकार करने के पश्चात कि अवतार के पद में समानता होने के बावजूद अवतारों की श्रेणी और स्तर में अन्तर हो सकता है। मस्तिष्क में एक प्रश्न यह पैदा होता है कि फिर अधिक उच्च श्रेणी रखने वाला नबी कौन है अथवा किसे समझा जाए? यह एक अत्यन्त गंभीर और संवेदनशील समस्या है परन्तु इसके महत्त्व की अवहेलना भी नहीं की जा सकती।

स्पष्ट है कि समस्त धर्मों के अनुयायी अपने-अपने धर्म के प्रवर्तक को सब अवतारों से श्रेष्ठ समझते हैं। सभी यह समझते हैं कि श्रेणी, वैभव, पवित्रता और सम्मान की दृष्टि से कोई अन्य उन के अवतार

के बराबर नहीं हो सकता तथा अवतार होने के समस्त अनिवार्य गुणों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च पद पर पदासीन हमारा ही अवतार है। अब प्रश्न उठता है कि क्या मुसलमान भी यह दावा करते हैं कि रसूले करीम[स.] (मुहम्मद[स.]) समस्त अवतारों से सर्वश्रेष्ठ हैं ? इसका उत्तर यह है कि नि:सन्देह इस्लाम दो टूक शब्दों में यह दावा करता है तथा घोषणा करता है कि मुहम्मद[स.अ.व.] अपने सद्गुणों की दृष्टि से उच्चतम स्थान पर पदासीन हैं और आप ही श्रेणी की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं, परन्तु यह बात स्मरण रखना आवश्यक है कि इस्लाम के इस दावे तथा अन्य धर्मों के दावों में एक बड़ा स्पष्ट और मूल अन्तर है।

प्रथम तो इस बात का दृष्टिगत रहना आवश्यक है कि केवल इस्लाम ही एक ऐसा धर्म है जो नुबुव्वत (अवतार होने को) का आकाशीय (ईश्वरीय) होना स्वीकार करता है। इस्लाम के अनुसार संसार की प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश में पैग़म्बर आते रहे हैं परन्तु उदाहरण के तौर पर यहूदी लोग प्राचीन अहदनामा में वर्णित अवतारों के अतिरिक्त अन्य अवतारों को स्वीकार ही नहीं करते। अत: जब वे हज़रत मूसा[अ.] के महान नबी होने का दावा करते हैं तो हज़रत मूसा[अ.] की तुलना बुद्ध[अ.] से नहीं कर रहे होते। वे तो धर्म के महान प्रवर्तकों के दावे ही स्वीकार नहीं करते। उनके निकट उपरोक्त कथित समस्त अवतार सच्चे नहीं हैं, यहां तक कि उनके मतानुसार यह बात असंभव है कि उनके मान्य अवतारों (पैग़म्बरों) के अतिरिक्त भी कोई अवतार (नबी) हो।

अत: एक ओर तो यहूद के अपने मान्य अवतारों में से किसी एक अवतार की श्रेष्ठता की आस्था है तथा दूसरी ओर इस्लाम का दावा कि हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] सर्वश्रेष्ठ अवतार हैं। ये दोनों दावे अपने स्वरूप में बिल्कुल विपरीत हैं इसका कारण यह है कि यहूदियत की शिक्षानुसार बाइबल में वर्णित अवतारों के अतिरिक्त

अन्य कोई अवतार है ही नहीं, जबकि इस्लाम समस्त जातियों में सच्चे अवतारों के अवतरित किए जाने की शिक्षा देता है। यहूदियत की भांति बुद्धिज़्म, ज़रतश्तिज़्म तथा हिन्दुज़्म आदि समस्त धर्मों के ऐसे दावों का बिल्कुल यही स्वरूप है।

एक अन्तर इसके अतिरिक्त भी है जिसे मस्तिष्क में रखना आवश्यक है। नबियों और अवतारों की जो कल्पना यहूदियत, ईसाइयत और इस्लाम में पाई जाती है अन्य अधिकांश धर्मों में पाई जाने वाली कल्पना इस से बिल्कुल भिन्न है। वे अपने पुनीत अस्तित्वों को सदैव केवल परमेश्वर का भेजा हुआ ही नहीं समझते अपितु उनके निकट उनके धर्मों के प्रवर्तक सामान्य लोगों से श्रेष्ठतम तथा स्वयं में पुनीत अस्तित्व हैं। कुछ के निकट वे ईश्वर के अवतार हैं, यहां तक कि कुछ को ईश्वर ही ठहरा दिया जाता है या फिर यह समझा जाता है कि यह पुनीत धार्मिक लोग शनैः शनैः परमेश्वर के पद तक पहुंचने वाले कोई विशेष अस्तित्व हैं। ईसाइयत ने हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम के साथ भी कुछ ऐसी ही कल्पनाएं सम्बद्ध कर रखी हैं, इसलिए यह भी इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं परन्तु इस्लामी शिक्षानुसार ऐसे पद ईश्वर या ईश्वर के पुत्र और बच्चे तथा ईश्वर के अवतार समस्त मात्र नाम और काल्पनिक बातें हैं। वास्तव में ये लोग परमेश्वर के भेजे हुए अवतार (नबी) हैं जिन्हें उनके अनुयायियों ने बहुत बाद में परमेश्वर के पद तक पहुंचा दिया। धर्मों के अवतारों को देवता बनाने की यह प्रक्रिया क्रमानुगत घटित होती है। ऐसी आस्थाएं एक नबी के काल में अचानक जन्म नहीं लेतीं अपितु ये कल्पनाएं शनैः शनैः साकार होती हैं। इस विषय पर तो हम आगे विस्तारपूर्वक बात करेंगे। इस समय यह बताना अभीष्ट है कि इसलाम जब हज़रत मुहम्मद[स.] की समस्त अवतारों पर सर्वश्रेष्ठता की घोषणा करता है तो समस्त धर्मों के पुनीत पुरुष अवतारों के

वर्ग में अवतारवाद की इस कल्पना के अनुसार समाविष्ट होते हैं जो यहूदियत और इस्लाम की है। यहां इस बात की पुनरावृत्ति उचित होगी कि समस्त इल्हामी (ईश्वरीय) धर्मों के प्रवर्तकों के संबंध में इस्लाम की आस्था क्या है ? इस्लाम के अनुसार वे समस्त मानव ही थे जिन्हें ईश्वर ने अवतार के पद पर पदासीन करके संसार में भेजा। भिन्न-भिन्न युगों तथा भिन्न देशों में जहां कहीं भी अवतार आए बिना किसी अपवाद वे सब मानव ही थे, जैसा कि क़ुर्आन करीम वर्णन करता है :-

فَكَيْفَ اِذَا جِئْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍۭ بِشَهِيْدٍ وَّ جِئْنَا بِكَ عَلٰى هٰٓؤُلَآءِ شَهِيْدًا ۝

(सूरह अन्निसा - 42)

अनुवाद - *अतः क्या दशा होगी जब हम प्रत्येक उम्मत में से एक साक्षी लेकर आएंगे और हम तुझे (हज़रत मुहम्मद[स.]) उन सब पर साक्षी बना कर लाएंगे।*

अतः इस्लामी दृष्टिकोण से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि ईश्वर की ओर से प्रत्येक युग और प्रत्येक जाति में अवतार आए और वे सभी मानव थे।

आइए अब हम क़ुर्आन करीम के अनुसार हज़रत मुहम्मद[स.] के पद और श्रेणी का अध्ययन करते हैं। अतः इस्लाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.] के संबंध में क़ुर्आन करीम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, विशेष तथा अकाट्य दावा इस आयत में किया गया है। यह एक सुपरिचित आयत है जिस पर प्राय: चर्चा होती रहती है -

مَا كَانَ مُحَمَّدٌ اَبَآ اَحَدٍ مِّنْ رِّجَالِكُمْ وَلٰكِنْ رَّسُوْلَ اللّٰهِ وَ
خَاتَمَ النَّبِيّٖنَ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمًا ۝

(सूरह अलअहज़ाब - 41)

अनुवाद - *मुहम्मद[स.] तुम्हारे (समान) पुरुषों में किसी का पिता नहीं अपितु वह ईश्वर का अवतार है तथा समस्त अवतारों (नबियों) का ख़ातम है तथा ईश्वर प्रत्येक वस्तु का भली प्रकार ज्ञान रखने वाला है।*

इस आयत में अरबी का शब्द ख़ातम अनेक अर्थ रखता है तथापि ख़ातमुन्नबिय्यीन की उपाधि के मूल अर्थ नि:सन्देह उत्तम, सर्वश्रेष्ठ, सबसे अधिक अधिकार प्राप्त, सब पर प्रभुत्व रखने वाला तथा दूसरों की पुष्टि करने वाला हैं।

(देखें - लीन, अक़रबुल मवारिद, मुफ़रिदात इमाम राग़िब)

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह[स.] की श्रेणी की श्रेष्ठता का वर्णन एक अन्य आयत में भी किया गया है तथा यह आयत इस घोषणा पर आधारित है कि आप[स.] की शिक्षाएं प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण और अन्तिम हैं। फ़रमाया -

اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِيْنَكُمْ وَاَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِيْ وَرَضِيْتُ لَكُمُ الْاِسْلَامَ دِيْنًا ؕ

(सूरह अलमाइदह - 4)

अनुवाद - *आज के दिन मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म पूर्ण कर दिया और तुम पर अपनी ने'मत पूरी कर दी है तथा मैंने इस्लाम को तुम्हारे लिए धर्म के तौर पर पसन्द कर लिया है।*

इस दावे से स्पष्ट तौर पर यह बात सिद्ध होती है कि हज़रत मुहम्मद[स.] समस्त अवतारों में से पूर्णतम शिक्षा देने वाले हैं और आप समस्त अवतारों (नबियों) में उच्चतम श्रेणी पर सम्मानित हैं।

इस विषय को आगे बढ़ाते हुए परमेश्वर ने हज़रत मुहम्मद[स.] को यह विश्वास दिलाया है कि आप[स.] पर जो किताब अवतरित की जा रही है उसकी रक्षा की जाएगी, उसकी मूल इबारत को मानव हस्तक्षेप से सुरक्षित रखा जाएगा। वास्तव में इस प्रकार यह दावा किया गया है

कि न केवल क़ुर्आनी शिक्षा प्रत्येक दृष्टिकोण से पूर्ण है अपितु यह अपने मूल रूप में सदैव स्थापित रहने वाली भी है। जिसका अभिप्राय यह है कि हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] पर जिन शब्दों में यह शिक्षा उतारी गई है ठीक उन्हीं शब्दों में यह सदैव स्थिर और स्थापित रहेगी तथा किसी प्रकार के अक्षरान्तरण का शिकार नहीं होगी। अत: गत चौदह सौ वर्ष का इतिहास इस दावे की सत्यता का साक्षी है। क़ुर्आन करीम की सुरक्षा के क्रम में कुछ आयतें ये भी हैं। परमेश्वर फ़रमाता है :-

اِنَّا نَحۡنُ نَزَّلۡنَا الذِّکۡرَ وَ اِنَّا لَہٗ لَحٰفِظُوۡنَ ○

(सूरह अलहिज्र - 10)

अनुवाद - *निश्चय ही हमने ही यह ज़िक्र उतारा है और निश्चित तौर पर हम ही उसकी रक्षा करने वाले हैं।*

بَلۡ ہُوَ قُرۡاٰنٌ مَّجِیۡدٌ ○ فِیۡ لَوۡحٍ مَّحۡفُوۡظٍ ○

(सूरह अलबुरूज -22, 23)

अनुवाद - *अपितु वह तो एक वैभवशाली क़ुर्आन है एक सुरक्षित लौह (तख्ती) में।*

इन आयतों के अनुसार हज़रत मुहम्मद[स.] को न केवल सर्वश्रेष्ठ बताया गया है अपितु अन्तिम और स्थायी शरीअत (धार्मिक विधान) लाने वाला भी ठहराया गया है, इसके अतिरिक्त यह भी बताया गया है कि आप की नुबुव्वत प्रलय तक जारी और प्रचलित रहेगी।

हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] की श्रेष्ठता के इस दावे के संबंध में यह आपत्ति की जा सकती है कि ऐसा दावा अन्य धर्मावलम्बियों पर अरुचिकर तो नहीं होगा तथा क्या यह धर्मों के परस्पर समझने और समझाने (विचार-विमर्श) को हानि पहुंचाने वाला दावा तो नहीं ? इसके अतिरिक्त यह कि इस दावे का आज के भाषण की विषय

वस्तु से कैसे समन्वय किया जाएगा ? क्योंकि मुझे आज यहां यही वर्णन करना है कि इस्लाम मानव-जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्रों में शान्ति का आश्वासन देता है। स्पष्ट है कि धर्म का क्षेत्र जीवन में बड़ा महत्त्व रखता है। अतः क्या इस प्रकार का दावा शान्ति, विशेषकर धार्मिक शान्ति का विरोधी तो नहीं ठहरेगा। वास्तव में यही वह संभावित प्रश्न था जिसकी दृष्टि से मैंने पहले इस दावे को थोड़े विस्तार से वर्णन किया है। जहां तक इस प्रश्न का संबंध है तो एक निष्पक्ष अन्वेषण करने वाले मस्तिष्क को सन्तुष्ट करने के लिए इसका उत्तर एक से अधिक प्रकार से दिया जा सकता है।

जैसा कि पहले भी वर्णन किया जा चुका है कि ऐसे दावे अन्य धर्मों की ओर से भी किए जाते हैं। एक अन्वेषक के लिए उचित ढंग यही है कि वह अकारण आवेग में न आए यह देखे कि क्या कोई नबी (अवतार) यथार्थ में अन्य अवतारों के बारे में यह दावा करने का अधिकार रखता है। जहां तक अन्य धर्मानुयायियों का संबंध है तो मात्र इस दावे से उनकी भावनाएं आहत नहीं होनी चाहिएं विशेषकर इसलिए कि स्वयं उनकी ओर से भी ऐसे ही दावे किए जाते हैं।

जहां तक इस्लाम का संबंध है उसने एक पग और अग्रसर होकर इस सन्दर्भ में भी मुसलमानों को शालीनता, विनम्रता तथा दूसरों की भावनाओं का आदर करने का आदेश दिया है। इस्लाम यह शिक्षा देता है कि हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] की श्रेष्ठता के संबंध में अपनी आस्थाओं का दूसरों के सामने असावधानी पूर्वक वर्णन न किया करें जिस से उनके हृदय को दुःख और कष्ट पहुंचे। यह विषय हज़रत मुहम्मद[स.] की इन दो हदीसों के द्वारा बिल्कुल स्पष्ट होकर सामने आ जाता है।

हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के एक सहाबी[रज़ि.] (साथी) तथा हज़रत युनुस

अलैहिस्सलाम के एक जोशीले अनुयायी परस्पर बहस में उलझ पड़े। दोनों ने इस विवाद के मध्य अपने-अपने अवतार को सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ ठहरा दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि उस मुसलमान ने कुछ इस जोश के साथ यह दावा प्रस्तुत किया जिस से उस दूसरे व्यक्ति की भावनाओं को ठेस पहुंची। वह व्यक्ति हज़रत मुहम्मद[स.] के समक्ष उपस्थित हुआ और उस सहाबी के विरुद्ध शिकायत की। इस पर आप[स.] ने समस्त मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए फ़रमाया -

لا تُفَضِّلُوْنِیْ عَلٰی یُوْنُسَ بْنِ مَتّٰی

(सही बुख़ारी क़िताबुल अंबिया)

अर्थात तुम यूनस बिन मत्ता की तुलना में मेरी श्रेष्ठता को प्रकट न किया करो।

कुछ व्याख्याकार इस हदीस से उलझन का शिकार हो जाते हैं ; उन्हें यह हदीस क़ुर्आन करीम के दावे के विपरीत दिखाई देती है कि मुहम्मद रसूलुल्लाह[स.अ.व.] हज़रत यूनुस से ही नहीं अपितु समस्त नबियों (अवतारों) से श्रेष्ठ हैं।

वास्तव में उनका ध्यान मूल बात की ओर नहीं गया। आप[स.] ने यह नहीं कहा कि मैं यूनुस नबी से श्रेणी में कम हूं अथवा यह कि मैं यूनुस नबी से श्रेष्ठ नहीं हूं। आप[स.] ने तो अपने अनुयायियों से यह कहा कि वे आप[स.] के श्रेष्ठ होने का प्रकटन इस प्रकार से न करें जिस से दूसरों की भावनाओं को ठेस पहुंच सकती हो। उस घटना को समक्ष रखते हुए इस आदेश से केवल एक ही परिणाम निकाला जा सकता है और वह यह है कि रसूले करीम[स.अ.व.] मुसलमानों को विनम्रता और शालीनता धारण करने की शिक्षा दे रहे हैं। आप यह निर्देश दे रहे हैं कि शेखी बघारने तथा गर्व करने के रोग से भी ग्रसित न हों। आप का उद्देश्य यह था कि आप[स.] के स्थान और श्रेणी के संबंध में दूसरे

लोगों से वार्तालाप में सतर्कता को दृष्टिगत रखना चाहिए कदाचित उनके हृदय को कष्ट पहुंचे। असभ्यता और अशिष्टता की शैली में वार्तालाप तो इस्लाम के स्वयं के हित के विपरीत है। इस प्रकार तो इस्लाम के लिए लोगों के हृदय और मन पर विजय प्राप्त करने के स्थान पर विपरीत परिणाम निकलेगा।

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह[स.अ.व.] के इस आचरण की एक अन्य हदीस से भी पुष्टि होती है। उस हदीस में वर्णित घटना के अनुसार एक मुसलमान एक यहूदी के साथ इसी प्रकार की एक बहस में उलझ पड़ा। दोनों ने अपने-अपने पेशवा की श्रेष्ठता के संबंध में एक दूसरे से बढ़कर दावे किए। इस बार भी वैसा ही हुआ कि यहूदी ने उचित यही समझा कि वह हज़रत मुहम्मद[स.] की सेवा में उस मुसलमान के इस प्रकार के आचरण के विरुद्ध शिकायत करे। हज़रत मुहम्मद[स.] ने इस अवसर पर वही शालीनता और विनम्रता का प्रदर्शन किया जो आपके शालीन स्वभाव का भाग था। आप[स.] को समय की संवेदनशीलता का भली भांति आभास था। अतः आप[स.] ने उस मुसलमान को समझाया तथा शालीनता, विनम्रता और सभ्यता की शिक्षा देते हुए कहा -

لَا تُفَضِّلُوْنِیْ عَلٰی مُوْسٰی

(सही बुख़ारी, किताबुल अंबिया)

अर्थात तुम मूसा की तुलना में मेरी श्रेष्ठता का प्रकटन न किया करो।

सारांश यह कि परमेश्वर की सानिध्यता की दृष्टि से नबियों की तुलनात्मक श्रेष्ठता का निर्णय करना और फिर उसकी घोषणा करना परमेश्वर का कार्य है।

संभव है कि किसी एक युग और एक धर्म के अवतार के संबंध में ईश्वर की प्रसन्नता का प्रकटन ऐसे रूप में हुआ हो जिस से यह

प्रतीत होता हो कि वह नबी (अवतार) ही सर्वश्रेष्ठ है परन्तु यह सभी जानते हैं कि सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्चतम जैसे शब्द एक सीमित समय और सीमित स्थान के सन्दर्भ में भी प्रयोग हुए हैं। उन चुने हुए अवतारों के बारे में भरपूर प्रशंसा के ऐसे वाक्य प्रयोग हुए जिससे उनके अनुयायियों में एक कुधारणा जन्म ले सकती है कि वह उस अस्तित्व को आगामी समस्त युगों में और समस्त परमेश्वर के चुनीदा अवतारों में सर्वोत्तम और पुनीततम विश्वास कर लें जब कि उन की सर्वश्रेष्ठता उनके अपने युग तक सीमित थी। बहर हाल किसी धर्म के अनुयायियों का सच्चे हृदय के साथ अपने पेशवा को ऐसी श्रेष्ठ श्रेणी का विश्वास करना दूसरों की अप्रसन्नता का कारण नहीं होना चाहिए। सभ्यता और शिष्टता की मांग यह है ऐसी बातों को इस रूप में प्रस्तुत न किया जाए जिस से विभिन्न धर्मों के मध्य कटुता उत्पन्न हो। हज़रत मुहम्मद[स.] ने उन दो मुसलमानों को जो बात समझाई, वास्तव में उसका यही महत्त्व और दार्शनिकता है। यदि समस्त धर्म विनय, और विनम्रता तथा सभ्यता और शालीनता के इस सिद्धान्त का ठीक प्रकार से पालन करें तो धार्मिक जगत में परस्पर मतभेदों का वातावरण मंगलमय बनाया जा सकता है।

मोक्ष (मुक्ति) पर किसी एक धर्म का आधिपत्य नहीं हो सकता

मानव के वास्तविक मोक्ष की सीधी और सरल सी समस्या भी धार्मिक जगत की शान्ति के लिए एक ख़तरा बन सकती है विशेषकर जब यह दावा किया जाए कि जो व्यक्ति शैतान से बचने तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए एक विशेष धर्म को स्वीकार नहीं करेगा वह हमेशा के लिए नर्क का पात्र होगा तो इसका परिणाम अशान्ति के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। एक धर्म को मोक्ष का माध्यम और पाप

से मुक्ति का साधन समझना और बात है परन्तु साथ ही यह फ़त्वा जारी करना कि जो व्यक्ति मोक्ष-प्राप्ति हेतु उस धर्म को स्वीकार नहीं करेगा वह अवश्य नर्क में डाला जाएगा यह एक बिल्कुल पृथक बात है दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह होगा कि अन्य धर्मों के लोग परमेश्वर की प्रसन्नता-प्राप्ति हेतु कितने ही प्रयत्न क्यों न करें अपने स्रष्टा तथा उसकी सृष्टि से कितना भी प्रेम क्यों न करें तथा कैसी भी नेकी और शुद्ध आचरण के साथ जीवन व्यतीत क्यों न करें वे प्रत्येक दशा में नर्क में प्रविष्ट होंगे। उनका दोष यदि है तो मात्र इतना कि वे मोक्ष के लिए उस धर्म विशेष में प्रविष्ट नहीं हुए। जब ऐसी कट्टर और संकुचित विचारधारा तथा सहनशीलता के अभाव पर आधारित दृष्टिकोण को उत्तेजक शैली में प्रकट करना जैसा कि कट्टर धार्मिक लोग सामान्यतया किया करते हैं। तो इससे सख़्त उत्पात और उपद्रव का मार्ग खुल जाता है। संसार में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग पाए जाते हैं। शिक्षित, सभ्य और शिष्ट स्वभाव के लोगों के साथ साथ अशिक्षित और असभ्य लोग भी होते हैं। एक सभ्य और शिक्षित मनुष्य के विपरीत कोई ऐसी बात की जाए तो उसकी प्रतिक्रिया सभ्यता और शालीनता की परिधि में रहती है परन्तु धार्मिक प्रवृत्ति रखने वाले लोगों की एक बड़ी संख्या अपनी धार्मिक भावनाओं को ठेस लगने पर बड़ी कठोर प्रतिक्रिया प्रदर्शित करती है अपितु ऐसे लोग शिक्षित भी हों तो उनकी प्रतिक्रिया बहुत कठोर होती है। दुर्भाग्य से लगभग समस्त धर्मों के विद्वानों के विरुद्ध इसी प्रकार की प्रतिक्रिया होती है जो उनकी विचारधारा से सहमत नहीं होते। मध्यकाल के अधिकांश मुसलमान विद्वानों ने भी यही पद्धति धारण की थी। उन्होंने कहा कि मोक्ष प्राप्ति का माध्यम केवल इस्लाम है। इससे उनका अभिप्राय यह था कि इस्लाम के आने के पश्चात आज तक जितने भी लोग पैदा हुए तथा इस्लामी परिधि से बाहर रहते हुए मर गए वे सब के सब

सदैव के लिए मोक्ष से वंचित रहेंगे।

ईसाई विचारधारा भी इस से भिन्न नहीं है। मेरे संज्ञान में कोई धर्म ऐसा नहीं जो इस से पृथक कोई दृष्टिकोण प्रस्तुत करता हो, परन्तु मैं अपने आदरणीय श्रोताओं को विश्वास दिलाना चाहता हूं कि ऐसे कट्टर दृष्टिकोण को इस्लाम की ओर संबद्ध करने का कदापि कोई औचित्य मौजूद नहीं। क़ुर्आन करीम इस सन्दर्भ में बिल्कुल विपरीत दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। क़ुर्आन करीम के अनुसार मोक्ष पर किसी एक धर्म का आधिपत्य नहीं। वे लोग जिन्हें अपने पूर्वजों से दूषित विचारधाराएं विरसे में प्राप्त हुई हैं परन्तु वे सामान्यतया सच्चाई और शुद्धता के साथ जीवन व्यतीत करने का प्रयास करते हैं वे मोक्ष से वंचित नहीं किए जा सकते। इसी प्रकार वे लोग जिन्हें परमेश्वर की नई शरीअत (नवीन धार्मिक विधान) का ज्ञान ही नहीं हुआ तथा वे जानते ही नहीं कि लोगों के निर्देशन के एक नवीन युग का प्रारंभ हो चुका है, उन पर भी मोक्ष का द्वार बन्द नहीं होगा इस शर्त के साथ कि उनकी अज्ञानता उनकी अपनी असावधानी या ग़लती के कारण न हो।

मोक्ष से संबद्ध इस रहस्य की व्याख्या क़ुर्आन करीम की यह आयत करती है :-

لِكُلِّ اُمَّةٍ جَعَلْنَا مَنْسَكًا هُمْ نَاسِكُوْهُ فَلَا يُنَازِعُنَّكَ فِى الْاَمْرِ وَادْعُ اِلٰى رَبِّكَ ؕ اِنَّكَ لَعَلٰى هُدًى مُّسْتَقِيْمٍ ○

(सूरह अलहज्ज – 68)

अनुवाद :- *प्रत्येक जाति के लिए हमने क़ुरबानी का ढंग निर्धारित किया है जिस के अनुसार वे क़ुरबानी करते हैं। अत: वे इस संबंध में तुझ से कदापि कोई झगड़ा न करें तथा तू अपने रब्ब की ओर बुला। निश्चय ही तू हिदायत के सीधे मार्ग*

पर (चल रहा) है।

पुनः इसी विषय के सन्दर्भ में एक अन्य आयत में परमेश्वर फ़रमाता है -

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَالَّذِيْنَ هَادُوْا وَالصّٰبِئُوْنَ وَالنَّصٰرٰى مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ○

(सूरह अलमाइदह – 70)

अनुवाद – *निश्चय ही वे लोग जो ईमान लाए तथा जो यहूदी हुए, साबी (नक्षत्रपूजक) और ईसाई जो भी परमेश्वर पर ईमान लाया तथा अन्तिम दिवस पर और शुभ कर्म किए ; उन पर कोई भय नहीं और वे कोई खेद नहीं करेंगे।*

अहले किताब की परिभाषा (Terminology) यद्यपि सामान्यतया यहूद और नसारा (ईसाई लोग) के लिए प्रयोग होती है परन्तु वास्तव में इस का क्षेत्र बहुत विशाल है। क़ुर्आन करीम की आयत कि "कोई जाति ऐसी नहीं गुज़री जिसमें कोई होशियार करने वाला न आया हो" तथा इस विषय से संबंधित अन्य आयतें जिनका पूर्व में वर्णन किया जा चुका है उन सब को सम्मुख रखते हुए इसमें कोई आशंका नहीं रहती कि प्राचीन अहदनामा तथा नवीन अहदनामा अर्थात तौरात और इंजील ही केवल इल्हामी (ईश्वरीय) किताबें नहीं थीं अपितु लोगों के कल्याण और मार्ग-दर्शन के लिए निश्चित रूप से कुछ अन्य ग्रन्थ भी अवतरित किए गए थे। इस प्रकार वे समस्त धर्म जो यह दावा करते हैं कि उनकी नींव परमेश्वर की वाणी (वह्यी) पर है उनके अनुयायी भी अहले किताब में सम्मिलित समझे जाएंगे इसके अतिरिक्त अहले अरब "साबी" की परिभाषा उन समस्त ग़ैर अरब (जो अरब का न हो) और ग़ैर सामी (Non-Semitic) धर्मों के अनुयायियों के लिए

प्रयोग करते थे जिनके पास उनकी अलग-अलग किताबें थीं। अत: ईश्वरीय वह्यी (ईशवाणी) पर आधारित समस्त धर्मावलम्बियों को विश्वास दिलाया गया है कि ईश्वर उन्हें कोई दण्ड नहीं देगा और न ही वे मोक्ष से वंचित रखे जाएंगे परन्तु शर्त यह है कि परमेश्वर की ओर से भेजे हुए नवीन धर्मों को न पहचान पाने का उनके पास कोई वास्तविक और उचित कारण हो तथा वे अपने पूर्वजों के धर्मों की आस्थाओं पर सत्य और ईमानदारी के साथ स्थापित हों। क़ुर्आन करीम अपने-अपने धर्म पर पूर्ण शुद्धता से कार्यरत रहने वाले प्रत्येक समुदाय से चाहे वह यहूद और नसारा में से हो अथवा नक्षत्रपूजक हो यह वादा करता है :-

فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ○

(सूरह अलबक़रह – 63)

अनुवाद - *उन सब के लिए उनका प्रतिफल उनके रब्ब के पास है और उन पर कोई भय नहीं और न वे खेद करेंगे।*

وَلَوْ اَنَّهُمْ اَقَامُوا التَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِمْ مِّنْ رَّبِّهِمْ لَاَكَلُوْا مِنْ فَوْقِهِمْ وَمِنْ تَحْتِ اَرْجُلِهِمْ ؕ مِنْهُمْ اُمَّةٌ مُّقْتَصِدَةٌ ؕ وَكَثِيْرٌ مِّنْهُمْ سَآءَ مَا يَعْمَلُوْنَ ○

(सूरह अलमाइदह – 67)

अनुवाद - *और यदि वे तौरात और इंजील (की शिक्षा) को और जो कुछ उनकी ओर उनके रब्ब की ओर से उतारा गया को स्थापित करते तो वे अपने ऊपर से भी खाते और अपने पैरों के नीचे से भी। उनमें से ही एक समुदाय मध्यमार्ग पर आचरण करता है जबकि उनमें से बहुत हैं कि जो वे करते हैं वह बहुत बुरा है।*

لَيْسُوْا سَوَآءً ؕ مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ اُمَّةٌ قَآئِمَةٌ يَّتْلُوْنَ اٰيٰتِ اللّٰهِ اٰنَآءَ الَّيْلِ وَهُمْ يَسْجُدُوْنَ ○ يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَيَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَيُسَارِعُوْنَ فِى الْخَيْرٰتِ ؕ وَاُولٰٓئِكَ مِنَ الصّٰلِحِيْنَ ○ وَمَا يَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَلَنْ يُّكْفَرُوْهُ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ بِالْمُتَّقِيْنَ ○

(सूरह आले इमरान - 114 से 116)

अनुवाद - *वे सब एक समान नहीं। अहले किताब में से एक जमाअत (अपनी विचारधारा पर) स्थापित है और रात्रि के समयों में परमेश्वर की आयतों की तिलावत (उच्च स्वर में पढ़ना) करते हैं और वे सज्दे कर रहे होते हैं, वे ईश्वर पर ईमान लाते हैं और अन्तिम दिवस पर (हिसाब किताब के दिन पर) तथा अच्छी बातों का आदेश देते हैं और दुष्कर्मों से रोकते हैं तथा शुभ कर्मों में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं और यही हैं वे जो सदाचारियों में से हैं तथा जो शुभ कर्म भी वे करेंगे तो कदापि उन से उसके बारे में कृतघ्नता का व्यवहार नहीं किया जाएगा तथा ईश्वर संयमियों को भली भांति जानता है।*

यह विचार ग़लत है कि इस्लाम के विचार में समस्त यहूद नारकी हैं। यह कल्पना इस युग में यहूदियों और मुसलमानों के परस्पर राजनीतिक संघर्षों के परिणामस्वरूप पैदा हुई है। क़ुर्आन करीम की जो आयतें मैं वर्णन कर चुका हूं उनके अनुसार ऐसा विचार बिल्कुल ग़लत सिद्ध हो जाता है। मेरे इस मत की यह आयत भी पुष्टि करती है।

وَمِنْ قَوْمِ مُوْسٰٓى اُمَّةٌ يَّهْدُوْنَ بِالْحَقِّ وَبِهٖ يَعْدِلُوْنَ ○

(सूरह अलआराफ़ - 160)

अनुवाद - *और मूसा की जाति में भी कुछ ऐसे लोग थे*

जो सत्य के साथ (लोगों का) मार्ग-दर्शन करते थे तथा उसी के द्वारा न्याय करते थे।

धर्मों के मध्य समन्वय तथा परस्पर सम्मान का विकास

क़ुर्आन करीम में स्पष्ट तौर पर यह घोषणा की गई है कि केवल मुसलमान ही सत्य के समर्थक नहीं अपितु सत्य को अंगीकार करने वाले और लोग भी हैं और केवल मुसलमान ही नहीं जो संयम के साथ अन्य धर्मानुयायियों के मध्य न्याय करते हैं अपितु ऐसे गुण अन्य लोगों में भी पाए जाते हैं। धर्मों के परस्पर सम्बन्धों को समुचित बनाने के लिए यही विचारधारा है जो सम्पूर्ण विश्व को अनिवार्य रूप से अपनाना चाहिए। अन्य धर्मावलम्बियों के साथ ऐसा विशाल दृष्टिकोण, सहृदयता तथा सहानुभूतिपूर्वक विचार-विमर्श को विकसित किए बिना धार्मिक-शान्ति की स्थापना संभव नहीं है। क़ुर्आन करीम विश्व के समस्त धर्मों की सामान्य तौर पर चर्चा करते हुए घोषणा करता है -

وَمِمَّنْ خَلَقْنَآ اُمَّةٌ يَّهْدُوْنَ بِالْحَقِّ وَبِهٖ يَعْدِلُوْنَ ○

(सूरह अलआराफ़ - 182)

अनुवाद - *और उनमें से जिन्हें हमने पैदा किया ऐसे लोग भी थे जो सच्चाई के साथ (लोगों का) मार्ग-दर्शन करते हैं और उसी के द्वारा न्याय करते थे।*

धर्म के विश्वव्यापी होने का दृष्टिकोण

प्राचीन काल से दार्शनिक एवं फ़्लास्फ़र उस समय का स्वप्न देखते रहे हैं जब समस्त मानव जाति एक ही वंश का रूप धारण कर लेगी। मानव जाति की एकता की यह कल्पना मात्र राजनीतिविदों तक ही सीमित नहीं अपितु आर्थिक और सामाजिक विधाओं के विद्वान भी इस पद्धति पर विचार करते रहे हैं। धार्मिक-जगत में भी यह दृष्टिकोण पूर्ण जोश के साथ विद्यमान रहा है। कुछ धर्म तो विश्वव्यापी प्रभुत्व और अधिकार की अभिलाषा लिए बड़ी दृढ़ता से कार्यरत हैं तथा उन्होंने इसके लिए बड़ी प्रबल योजनाएं भी बनाई हैं। इसी प्रकार इस्लाम भी सम्पूर्ण विश्व को एक झण्डे के नीचे एकत्र करना चाहता है, यद्यपि इस्लाम तथा अन्य धर्मों में एक समान विचारधारा तो अवश्य दृष्टिगोचर होती है परन्तु इस सन्दर्भ में इस्लाम का दृष्टिकोण मूल रूप से दूसरों से भिन्न है। यहां यह आपत्ति उठाने का अवसर नहीं कि परमेश्वर ने मानव-जाति को एक झण्डे के नीचे एकत्र करने का काम किस धर्म के सुपुर्द किया है। बहरहाल यह जानना आवश्यक है कि एक से अधिक धर्मों की ओर से ऐसे दावे के परिलक्षित तथा संभावित परिणाम क्या हो सकते हैं। यदि दो-तीन या चार धर्म जिनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बहुत विस्तृत है। एक ही समय में स्वयं को इन अर्थों में विश्वव्यापी ठहराएं तो क्या यह बात लोगों को एक मानसिक जटिलता और अविश्वसनीयता में नहीं डाल देगी ? क्या धर्मों का परस्पर वैमनस्य और विश्वव्यापी प्रभुत्व प्राप्ति के प्रयत्न विश्व-शान्ति के लिए एक बहुत बड़ा ख़तरा नहीं बन जाएंगे ? विभिन्न धर्मों की ओर से ऐसे रुझान विद्यमान हैं जिनकी आसानी से अवहेलना नहीं की जा सकती अपितु उनका गंभीरतापूर्वक नोटिस लेना आवश्यक हो जाता है। ऐसे रुझान यदि दायित्व की गरिमा से अनभिज्ञ संकुचित विचारधारा रखने वाले

तथा हिंसावादी नेतृत्व के हाथों में चले जाएं तो निश्चित ही संभावित ख़तरे यथार्थता का रूप धारण कर लेते हैं तथा कई गुना बढ़ जाते हैं।

यह प्रोपेगन्डा कि इस्लाम अपनी विचारधाराओं के प्रचार और प्रसार के लिए बल प्रयोग को प्रोत्साहन देता है। इस्लाम के विरोधी तो करते ही हैं परन्तु दुर्भाग्य से कट्टर मुल्लाओं ने भी ऐसे विचारों को बढ़ावा दिया है। इन मुल्लाओं के स्वभाव मध्यकाल की संकीर्णता तथा कठोरता को प्रदर्शित करते हैं। स्पष्ट है कि यदि एक धर्म दूसरे धर्म के विरुद्ध आक्रामकता का मार्ग धारण करता है तो दूसरे धर्म को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह भी अपनी प्रतिरक्षा में वैसा ही हथियार प्रयोग करे। मैं इस प्रोपेगन्डा से कदापि सहमत नहीं हूं कि इस्लाम अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए बल-प्रयोग का समर्थक है अपितु इसका कठोर शब्दों में खण्डन करता हूं तथापि इस पर विस्तारपूर्वक बात करने से पूर्व हम किसी धर्म के विश्वव्यापी होने के दावे को बौद्धिक स्तर पर परखने का प्रयास करते हैं अर्थात यह देखते हैं कि क्या किसी धर्म का सन्देश सार्वभौमिक हो सकता है ? अभिप्राय यह है कि क्या इस्लाम, ईसाइयत अथवा किसी भी धर्म का सन्देश हर रंग, वंश और जाति के लोगों पर समान रूप से बोला जा सकता है ? क्या वंशों, क़बीलों, जातीय मर्यादाओं, सामाजिक परिवेशों तथा सांस्कृतिक परम्पराओं में इतनी भिन्नता के बावजूद सब के लिए एक ही सन्देश व्यावहारिक हो सकता है ? फिर प्रश्न यह है कि क्या धर्म सामयिक सीमाओं और बन्धनों से उच्च हो सकता है ? धर्म जिस सार्वभौमिकता के दावेदार हैं उसकी मांग तो यह है कि न केवल भौगोलिक तथा जातीय सीमाओं अपितु सामयिक सीमाएं भी समाप्त हो जाएं। अत: क्या धर्म की शिक्षाएं वर्तमान युग के लोगों के लिए वैसी ही उचित और व्यावहारिक हो सकती हैं जिस प्रकार वे एक हज़ार वर्ष पूर्व अथवा उस से भी पूर्व युग के लोगों के लिए

थीं ? और यदि किसी एक धर्म को विश्व-स्तर पर स्वीकार भी कर लिया जाए तो क्या ऐसा धर्म भावी नस्लों की आवश्यकताओं को पूरा कर भी सकेगा या नहीं। अब यह प्रत्येक धर्म के अनुयायियों का कार्य है कि वे बताएं कि उनके धर्म की शिक्षाओं के अनुसार उन पूर्व कथित समस्याओं का क्या समाधान है ? इस्लाम उन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। मैं इसे नितान्त संक्षिप्त रूप में वर्णन करना चाहता हूं।

इस्लाम एक विश्वव्यापी धर्म है

क़ुर्आन करीम ने इस बात को कई बार स्पष्ट किया है कि इस्लाम एक ऐसा धर्म है जिसकी शिक्षाएं मानव-प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल हैं। इस्लाम ने इस बात पर बल दिया है कि जिस धर्म की जड़ें मानव-प्रकृति में दृढ़ता के साथ जुड़ी हुई हों वह समय और स्थान की सीमाओं से उच्च होता है। वास्तविकता यह है कि मानव-प्रकृति मूल रूप से कभी परिवर्तित नहीं होती। यही कारण है कि जो धर्म मानव-प्रकृति के अनुकूल होगा उसमें सैद्धान्तिक तौर पर यह योग्यता विद्यमान होगी कि सार्वभौमिक धर्म बन सके इस शर्त पर कि वह मानव-उन्नति के किसी अस्थायी चरण और सामयिक परिवेश में अतिशय उलझ कर स्वयं ही स्वयं को सीमित न कर ले। अत: जो धर्म इन सिद्धान्तों पर स्थापित है जो मानव-स्वभाव से प्रस्फुटित हैं, उसमें तर्क संगत तौर पर यह योग्यता विद्यमान होगी कि वह एक सार्वभौमिक धर्म बन सके। इस्लाम ने तो इस से भी एक क़दम अग्रसर हो कर अपनी अनूठी प्रतिभा तथा दूरदर्शिता के उपलक्ष्य यहां तक स्वीकार किया है कि समस्त धर्म अपने अन्दर एक सीमा तक सार्वभौमिकता का तत्त्व अवश्य रखते हैं अर्थात् परमेश्वर की ओर से भेजे हुए प्रत्येक धर्म में एक मौलिक और केन्द्रीय शिक्षा ऐसी अवश्य होती है

जो शाश्वत सच्चाइयों पर आधारित तथा मानव-प्रकृति के यथानुकूल हुआ करती है। धर्मों की शिक्षाओं का यह केन्द्रीय तथा आधारभूत भाग परिवर्तित नहीं होता जब तक कि उन धर्मों के अनुयायी किसी भावी युग में उसे बिगाड़ न दें। क़ुर्आन करीम की इन आयतों से यह बात भली भांति स्पष्ट हो जाती है -

وَمَآ اُمِرُوْٓا اِلَّا لِيَعْبُدُوا اللّٰهَ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ ۙ۬ حُنَفَآءَ وَيُقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَيُؤْتُوا الزَّكٰوةَ وَذٰلِكَ دِيْنُ الْقَيِّمَةِ ؕ

(सूरह अलबय्यिनह – 6)

अनुवाद - *और वे कोई आदेश नहीं दिए गए इसके अतिरिक्त कि वे परमेश्वर की उपासना करें, धर्म को उसके लिए शुद्ध करते हुए, सदैव उसकी ओर झुके हुए तथा नमाज़ को क़ायम करें, और ज़कात दें और यही स्थापित रहने वाली शिक्षाओं का धर्म है।*

فَاَقِمْ وَجْهَكَ لِلدِّيْنِ حَنِيْفًا ؕ فِطْرَتَ اللّٰهِ الَّتِيْ فَطَرَ النَّاسَ عَلَيْهَا ؕ لَا تَبْدِيْلَ لِخَلْقِ اللّٰهِ ؕ ذٰلِكَ الدِّيْنُ الْقَيِّمُ ۙ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝

(सूरह अर्रूम – 31)

अनुवाद - *अतः (परमेश्वर की ओर) सदैव दृढ़ रहते हुए अपना ध्यान धर्म पर केन्द्रित रख। यह परमेश्वर का स्वभाव है जिस पर उसने मनुष्यों को पैदा किया। परमेश्वर के सृजन में कोई परिवर्तन नहीं। यह सदैव स्थापित रहने वाला तथा स्थापित रखने वाला धर्म है, परन्तु अधिकतर लोग नहीं जानते।*

इन आयतों के अनुसार एक प्रश्न तो यह पैदा होता है कि यदि समस्त धर्म मूल रूप से एक ही धर्म पर आधारित थे तो फिर इन

धर्मों को एक के बाद एक भेजते चले जाने में क्या नीति निहित थी ? इसके अतिरिक्त यह कि यदि समस्त धर्म एक समान अपरिवर्तनीय सार्वभौमिक शिक्षा पर आधारित थे तो फिर इस्लाम अन्य धर्मों की अपेक्षा सर्वांगपूर्ण तथा सार्वभौमिक होने का दावेदार क्यों है ?

(1) प्रथम प्रश्न के उत्तर में क़ुर्आन करीम मानव जाति का ध्यान एक अखण्डनीय ऐतिहासिक वास्तविकता की ओर आकृष्ट कराता है वह यह है कि क़ुर्आन करीम से पूर्व आने वाली पुस्तकें एवं ग्रन्थ अपने मूल रूप में सुरक्षित नहीं हैं। उनकी शिक्षाओं में क्रमशः परिवर्तन किए जाते रहे हैं या फिर नई बातों का समावेश किया जाता रहा है और इस प्रकार उनमें बिगाड़ पैदा होता रहा है, यहां तक कि उन पुस्तकों एवं ग्रन्थों की प्रमाणिकता के संबंध में अपितु उन के कानूनी एवं धार्मिक विधान संबंधी स्तर के बारे में सन्देह और शंकाएं उत्पन्न हो गई हैं। अब इस बात का प्रमाण देना उनके अनुयायियों पर है कि उनके मान्य ग्रन्थों में कोई अक्षरान्तरण अथवा परिवर्तन नहीं हुआ। इस सन्दर्भ में जहां तक क़ुर्आन करीम का सम्बन्ध है उसे समस्त आसमानी (ईश्वरीय) पुस्तकों एवं ग्रन्थों में एक अनूठा और विशेष स्थान प्राप्त है। इस्लाम के कट्टर विरोधी भी जो क़ुर्आन करीम को परमेश्वर की वाणी ही नहीं मानते, इस बात को स्वीकार करने पर विवश हैं कि निःसन्देह क़ुर्आन एक अपरिवर्तित एवं अक्षरान्तरण रहित पुस्तक है उन्हें यह स्वीकार करना पड़ता है कि यह वही क़ुर्आन है जिस के बारे में हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने दावा किया था कि यइ ईश्वर की वाणी है। उदाहरणतया इस सन्दर्भ में सर विलियम म्योर और प्रोफेसर नोल्डेक के बयान प्रस्तुत किये जाते हैं -

There is otherwise every security, internal and external, that we possess the text which Mohamet himself gave forth and used.

(Life of Mohamet by Sir William Muir, London, 1878, P. xxvii)

"इस बारे में आन्तरिक और बाह्य हर प्रकार की साक्ष्य उपलब्ध है कि आज भी हमारे हाथों में क़ुर्आन की वही मूल इबारत है जो मुहम्मद (स.अ.व.) ने दी थी और जिसे वह स्वयं फ़रमाया करते थे।"

(लायफ़ आफ़ मुहम्मद - लेखक सर विलियम म्योर, लन्दन - 1878 पृष्ठ – 27)

We may, upon the strongest assumption, affirm that every verse in the Quran is the genuine and unaltered composition of Mohamet himself.

(Life of Mohamet by Sir William Muir, London, 1878, P. xxviii)

"हम निश्चित तौर पर यह पुष्टि करते हैं कि क़ुर्आन करीम की प्रत्येक आयत बिल्कुल वही है जो मुहम्मद (स.अ.व.) ने स्वयं वर्णन की थी। प्रत्येक आयत यथावत है तथा उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ।"

(लायफ़ आफ़ मुहम्मद - लेखक सर विलियम म्योर, लन्दन - 1878 पृष्ठ – 28)

Slight clerical errors there may have been, but the Quran of Uthman contains none but genuine elements, though sometimes in very strange order. The efforts of European scholars to prove the existence of later interpolations in the Quran have failed.

(Prof. Noldeke in Encyclopaedia Britannica; 9th edition, under Quran)

"लेखन की कुछ साधारण सी ग़लतियां तो हो सकती हैं परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि हज़रत उसमान के क़ुर्आन करीम की प्रति आद्योपान्त मूल रूप में क़ुर्आन है यद्यपि आयत का क्रम कुछ स्थानों पर बड़ा विचित्र दिखाई देता है। यूरोप के विद्वानों के प्रयास असफल हो चुके हैं कि वे यह सिद्ध कर सकें कि (उतरने के पश्चात्) क़ुर्आन में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन हुआ है।"

(प्राफेसर नोल्डेक, इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, संस्करण - 9, क़ुर्आन शब्द के अन्तर्गत)

यह एक बिल्कुल पृथक बहस है कि इल्हामी या आसमानी कहलाने वाली पुस्तकों में से कौन सी पुस्तक मूल रूप में किस की रचना है। इस बहस को पृथक रखते हुए यहां हम यह वर्णन करना चाहते हैं कि क़ुर्आन करीम के बारे में अन्य 'अहले किताब' यह चैलेन्ज करते हैं कि वह ईशवाणी नहीं है, परन्तु देखिए वही क़ुर्आन तौरात और इंजील के बारे में साक्ष्य देता है कि ये आंशिक तौर पर ईश्वर की वाणी है। केवल तौरात और इंजील ही नहीं अपितु क़ुर्आन करीम यह कहता है कि संसार के अन्य भागों में अन्य धार्मिक पुस्तकें भी नि:सन्देह ईश्वर की हैं। जहां तक उनमें दिखाई देने वाले विरोधाभासों का संबंध है क़ुर्आन उन्हें मानव हस्तक्षेप का परिणाम ठहराता है। अत: स्पष्ट है कि क़ुर्आन करीम का अन्य धार्मिक ग्रन्थों के बारे में यह दृष्टिकोण कहीं अधिक सत्य-प्रिय एवं धर्मों के मध्य शान्ति को उन्नत करने वाला है।

(2) द्वितीय प्रश्न के सन्दर्भ में क़ुर्आन करीम हमारा ध्यान मानव समाज के प्रत्येक भाग में प्रचलित प्रगतिशील प्रतिक्रिया की ओर आकृष्ट कराता है। नए धर्म की आवश्यकता प्रथम इसलिए थी कि पुराने धर्म की उस मूल शिक्षा को नए सिरे से जीवित किया जाए जिसे लोगों ने विकृत कर दिया था। द्वितीय कारण यह था कि सामाजिक प्रगति के साथ पग मिलाकर चला जा सके।

(3) इसके अतिरिक्त धर्मों में परिवर्तन की इस प्रक्रिया का एक अन्य प्रेरक भी था कि पूर्ववर्ती धर्मों में द्वितीय स्थान रखने वाली कुछ सामयिक एवं अस्थायी शिक्षाएं भी दी गई थीं जो मात्र एक विशेष युग तथा जाति विशेष की आवश्यकताओं की पूर्ति करती थीं। इस के अर्थ यह हैं कि धर्मों की शिक्षाएं केवल अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों के एक केन्द्रीय भाग पर ही आधारित नहीं थीं अपितु उनमें द्वितीय स्थान रखने वाली तथा आंशिक प्रकार की अस्थायी एवं सामयिक शिक्षाएं

भी सम्मिलित थीं। स्पष्ट है कि समय गुज़रने के पश्चात उन शिक्षाओं का परिवर्तित होना अनिवार्य था।

(4) एक अन्य कारण जो अपने महत्त्व की दृष्टि से किसी भी प्रकार कम नहीं है यह है कि मानव की आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा की यात्रा वास्तव में एक ही बार में पूर्ण नहीं हुई अपितु क्रमशः हुई है, यहां तक कि मनुष्य मानसिक तौर पर इतना व्यस्क हो गया और इस योग्य हो गया कि उन समस्त आधारभूत और स्थायी सिद्धान्तों का ज्ञान उसे प्रदान कर दिया जाए जो उसके पूर्ण मार्ग-दर्शन के लिए आवश्यक था। क़ुर्आन करीम का यह दावा भी है कि वह द्वितीय स्थान रखने वाली एवं मूल शिक्षा के अधीन शिक्षा जो स्थायी और मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित थी, अपने अन्तिम पूर्ण और श्रेष्ठतम रूप में एक पूर्ण धर्म अर्थात इस्लाम के एक भाग के तौर पर उतारी गई। पुरानी शिक्षाओं का वह भाग जो क्षेत्रीय एवं सामयिक था उसे समाप्त कर दिया गया तथा शिक्षाओं का वह भाग जिसकी भविष्य में भी आवश्यकता थी उसे यथावत रखा गया तथा क़ुर्आन करीम के माध्यम से संसार को पुन: प्रदान कर दिया गया। धर्म के सार्वभौमिक होने के संबंध में इस्लामी दृष्टिकोण का सार यही है और इन्हीं अर्थों में इस्लाम एक आसमानी (ईश्वरीय) धर्म है। अब यह लोगों का काम है कि वे खोज करें और इस बात की तुलनात्मक पड़ताल करें कि कौन सा धर्म वास्तव में सार्वभौमिक एवं आसमानी है।

अब हम पुन: उन धर्मों की समस्या की ओर लौटते हैं जिन्होंने विश्वव्यापी प्रभुत्व की प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाया हुआ है तथा यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि इस्लाम भी यह स्थान प्राप्त करना चाहता है। क़ुर्आन करीम की भविष्यवाणी के अनुसार यह प्रारब्ध है कि इस्लाम एक दिन मानवजाति का अकेला धर्म बन कर उभरेगा।

परमेश्वर फ़रमाता है :-

هُوَ الَّذِیۡۤ اَرۡسَلَ رَسُوۡلَہٗ بِالۡہُدٰی وَ دِیۡنِ الۡحَقِّ لِیُظۡہِرَہٗ عَلَی الدِّیۡنِ کُلِّہٖ وَلَوۡ کَرِہَ الۡمُشۡرِکُوۡنَ

(सूरह अस्सफ़्फ़ -10)

अनुवाद - *वही है जिस ने अपने रसूल को मार्ग-दर्शन और सच्चे धर्म के साथ भेजा ताकि वह उसे धर्म (के प्रत्येक भाग) पर पूर्णतया विजयी कर दे चाहे मुश्रिक (परमेश्वर का भागीदार बनाने वाले) बुरा मनाएं।*

यद्यपि इस्लाम विभिन्न धर्मों के मध्य शान्ति एवं मैत्री की उन्नति पर अटल विश्वास रखता है परन्तु इसके साथ-साथ इस्लाम विभिन्न धर्मों के मध्य स्वस्थ तुलना का भी समर्थक है। वह इस बात से निराश नहीं करता कि लोग अपने-अपने धर्म के सन्देश और विचारधाराओं को प्रसारित करें और दूसरे धर्मों पर अपने धर्म की श्रेष्ठता एवं सर्वोच्चता सिद्ध करने का प्रयत्न करें।

वस्तुस्थिति यह है कि स्वयं इस्लाम समस्त धर्मों पर अपनी अन्तिम विजय का एक महान तथा सर्वोच्च लक्ष्य ठहराता है तथा मुसलमानों को सदैव उस लक्ष्य-प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहने पर बल देता है। क़ुर्आन करीम हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] को सम्बोधित करते हुए फ़रमाता है -

قُلۡ یٰۤاَیُّہَا النَّاسُ اِنِّیۡ رَسُوۡلُ اللّٰہِ اِلَیۡکُمۡ جَمِیۡعَۨا الَّذِیۡ لَہٗ مُلۡکُ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ ۚ لَاۤ اِلٰہَ اِلَّا ہُوَ یُحۡیٖ وَیُمِیۡتُ ۪ فَاٰمِنُوۡا بِاللّٰہِ وَرَسُوۡلِہِ النَّبِیِّ الۡاُمِّیِّ الَّذِیۡ یُؤۡمِنُ بِاللّٰہِ وَکَلِمٰتِہٖ وَاتَّبِعُوۡہُ لَعَلَّکُمۡ تَہۡتَدُوۡنَ ○

(सूरह अलआराफ़ - 159)

अनुवाद - *तू कह दे कि हे लोगो ! मैं निश्चय ही तुम सब की ओर ईश्वर का अवतार हूं जिसके अधिकार में आकाशों एवं*

पृथ्वी का शासन है उसके अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य नहीं। वह जीवित भी करता है और मृत्यु भी देता है। अत: ईमान ले आओ परमेश्वर पर तथा उसके अवतार (रसूल) निरक्षर नबी पर। जो परमेश्वर पर और उसके कलिमात (वचनों) पर ईमान रखता है तथा उसी का अनुसरण करो ताकि तुम सद्मार्ग प्राप्त कर सको।

इसके अतिरिक्त इस्लाम एक स्पष्ट नैतिक-विधान भी प्रदान करता है ताकि विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य किसी प्रकार का संघर्ष पैदा न हो तथा वैमनस्य और कुधारणाएं जन्म न ले सकें। यह नैतिक-विधान उत्तम व्यवहार, न्याय, अभिव्यक्ति एवं अभिलेखन की स्वतंत्रता को सुनिश्चित बनाता है तथा सबको दूसरों से मतभेद रखने का समान अधिकार देता है।

'धर्म-प्रचार के माध्यम' बल प्रयोग का पूर्णतया निषेध

यह किस प्रकार संभव है कि कोई धर्म सार्वभौमिक होने का दावा भी करे और विभिन्न धर्मों के मध्य वैमनस्य पैदा करने का कारण भी बने अथवा एक सार्वभौमिक संदेश रखने वाला कोई भी धर्म जो समस्त मानव जाति को एक प्लेटफार्म पर एकत्र करने का इच्छुक हो अपने सन्देश के प्रसार के लिए शक्ति का प्रयोग करे। तलवार द्वारा अस्थायी विजयें तो संभव हैं परन्तु हृदयों पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती, शक्ति से सर तो झुकाए जा सकते हैं परन्तु हृदयों पर शासन नहीं किया जा सकता।

इस्लाम अपने सन्देश के प्रचार के लिए किसी प्रकार के बल-प्रयोग की आज्ञा नहीं देता। अत: परमेश्वर क़ुर्आन करीम में फ़रमाता है :-

لَآ اِكۡرَاهَ فِى الدِّيۡنِ ۙ قَدۡ تَّبَيَّنَ الرُّشۡدُ مِنَ الۡغَىِّ ۚ

(सूरह अलबक़रह - 257)

अनुवाद - *धर्म में कोई बल प्रयोग नहीं। निश्चित रूप से सद्मार्ग पथ-भ्रष्टता से स्पष्ट तौर पर प्रकट हो चुका है।*

अत: जब पथ-प्रदर्शनता और पथभ्रष्टता का अन्तर भली प्रकार स्पष्ट हो चुका तो धर्म में बल-प्रयोग की कोई आवश्यकता ही शेष नहीं रही। प्रत्येक मनुष्य को अधिकार देना चाहिए कि वह देखे और स्वयं निर्णय करे कि सत्य और हिदायत कहां है। परमेश्वर हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह[स.अ.व.] को सम्बोधित करते हुए चेतावनी देता है कि समाज-सुधार का प्रयास करते समय हृदय में बल-प्रयोग का विचार तक न आने दें। इसी प्रकार इस आयत में एक सुधारक होने के नाते आप[स.] के स्थान को पूर्ण स्पष्टता के साथ वर्णन कर दिया गया है -

فَذَكِّرۡ ۗ اِنَّمَآ اَنۡتَ مُذَكِّرٌ ؕ لَسۡتَ عَلَيۡهِمۡ بِمُصَيۡطِرٍ ۙ

(सूरह अलग़ाशियह - 22, 23)

अनुवाद - *अत: अत्यधिक नसीहत कर, तू मात्र एक नसीहत करने वाला है तू उन पर संरक्षक नहीं।*

इस विषय के संबंध में और अधिक स्पष्टीकरण करते हुए हज़रत मुहम्मद[स.] को पुन: स्मरण कराया जा रहा है। फ़रमाया -

فَاِنۡ اَعۡرَضُوۡا فَمَآ اَرۡسَلۡنٰكَ عَلَيۡهِمۡ حَفِيۡظًا ؕ اِنۡ عَلَيۡكَ اِلَّا الۡبَلٰغُ ؕ

(सूरह अश्शूरा 49)

अनुवाद - *अत: यदि वे मुख फेर लें तो हम ने तुझे उन पर रक्षक बना कर नहीं भेजा। तुझ पर सन्देश पहुंचाने के अतिरिक्त और कुछ अनिवार्य नहीं।*

ऐसी विचारधाराओं के प्रचार से यदि कोई विवाद उठ खड़ा हो और विरोधी सदस्य क्रूरता पर उतर आए तो ऐसी स्थिति में इस्लाम का कठोर आदेश है कि मुसलमान सहिष्णुता एवं सहनशीलता से काम लें, धैर्य और स्थिरता का आदर्श प्रदर्शित करें और यथासंभव संघर्ष और लड़ाई-झगड़े से बचने का पूर्ण प्रयास करें। यही कारण है कि मुसलमानों को जहां समस्त संसार में इस्लाम का सन्देश पहुंचाने का आदेश दिया गया है वहां साथ ही उन्हें एक स्पष्ट और निश्चित नैतिक-विधान भी प्रदान किया गया है। इसी कथित विषय के सन्दर्भ में क़ुर्आन करीम में बहुत सी आयतें हैं जिनमें से कुछ एक आयतें इस विषय के स्पष्टीकरण हेतु प्रस्तुत की जा रही हैं -

اُدْعُ اِلٰى سَبِيْلِ رَبِّكَ بِالْحِكْمَةِ وَالْمَوْعِظَةِ الْحَسَنَةِ وَجَادِلْهُمْ بِالَّتِيْ هِيَ

اَحْسَنُ ؕ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ اَعْلَمُ بِمَنْ ضَلَّ عَنْ سَبِيْلِهٖ وَهُوَ اَعْلَمُ بِالْمُهْتَدِيْنَ ○

(सूरह अन्नहल – 126)

अनुवाद - *अपने रब्ब के मार्ग की ओर हिकमत और अच्छी नसीहत के साथ निमंत्रण दे और उन से ऐसे तर्क के साथ बहस कर जो उत्तम हो। तेरा रब्ब निश्चित ही उसे जो उसके मार्ग से भटक चुका हो सब से अधिक जानता है तथा वह मार्ग-दर्शन पाने वालों का भी सर्वाधिक ज्ञान रखता है।*

اِدْفَعْ بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ السَّيِّئَةَ ؕ نَحْنُ اَعْلَمُ بِمَا يَصِفُوْنَ ○

(सूरह अलमोमिनून - 97)

अनुवाद - *उस (उपाय) से जो उत्तम है बुराई को दूर कर दे। हम उसे सबसे अधिक जानते हैं जो वे बातें बनाते हैं।*

इस आयत में अरबी शब्द 'अहसन' का शब्द प्रयोग हुआ है उसके अर्थ हैं - उत्तम, अत्यन्त मनमोहक, सुन्दर। दूसरों तक इस्लाम

का सन्देश पहुंचाते समय मोमिनों पर जिस नैतिक विधान का पालन अनिवार्य है उसका स्पष्टीकरण करते हुए क़ुरआन करीम फ़रमाता है -

وَالْعَصْرِ ۙ○ اِنَّ الْاِنْسَانَ لَفِىْ خُسْرٍ ۙ○ اِلَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَتَوَاصَوْا بِالْحَقِّ ۙ وَتَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ ○

(सूरह अलअस्र - 2 से 4)

अनुवाद - *युग की क़सम ! निश्चय ही मनुष्य एक बड़े घाटे में है सिवाय उन लोगों के जो ईमान लाए और शुभ कर्म किए तथा सत्य पर स्थिर रहते हुए एक दूसरे को सत्य की नसीहत की तथा धैर्य पर दृढ़ रहते हुए एक-दूसरे को धैर्य की नसीहत की।*

इस सन्दर्भ में क़ुर्आन करीम इसके अतिरिक्त फ़रमाता है -

ثُمَّ كَانَ مِنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَتَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ وَتَوَاصَوْا بِالْمَرْحَمَةِ○

(सूरह अलबलद - 18)

अनुवाद - *फिर वह उन में से हो जाए जो ईमान ले आए और धैर्य पर दृढ़ रहते हुए एक दूसरे को धैर्य की नसीहत करते हैं तथा दया पर दृढ़ रहते हुए एक दूसरे को दया की नसीहत करते हैं।*

कौन सा धर्म शेष रहेगा ?

(योग्यतम की उत्तरजीविता)

क़ुर्आन करीम की दृष्टि से किसी धर्म के शाश्वत होने तथा परिणाम स्वरूप विजय का सम्पूर्ण आधार किसी भौतिक शक्ति पर नहीं अपितु उन सच्चे तर्कों एवं प्रमाणों की शक्ति पर होता है जिस पर वह धर्म स्थापित हो इस संबंध में क़ुर्आन करीम का दृष्टिकोण नितान्त स्पष्ट और निर्धारित है। क़ुर्आन करीम फ़रमाता है कि सत्य को मिटाने के लिए तथा असत्य के समर्थन में चाहे कैसी ही बड़ी शक्तियां काम में लाई जाएं वे सदैव असफल रहेंगी। तर्कों और प्रमाणों की शक्ति भौतिक शस्त्रों की शक्ति पर बहरहाल विजयी होकर रहती है। अत: क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

قَالَ الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوا اللّٰهِ ۙ كَمْ مِّنْ فِئَةٍ قَلِيْلَةٍ غَلَبَتْ فِئَةً كَثِيْرَةًۢ بِاِذْنِ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ○

(सूरह अलबक़रह - 250)

अनुवाद - *(तब) उन लोगों ने जो विश्वास रखते थे कि वे परमेश्वर से मिलने वाले हैं कहा - कि कितने ही अल्पसंख्यक गिरोह हैं जो परमेश्वर के आदेश से बहुसंख्यक गिरोहों पर विजयी हो गए तथा परमेश्वर धैर्य करने वालों के साथ होता है।*

इस्लाम की सर्वोच्चता और विजय के दृष्टिकोण कथित परमेश्वरीय कथन के प्रसंग में समझने का प्रयास करना चाहिए। क़ुर्आन करीम की एक अन्य आयत में फ़रमाया -

رَضِيَ اللّٰهُ عَنْهُمْ وَرَضُوْا عَنْهُ ؕ اُولٰٓئِكَ حِزْبُ اللّٰهِ ؕ اَلَآ اِنَّ حِزْبَ اللّٰهِ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ○ؑ

(सूरह अलमुजादलह - 23)

अनुवाद - *परमेश्वर उन से प्रसन्न हुआ और वे परमेश्वर से प्रसन्न हो गए। यह परमेश्वर का गिरोह है। सावधान ! परमेश्वर का ही गिरोह है जो सफल होने वाले लोग हैं।*

इस्लामी इतिहास में होने वाला प्रथम युद्ध "बद्र युद्ध" कहलाता है। इस युद्ध में मुसलमानों के एक अल्पसंख्यक गिरोह के सामने मक्का के मुश्रिकों (अनेकेश्वरवादियों) का एक बहुसंख्यक गिरोह पंक्तिबद्ध था जो युद्ध सामग्री से पूर्ण रूप से सुसज्जित था। मुसलमान प्रथम तो संख्या में बहुत कम थे दूसरे उनके पास शस्त्र भी बहुत कम तथा साधारण प्रकार के थे जो न होने के समान थे। इस स्थिति में मुसलमानों पर एक प्रतिरक्षात्मक युद्ध थोप दिया गया था। मुसलमान अपने व्यक्तिगत अस्तित्व की सुरक्षा के लिए नहीं अपितु अपनी विचारधारा की सुरक्षा के लिए युद्ध करने पर विवश थे। अतः क़ुर्आन करीम इस सन्दर्भ में फ़रमाता है -

لِّيَهْلِكَ مَنْ هَلَكَ عَنْۢ بَيِّنَةٍ وَّيَحْيٰى مَنْ حَيَّ عَنْۢ بَيِّنَةٍ ؕ وَاِنَّ اللّٰهَ لَسَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝

(सूरह अलअन्फ़ाल - 43)

अनुवाद - *ताकि अत्यन्त स्पष्ट तर्क की दृष्टि से जिसकी तबाही का औचित्य हो वही तबाह हो तथा अत्यन्त स्पष्ट तर्क की दृष्टि से जिसे जीवित रहना चाहिए वही जीवित रहे तथा निश्चय ही परमेश्वर बहुत सुनने वाला (और) शाश्वत ज्ञान रखने वाला है।*

वास्तव में यह वह शाश्वत सिद्धान्त है जिसने मानवजाति के विकास में नितान्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the Fittest) इस का सार और निचोड़ है अर्थात जो अधिक उचित और उत्तम है वही शेष रखा जाता है तथा जीवन के विकास की पद्धति भी यही है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

संसार में किसी सन्देश के प्रसारण के लिए अपितु स्वयं मनुष्य के मान और मर्यादा को यथावत करने के लिए विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नितान्त आवश्यक है। जब तक कोई धर्म मानवता की मर्यादा को स्थापित नहीं करता तथा उसकी रक्षा नहीं करता वह इस बात का अधिकारी नहीं कि उसे धर्म की संज्ञा दी जा सके। इससे पूर्व जो कुछ वर्णन किया जा चुका है उस से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि इस्लाम जैसे धर्म के लिए यह संभव नहीं कि वह अभिव्यक्ति एवं भाषण की स्वतंत्रता का विरोधी हो। इसके विपरीत इस्लाम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धान्त का जिस निर्भीकता और साहस के साथ समर्थन करता है उसका उदाहरण किसी अन्य विचारधारा वाले विधान या धर्म में दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता। उदाहरणतया क़ुर्आन करीम घोषणा करता है -

وَقَالُوْا لَنْ يَّدْخُلَ الْجَنَّةَ اِلَّا مَنْ كَانَ هُوْدًا اَوْ نَصٰرٰى ؕ تِلْكَ
اَمَانِيُّهُمْ ؕ قُلْ هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ○

(सूरह अलबक़रह - 112)

अनुवाद - *और वे कहते हैं कि स्वर्ग में कदापि प्रवेश नहीं होगा सिवाए उनके जो यहूदी अथवा ईसाई हों। ये उनकी मात्र इच्छाएं हैं। तू कह कि अपना कोई दृढ़ सबूत तो लाओ यदि तुम सच्चे हो।*

पुनः एक अन्य स्थान पर फ़रमाया :-

اَمِ اتَّخَذُوْا مِنْ دُوْنِهٖۤ اٰلِهَةً ؕ قُلْ هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ ۚ هٰذَا ذِكْرُ مَنْ مَّعِیَ
وَذِكْرُ مَنْ قَبْلِيْ ؕ بَلْ اَكْثَرُهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ۙ الْحَقَّ فَهُمْ مُّعْرِضُوْنَ ○

(सूरह अलअंबिया - 25)

अनुवाद - *क्या उन्होंने इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपास्य बना रखे हैं। तू कह दे कि अपना ठोस सबूत लाओ। यह अनुस्मरण उन का है जो मेरे साथ हैं तथा उनका अनुस्मरण है जो मुझ से पूर्व थे परन्तु उनमें से अधिकतर लोग सत्य का ज्ञान नहीं रखते और वे मुख फेरने वाले हैं।*

क़ुर्आन करीम में एक अन्य स्थान पर परमेश्वर फ़रमाता है -

وَ نَزَعْنَا مِنْ كُلِّ اُمَّةٍ شَهِيْدًا فَقُلْنَا هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ فَعَلِمُوْٓا اَنَّ الْحَقَّ لِلّٰهِ وَضَلَّ عَنْهُمْ مَّا كَانُوْا يَفْتَرُوْنَ ○

(सूरह अलक़सस – 76)

अनुवाद - और हम प्रत्येक उम्मत में से एक गवाह निकाल कर लाएंगे और कहेंगे कि अपना तर्क लाओ। अत: वे जान लेंगे कि सत्य परमेश्वर के अधिकार में है और वे जो कुछ झूठ बनाते रहते थे उन से जाता रहेगा।

पुन: फ़रमाया -

اَمْ لَكُمْ سُلْطٰنٌ مُّبِيْنٌ ○ فَاْتُوْا بِكِتٰبِكُمْ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ○

(सूरह अस्साफ़्फ़ात - 157, 158)

अनुवाद - *या तुम्हारे पास कोई ठोस (और) स्पष्ट तर्क है ? अत: अपनी किताब लाओ यदि तुम सच्चे हो।*

स्वतंत्रता की सीमाएं

आज समस्त विश्व स्वतंत्रता के उद्घोषों से गूंज रहा है। इन उद्घोषों की तीव्रता कहीं कम है तो कहीं अधिक। विश्व के भिन्न-भिन्न भागों में इन उद्घोषों का अर्थ भी भिन्न-भिन्न लिया जाता है परन्तु यह एक वास्तविकता है कि स्वतंत्रता के महत्त्व और मूल्य के संबंध में मनुष्य का ज्ञान और विवेक विकसित हो रहा है और प्रत्येक स्थान पर स्वतंत्रता और आज़ादी की आवश्यकता महसूस की जा रही है परन्तु प्रश्न यह है कि मनुष्य किस वस्तु से स्वतंत्रता का अभिलाषी है ? क्या वह विदेशी आधिपत्य से मुक्ति चाहता है ? क्या वह निरंकुशता, फासिज़्म (Fascism), धार्मिक मुल्लापन अथवा एक दलीय निरंकुश शासन से स्वतंत्रता का अभिलाषी है ? क्या वह अत्याचारी और अन्यायी प्रजातंत्रों के हाथों तंग है या भ्रष्ट अधिकारियों का सताया हुआ है ? क्या आज का मनुष्य इसलिए दुखी है कि निर्धन देश पूंजीपति देशों के जाल में बुरी तरह फंसे हुए हैं ? क्या वह अज्ञानता और भ्रम से मुक्ति चाहता है ? क्या वह कामवासनाओं के आनंद से तंग आ चुका है ? वास्तविकता यह है कि आज मानवता को इन सब विपत्तियों से आज़ादी की आवश्यकता है।

इस्लाम मनुष्य को इन समस्त कष्टों और विपत्तियों से मुक्ति दिलाने का दावेदार है परन्तु इस उद्देश्य के लिए वह कोई ऐसा मार्ग अपनाने के पक्ष में नहीं जिससे अराजकता और उपद्रव एवं उत्पात पैदा हो। इस्लाम इस बात का समर्थन नहीं करता कि इन समस्त सामाजिक दोषों का निवारण करने के लिए एक ऐसे उन्मादपूर्ण प्रतिशोध का द्वार खोल दिया जाए जिस से निर्दोष और मासूम लोग भी मारे जाएं। इस सन्दर्भ में इस्लाम का सन्देश यह है कि -

وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الْفَسَادَ ۝

(सूरह अल बक़रह - 206)

अनुवाद - *और परमेश्वर उपद्रव करने वालों को पसन्द नहीं करता।*

इस्लाम प्रत्येक दूसरे धर्म की भांति संतुलित स्वतंत्रता पर बल देता है। इस्लाम के अनुसार स्वतंत्रता की इमारत को "कुछ लो कुछ दो" के आधार पर खड़ा होना चाहिए अर्थात व्यक्ति समाज के लिए कुछ दायित्वों को उठाए और समाज व्यक्ति को कुछ अधिकार प्रदान करे। समाज के परिदृश्य में मात्र स्वतंत्रता का उद्घोष बिल्कुल खोखला, निरर्थक, अस्वाभाविक और अवास्तविक उद्घोष है। स्वतंत्रता के कभी-कभी ऐसे ग़लत अर्थ लिए जाते हैं और उसकी कल्पना को इतना ग़लत प्रयोग किया जाता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सुन्दर सिद्धान्त अत्यन्त भद्दा और कुरूप बन कर रह जाता है। गाली-गलौज, दूसरों के मान-सम्मान पर प्रहार तथा पवित्र और पुनीत अस्तित्वों का निरादर यह कहां की स्वतंत्रता है ?

धार्मिक मर्यादाओं का मर्दन

जहां तक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का संबंध है इस्लाम ने अन्य धर्मों की तुलना में एक पग और आगे बढ़ाया है। धार्मिक मर्यादा का अनादर निःसन्देह नैतिक दृष्टि से निन्दनीय है परन्तु इस्लाम ने उसका कोई प्रत्यक्ष दण्ड निर्धारित नहीं किया। इस युग में सामान्य तौर पर तो यही समझा जाता है कि इस्लाम ने धार्मिक अनादर का दण्ड निर्धारित किया है, परन्तु मैंने कई बार बड़ी सूक्ष्मता के साथ क़ुर्आन करीम का अध्ययन किया है एक आयत भी ऐसी नहीं जिसमें धार्मिक अनादर को ऐसा अपराध ठहरा दिया गया हो जिसका दण्ड देना किसी मनुष्य के अधिकार में हो यद्यपि क़ुर्आन करीम किसी भी प्रकार का अशिष्ट आचरण और ऐसी किसी बात की अनुमति नहीं देता जिससे दूसरों की कोमल भावनाएं आहत होती हों। परन्तु इसके बावजूद क़ुर्आन

करीम इस संसार में न तो किसी उद्दण्डता और निन्दा का कोई दण्ड प्रस्तावित करता है और न ही इस बारे में किसी मनुष्य को दण्ड देने का कोई अधिकार देता है।

धार्मिक मर्यादा के अनादर का क़ुर्आन करीम में पांच स्थानों पर वर्णन आता है। सामान्य रूप में यह विषय इस आयत में यों वर्णन किया गया है -

وَقَدْ نَزَّلَ عَلَيْكُمْ فِي الْكِتٰبِ اَنْ اِذَا سَمِعْتُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ يُكْفَرُ بِهَا وَيُسْتَهْزَاُ بِهَا فَلَا تَقْعُدُوْا مَعَهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِيْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖٓ ۖ اِنَّكُمْ اِذًا مِّثْلُهُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ جَامِعُ الْمُنٰفِقِيْنَ وَالْكٰفِرِيْنَ فِيْ جَهَنَّمَ جَمِيْعًا ۙ

(सूरह अन्निसा - 141)

अनुवाद - *और निश्चय ही उसने तुम पर किताब में यह आदेश उतारा है कि जब तुम सुनो कि परमेश्वर की आयतों का इन्कार किया जा रहा है या उन से उपहास किया जा रहा है तो उन लोगों के पास न बैठो यहां तक कि वे इस बात के अतिरिक्त किसी अन्य बात में व्यस्त न हो जाएं। आवश्यक है कि इस परिस्थिति में तुम बिल्कुल उन जैसे ही हो जाओ। निश्चय ही परमेश्वर सब कपट करने वालों और काफ़िरों को नर्क में एकत्र करने वाला है।*

وَاِذَا رَاَيْتَ الَّذِيْنَ يَخُوْضُوْنَ فِيْٓ اٰيٰتِنَا فَاَعْرِضْ عَنْهُمْ حَتّٰى يَخُوْضُوْا فِيْ حَدِيْثٍ غَيْرِهٖ ؕ وَاِمَّا يُنْسِيَنَّكَ الشَّيْطٰنُ فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرٰى مَعَ الْقَوْمِ الظّٰلِمِيْنَ ○

(सूरह अलअन्आम – 69)

अनुवाद - *और जब तू देखे उन लोगों को जो हमारी आयतों से उपहास करते हैं तू फिर उनसे अलग हो जा यहां तक कि वे किसी दूसरी बात में व्यस्त हो जाएं और यदि कभी शैतान तुझ से इस मामले में भूल-चूक करा दे तो याद आ जाने पर अत्याचारी जाति के साथ न बैठो।*

धार्मिक मर्यादाओं का अनादर कितना घृणित और भयानक कृत्य है परन्तु इसके विरुद्ध कैसी सुन्दर प्रतिक्रिया प्रस्तुत की गई है। एक तो इस्लाम किसी व्यक्ति को यह अनुमति नहीं देता कि वह धर्म का अनादर करने वाले को दण्ड देने का काम अपने हाथों में ले ले, दूसरे वह यह भी घोषणा करता है कि ऐसी हरकत के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप उन लोगों की सभा से उठ कर बाहर आ जाना चाहिए। जहां धार्मिक आस्थाओं का उपहास किया जा रहा हो तथा हंसी ठट्ठे से काम लिया जा रहा हो, ऐसे लोगों के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करना तो दूर की बात रही, क़ुर्आन करीम ने उस से स्थायी तौर पर बातचीत करने तक का भी आदेश नहीं दिया। क़ुर्आन करीम ने नितान्त स्पष्टता के साथ बता दिया है कि ऐसे लोगों से पृथकता केवल उस अवधि के मध्य होगी जिसमें वे निन्दा और अनादर कर रहे हों।

फिर सूरह अलअन्आम की एक अन्य आयत में भी अनादर की चर्चा है जिसमें केवल ख़ुदा तआला की प्रतिष्ठा में उद्दण्डता की ही चर्चा नहीं की गई अपितु मूर्तियों एवं अन्य काल्पनिक उपास्यों की निन्दा और अनादर का प्रश्न भी संभावित तौर पर बहस के अन्तर्गत लाया गया है। इस आयत को पढ़ते समय मनुष्य क़ुर्आनी शिक्षा की सुन्दरता को देख कर भाव-विमग्न हुए बिना नहीं रह सकता।

وَلَا تَسُبُّوا الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ فَيَسُبُّوا اللّٰهَ عَدْوًۢا بِغَيْرِ عِلْمٍ ؕ كَذٰلِكَ زَيَّنَّا لِكُلِّ اُمَّةٍ عَمَلَهُمْ ۪ ثُمَّ اِلٰى رَبِّهِمْ مَّرْجِعُهُمْ فَيُنَبِّئُهُمْ بِمَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ○

(सूरह अलअन्आम – 109)

अनुवाद - *और तुम उनको गालियां न दो जिन्हें वे परमेश्वर के अतिरिक्त पुकारते हैं अन्यथा वे शत्रुता (प्रतिकार स्वरूप) करते हुए बिना जानकारी के परमेश्वर को गालियां देंगे। इस प्रकार हम ने प्रत्येक जाति को उन के काम सुन्दर करके दिखाए हैं। फिर उनके रब्ब की ओर उन्हें लौटकर जाना है। तब वह उन्हें इस बात से अवगत करेगा जो वह किया करते थे।*

यह बात विशेष तौर पर ध्यान देने योग्य है कि इस आयत में सीधे तौर पर मुसलमानों को सम्बोधित किया गया है। मुसलमानों को मुश्रिकों की मूर्तियों और अन्य काल्पनिक उपास्यों का अनादर करने से बड़ी कठोरता के साथ मना किया गया है और यह भी बता दिया गया है कि यदि कोई व्यक्ति ऐसा करता है तो विरोधीजन प्रतिक्रिया स्वरूप परमेश्वर का अनादर करने वाले हो सकते हैं। परमेश्वर का अनादर तथा मूर्तियों के अनादर की संभावित बहस में दोनों परिस्थितियों में कोई शारीरिक दण्ड प्रस्तावित नहीं किया गया है। इस शिक्षा में जो क्रियात्मक सीख दी गई है वह अपने अन्दर बड़ी गहरी दूरदर्शिता रखती है। यदि कोई व्यक्ति किसी की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाता है तो दूसरे को भी ऐसा करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है और जब वह प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसा ही करेगा तो फिर यह नहीं देखा जाएगा कि वह जिस धर्म का निरादर कर रहा है वह स्वयं में सही है या ग़लत, दोनों पक्ष प्रतिक्रियात्मक कार्यवाही करने का समान अधिकार रखते हैं। अतः परिणाम यह निकलता है कि यदि धार्मिक अपराध किया गया है तो उसका बदला भी उसी तरह का

लिया जाएगा। यह बिल्कुल उसी प्रकार से है जिस प्रकार किसी को शारीरिक कष्ट पहुंचाया गया हो तो उसका बदला भी शारीरिक कष्ट ही होगा। यद्यपि शर्त यह होगी कि बदला लेने में किसी प्रकार की किसी अतिशयता को स्थान न दिया जाए।

وَّبِكُفْرِهِمْ وَقَوْلِهِمْ عَلٰى مَرْيَمَ بُهْتَانًا عَظِيْمًا ۙ

(सूरह अन्निसा - 157)

अनुवाद - *तथा उनके कुफ्र के कारण और उनके मरयम के विरुद्ध एक बहुत बड़े आरोप की बात कहने के कारण।*

इस आयत में हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम के युग के यहूद के इस घिनौने और अपमानजनक दृष्टिकोण की ओर संकेत किया गया है जो अब इतिहास बन चुका है। यहूदियों ने यह आरोप लगाया था कि हज़रत मरयम (हम ईश्वर से शरण चाहते हैं) सतीत्व नहीं रखतीं। अत: हज़रत मसीह का जन्म भी आपत्तिजनक है। यहूद का यह आरोप इन दोनों पुनीत अस्तित्वों की शान में अत्यन्त अपमान और उद्दण्डता पर आधारित है। यहूद के इस आरोप को इस आयत में बड़ा आरोप अर्थात बहुत ही बड़ा आरोप ठहराया गया है और इस नितान्त कष्टदायक धृष्टता और अनादर की अत्यन्त कड़े शब्दों में निन्दा की गई है परन्तु आश्चर्यजनक बात यह है कि इस धृष्टता का कोई शारीरिक दण्ड प्रस्तावित नहीं किया गया है।

यह बात भी दिलचस्पी से खाली नहीं है कि यहूदियों की निन्दा तो इसलिए की गई कि उन्होंने हज़रत मरयम[अ.] और हज़रत मसीह[अ.] दोनों का अनादर किया था परन्तु ईसाइयों की निन्दा स्वयं परमेश्वर की प्रतिष्ठा में धृष्टता करने के कारण की गई है। ईसाइयों की धृष्टता यह है कि उन्होंने यह कहा कि परमेश्वर के यहां उसकी पत्नी के

द्वारा जो मनुष्यों में से थी एक बेटा पैदा हुआ। क़ुर्आन करीम ने ईसाइयों के इस आरोप को एक बहुत बड़ी उद्दण्डता बताया है परन्तु इसके बावजूद किसी प्रकार का कोई शारीरिक दण्ड निर्धारित नहीं किया गया और न ही किसी मानव-अदालत को यह अधिकार दिया गया कि वह परमेश्वर की प्रतिष्ठा में ऐसी बड़ी उद्दण्डता करने वालों को कोई दण्ड दे। क़ुर्आन करीम की वह आयत जिसमें परमेश्वर की प्रतिष्ठा में उद्दण्डता करने पर ईसाईयों की निन्दा की गई है यह है -

مَا لَهُمْ بِهٖ مِنْ عِلْمٍ وَّلَا لِاٰبَآئِهِمْ ؕ كَبُرَتْ كَلِمَةً تَخْرُجُ مِنْ اَفْوَاهِهِمْ ؕ اِنْ يَّقُوْلُوْنَ اِلَّا كَذِبًا ۝

(सूरह अलकहफ़ - 6)

अनुवाद - *उन्हें इसका कुछ भी ज्ञान नहीं, न ही उनके पूर्वजों को था। बहुत बड़ी बात है जो उन के मुखों से निकलती है। वे झूठ के अतिरिक्त कुछ नहीं कहते।*

अब मैं अन्त में एक अत्यन्त संवेदनशील समस्या की ओर आता हूं। यह समस्या इस दृष्टि से भी संवेदनशील है कि आजकल के मुसलमान तौहीने-रिसालत (हज़रत मुहम्मद साहिब[स.] के पैग़म्बर होने के बाद उनकी आस्थानुसार आस्था न रखना हज़रत मुहम्मद साहिब[स.] का अनादर है) के संबंध में पहले से अधिक संवेदनशील हैं। इस्लामी इतिहास में धार्मिक अनादर की एक घटना मिलती है जो इतनी क्रूर है कि स्वयं क़ुर्आन करीम ने उसे रिकार्ड किया है।

यह घटना अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के संबंध में है जिसे इस्लामी इतिहास में 'कपटाचारियों का सरदार' के नाम से याद किया जाता है। एक युद्ध से वापस आते समय उसने दूसरे लोगों की

उपस्थिति में कहा कि वह ज्यों ही मदीना पहुंचेगा तो वहां का सबसे सम्मानित व्यक्ति वहां के सब से अपमानित व्यक्ति को मदीना से निकाल बाहर करेगा।

क़ुर्आन करीम इस घटना का वर्णन इन शब्दों में करता है -

يَقُوْلُوْنَ لَئِنْ رَّجَعْنَآ اِلَى الْمَدِيْنَةِ لَيُخْرِجَنَّ الْاَعَزُّ مِنْهَا الْاَذَلَّ ؕ وَلِلّٰهِ الْعِزَّةُ وَلِرَسُوْلِهٖ وَلِلْمُؤْمِنِيْنَ وَلٰكِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ ○

(सूरह अलमुनाफ़िक़ून - 9)

अनुवाद - *वे कहते हैं कि यदि हम मदीना की ओर लौटेंगे तो अवश्य ही वह जो सर्वाधिक सम्मानित (व्यक्ति) है वह उसे जो सर्वाधिक अपमानित है उसमें से निकाल बाहर करेगा। हालांकि समस्त सम्मान परमेश्वर और उसके पैग़म्बर का है तथा मोमिनों का, परन्तु कपटाचारी लोग जानते नहीं है।*

इस वाक्य में हज़रत मुहम्मद[स.] की प्रतिष्ठा में की गई उद्दण्डता को आदर्णीय सहाबा[रज़ि.] भली भांति समझ गए थे तथा इस दु:साहस पर उनका रक्त क्रोध से खौल रहा था। उन्हें इसका इतना दुख था कि यदि उनको अनुमति होती तो वे निश्चय ही अब्दुल्लह बिन उबय्य बिन सुलूल के टुकड़े-टुकड़े कर डालते। प्रमाणित रिवायतों में वर्णन है कि इस घटना पर सहाबा इतने आक्रामक थे कि स्वयं अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के पुत्र ने हज़रत मुहम्मद साहिब[स.अ.व.] की सेवा में उपस्थित होकर अपने पिता का वध करने की आज्ञा मांगी। उसने निवेदन किया कि यदि किसी अन्य व्यक्ति ने मेरे पिता का वध किया तो ऐसा न हो कि बाद में अज्ञानता के कारण मेरे हृदय में अपने पिता का वध करने वाले के विरुद्ध प्रतिशोध-भावना भड़क उठे। अपनी या अपने निकटस्थ परिजनों की मामूली से अपमान का बदला लेना सदियों से अरब सभ्यता का भाग था। प्रतिशोध की यही परंपरा थी जो कदाचित उसके मस्तिष्क में थी,

परन्तु हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने न केवल ऐसा करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया अपितु सहाबा में से किसी अन्य को भी अनुमति नहीं दी कि इस कपटाचारी को किसी प्रकार का कोई दण्ड दे।

(इब्ने इस्हाक़, सीरतुन्नबी - लेखक - इब्ने हिशाम भाग - तृतीय से उद्धृत)

अत: इस युद्ध से मदीना वापस आकर अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल अभय होकर जीवन व्यतीत करता रहा। अन्तत: जब वह अपनी स्वाभाविक मृत्यु मरा तो सब यह देखकर स्तब्ध रह गए कि हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के बेटे को उसके पिता के कफ़न के लिए अपना कुर्ता प्रदान किया। वास्तव में यह हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह[स.अ.व.] का उसके लिए परमेश्वर की क्षमा मांगने का निराला ढंग था। आदरणीय सहाबा[रज़ि.] के हृदयों में उस समय यह इच्छा अवश्य जागी होगी कि काश वह अपना सर्वस्व देकर अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के बेटे से वह कुर्ता अपने लिए प्राप्त कर लें। आप[स.] ने इसी को पर्याप्त नहीं समझा अपितु उसकी जनाज़े की नमाज़ भी स्वयं पढ़ाने का निर्णय किया। इस निर्णय ने अधिकांश सहाबा को निश्चय है हैरान कर दिया होगा, क्योंकि वे अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल के उस विकट अपराध को क्षमा नहीं कर पाए थे जिसका वर्णन किया जा चुका है। अन्तत: आदरणीय सहाबा[रज़ि.] की खामोश भावनाओं को प्रकट करने का काम हज़रत उमर[रज़ि.] ने कर दिया। वर्णन किया जाता है कि जब हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह[स.अ.व.] जनाज़े की नमाज़ पढ़ाने के लिए पधार रहे थे जो हज़रत उमर[रज़ि.] अचानक आगे बढ़कर आप[स.] के मार्ग में खड़े हो गए। आप[रज़ि.] ने हज़रत रसूलुल्लाह की सेवा में विनती की कि आप[स.] अपने फैसले पर पुन: विचार करें अर्थात् अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल की नमाज़-ए-जनाज़ा न पढ़ाएं। इस अवसर पर

हज़रत उमर[रज़ि.] ने रसूले करीम[स.] को क़ुर्आन करीम की इस आयत को प्रस्तुत भी किया जिसमें कुछ कपटाचारियों के बारे में सिफ़ारिश स्वीकार न किए जाने का वर्णन है कि रसूलुल्लाह[स.] उनके लिए सत्तर बार भी क्षमा-प्रार्थना करें तो भी स्वीकार नहीं की जाएगी। सांकेतिक तौर पर यहां यह भी बताना चाहता हूं कि यहां सत्तर से शब्दिक तौर पर सत्तर की संख्या अभिप्राय नहीं है। अरबों के मुहावरे के अनुसार सत्तर का किसी वस्तु की प्रचुरता के लिए भी बोला जाता है और यहां इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। बहरहाल हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] हज़रत उमर[रज़ि.] की बात सुनकर मुस्कराए और कहा - उमर ! मेरा मार्ग छोड़ दो, मैं परमेश्वर का रसूल हूं और तुम से अधिक जानता हूं। यदि परमेश्वर मेरे सत्तर बार क्षमा-याचना करने पर भी ऐसे लोगों को क्षमा नहीं करेगा तो मैं सत्तर से अधिक बार उनके लिए क्षमा-याचना करूंगा। इसके बाद आप[स.] ने अब्दुल्लाह बिन उबय्य बिन सुलूल की नमाज़-ए-जनाज़ा पढ़ाई।

जो लोग हज़रत रसूलुल्लाह को गाली देने वाले के लिए मृत्यु से कम दण्ड पर सहमत नहीं होते यहां तक कि चीख़-चीख़कर उनके गले बैठ जाते हैं। क्या उनका मुख बन्द करने के लिए यही एक घटना पर्याप्त नहीं ? निश्चित रूप से ऐसा धर्म ही समस्त संसार के धर्मों के मध्य शान्ति स्थापित करने के दावे का अधिकार रखता है।

धर्मों के मध्य परस्पर सहयोग

धर्मों के पारस्परिक संबंधों में इस्लाम एक पग और आगे बढ़ाता है। अतः फ़रमाया -

وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ اَنْ صَدُّوْكُمْ عَنِ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ اَنْ تَعْتَدُوْا ۘ وَتَعَاوَنُوْا عَلَى الْبِرِّ وَ التَّقْوٰى ۪ وَلَا تَعَاوَنُوْا عَلَى الْاِثْمِ وَالْعُدْوَانِ ۪ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ○

(सूरह अलमाइदह - 3)

अनुवाद - *और तुम्हें किसी जाति की शत्रुता इस कारण से कि उन्होंने तुम्हें मस्जिद-ए-हराम (काबा) से रोका था इस बात पर न उकसाए कि तुम अतिशयता से काम लो तथा नेकी और संयम में परस्पर सहयोग करो और पाप तथा अतिशयता (के कार्यों) में सहयोग न करो तथा परमेश्वर से डरो। निश्चय ही परमेश्वर दण्ड देने में बहुत कठोर है।*

अतः क़ुर्आन करीम मुसलमानों को ऐसे शत्रुओं के साथ भी अन्याय करने की अनुमति नहीं देता जो धार्मिक वैमनस्य के कारण उन पर आक्रमणकारी हुए हों तथा ऐसे ग़ैर मुस्लिम जिन्होंने मुसलमानों के विरुद्ध कभी युद्ध नहीं किया उनका वर्णन करते हुए क़ुर्आन करीम मोमिनों को आदेश देता है -

عَسَى اللّٰهُ اَنْ يَّجْعَلَ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَ الَّذِيْنَ عَادَيْتُمْ مِّنْهُمْ مَّوَدَّةً ؕ وَ اللّٰهُ قَدِيْرٌ ؕ وَ اللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ○ لَا يَنْهٰكُمُ اللّٰهُ عَنِ الَّذِيْنَ لَمْ يُقَاتِلُوْكُمْ فِي الدِّيْنِ وَلَمْ يُخْرِجُوْكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ اَنْ تَبَرُّوْهُمْ وَتُقْسِطُوْٓا اِلَيْهِمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِيْنَ ○

(सूरह अलमुमतहिन: आयत - 8, 9)

अनुवाद - *निकट है कि परमेश्वर तुम्हारे और उनके मध्य जिनमें कुछ लोगों से तुम शत्रुता रखते हो प्रेम पैदा कर दे और परमेश्वर सदैव शक्ति रखने वाला तथा बहुत क्षमा करने वाला (और) बार-बार दया करने वाला है। परमेश्वर तुम्हें उनसे मना नहीं करता जिन्होंने तुम से धर्म के मामले में रक्तपात नहीं किया और न तुम्हें तुम्हारे घरों से बाहर निकाला कि उन से नेकी करो तथा उनसे न्यायपूर्वक व्यवहार करो। निश्चय ही परमेश्वर न्याय करने वालों से प्रेम करता है।*

मुसलमानों को यह शिक्षा दी गई है कि वे एकेश्वरवाद के संदेश के प्रचार के लिए अहले किताब (जिन्हें परमेश्वर की ओर से किताब दी गई) को भी सहयोग के लिए बुलाएं, क्योंकि एकेश्वरवाद की आस्था तो सब में सांझी है। क़ुर्आन करीम की निम्नलिखित आयत का अर्थ भी यही है कि इस सांझी बात पर बल दिया जाए। उद्देश्य यह है कि इस समस्याओं पर एकत्र होकर ऐसे कार्यक्रम बनाए जाएं जिन से मानव जाति का कल्याण हो न कि मतभेदीय समस्याओं को हवा देकर बिगाड़ पैदा किया जाए।

قُلْ يٰٓاَهْلَ الْكِتٰبِ تَعَالَوْا اِلٰى كَلِمَةٍ سَوَآءٍۭ بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ اَلَّا نَعْبُدَ اِلَّا اللّٰهَ وَلَا نُشْرِكَ بِهٖ شَيْـًٔا وَّلَا يَتَّخِذَ بَعْضُنَا بَعْضًا اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؕ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَقُوْلُوا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ○

(सूरह आले इमरान - 65)

अनुवाद - *तू कह दे, हे अहले किताब ! उस बात की ओर आओ जो हमारे और तुम्हारे मध्य सांझा है कि हम परमेश्वर के अतिरिक्त किसी की उपासना नहीं करेंगे और न ही किसी वस्तु को उसका भागीदार ठहराएंगे और हम में से कोई किसी*

दूसरे को परमेश्वर के अतिरिक्त रब्ब नहीं बनाएगा। अत: यदि वे मुंह फेरें तो कह दो कि साक्षी रहना कि हम निश्चय ही मुसलमान हैं।

निष्कर्ष

क्या समस्त संसार के धर्म विश्व-शान्ति की स्थापना में कोई सार्थक भूमिका अदा कर सकते हैं ? परन्तु थोड़ा ठहरिए, पहले तो यह देखना होगा कि विभिन्न धर्मों ने अपने अनुयायियों तथा अन्य सम्प्रदायों के मध्य शान्ति स्थापित करने में क्या भूमिका अदा की है। क्या विभिन्न धर्म (जब तक हैं) कभी परस्पर शान्तिपूर्वक रहना सीख सकते हैं ? यदि भौतिकवाद के बढ़ते हुए प्रभावों को देखा जाए और उस ओर दृष्टि डाली जाए कि संसार किस प्रकार आध्यात्मिक आनन्दों के स्थान पर भौतिक तथा कामवासनाओं संबंधी आनन्दों को महत्त्व दे रहा है तो यह विश्वास होने लगता है कि धर्म की भूमिका इस परिस्थिति में कोई महत्त्व नहीं रखती। अतः उसे बिल्कुल छोड़ देना चाहिए।

परन्तु मुझे खेद है कि मैं इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हो सकता। मेरे निकट धर्म विश्व-शान्ति की स्थापना में एक भूमिका निभाता रहेगा तथा दुर्भाग्य से वह अत्यन्त नकारात्मक भूमिका होगी सिवाए इसके कि समस्त धर्म अपने आन्तरिक और प्रत्यक्ष आचरणों में कोई सुन्दर परिवर्तन पैदा कर लें। धर्म को तो शान्ति स्थापित करने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करना चाहिए थी, उसका कार्य तो यह था कि विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के अनुयायियों के मध्य बोध-भ्रान्तियों के निवारण, शालीनता का प्रचलन तथा 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त को लागू करने के सन्दर्भ में अपना कर्त्तव्य निभाना, परन्तु दुर्भाग्य यह है कि वर्तमान युग में शान्ति की प्रगति के लिए धर्मों ने यदि कहीं कोई भूमिका अदा की भी है तो वह बहुत ही हल्की और साधारण

प्रकार की है। इसके विपरीत उपद्रव और रक्तपात को जन्म देने की दृष्टि से धर्म आज भी एक बहुत काम करने वाली शक्ति है। दु:ख और कष्ट पैदा करने में धर्म की शक्ति को कभी कम नहीं समझना चाहिए। अत: यदि हम विश्व शान्ति के इच्छुक हैं तो इस महत्त्वपूर्ण समस्या का समाधान किए बिना वह पूर्ण नहीं हो सकता। आन्तरिक तौर पर भी धर्म की शक्ति को नकारात्मक रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। एक ही धर्म के अनुयायियों की धार्मिक भावनाओं को उस धर्म से सम्बद्ध कुछ लोगों के विरुद्ध भड़काया जा सकता है। उन पर संकटों और विपत्तियों के पर्वत तोड़े जा सकते हैं, केवल इसलिए कि दुर्भाग्य से वे अल्पमत में हैं।

मुसलमानों का सम्पूर्ण इतिहास ऐसी भयानक और भद्दी घटनाओं से भरा पड़ा है। जब इस्लाम को जो अमन और शान्ति का धर्म है दूसरे निर्दोष मुसलमानों के अमन और चैन को नष्ट और बरबाद करने के लिए प्रयुक्त किया गया। वे पीड़ित लोग नि:सन्देह मुसलमान ही थे केवल उनकी आस्था वह नहीं थी जो बहुसंख्यक सम्प्रदाय उन पर ठूंसना चाहते थे। इस्लामी इतिहास से यह बात सिद्ध है कि स्वयं मुसलमानों पर इस्लाम के नाम पर उत्पात और अत्याचार किए गए हैं। मुसलमानों ने जितने सलीबी युद्ध ईसाइयों के विरुद्ध किए हैं वे संख्या और भीषणता में उन 'पवित्र' युद्धों से बहुत कम हैं जो चौदह सौ वर्षों में मुसलमानों ने मुसलमानों के विरुद्ध किए हैं और यह कहानी अपने समापन को नहीं पहुंची। पाकिस्तान में अहमदी मुसलमानों के साथ जो कुछ हो रहा है और जो कुछ अल्पसंख्यक शियों के विरुद्ध प्राय: होता रहता है वह उस कटु यथार्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराने के लिए पर्याप्त है। यह परिस्थिति सचेत कर रही है कि जो उपद्रवपूर्ण समस्या बहुत समय पूर्व समाप्त हो जानी चाहिए थी वह आज भी यथावत विद्यमान है।

ईसाइयों ने भी स्वयं ईसाइयों पर अत्याचार किए हैं। यदि यूरोप और अमरीका के इतिहास में दफ़्न धार्मिक अत्याचार और अन्याय की घटनाएं लम्बे समय के कारण मस्तिष्कों से मिट गई हों तो केवल आयरलैंड में जारी धार्मिक एवं राजनैतिक संघर्ष को एक बार देख लेना पर्याप्त होगा। अन्य क्षेत्रों में भी ईसाइयत में आन्तरिक साम्प्रदायिक संघर्ष के ख़तरे विद्यमान हैं, यद्यपि अभी ये क्षेत्र कुछ अन्य प्रकार के झगड़ों और विवादों में लिप्त हैं। हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव-दंगे, नाइजीरिया में ईसाइयों और मुसलमानों के संघर्ष, मध्यपूर्व में यहूदियों और मुसलमानों के युद्ध अथवा यहूदियों और ईसाइयों के संवेदनशील आर्थिक एवं राजनैतिक संबंध तथा उनमें बिगाड़ का गुप्त रुझान वास्तव में इन्हीं छुपे ख़तरों की ओर संकेत करते हैं। ये ख़तरे धार्मिक जगत में प्रसुप्त ज्वालामुखी पर्वतों के समान हैं जो किसी भी समय फट सकते हैं। इन समस्याओं के सन्दर्भ में मानसिक व्यवहारों में सुधार करने का महत्त्व इतना स्पष्ट है कि उस पर और अधिक बल देने की आवश्यकता नहीं है। इस्लाम उन समस्याओं का क्या समाधान प्रस्तुत करता है ? इस पर विस्तृत बहस गुज़र चुकी है। नीचे इस बहस के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का संक्षिप्त तौर पर वर्णन करके मैं इस भाग को समाप्त करता हूं।

(1) विश्व के समस्त धर्मों को चाहे वे इस्लाम को सच्चा धर्म स्वीकार करते हैं अथवा नहीं इस मौलिक इस्लामी सिद्धान्त पर कार्यरत होना चाहिए कि आन्तरिक साम्प्रदायिक झगड़ों तथा अन्य धर्मों के साथ अन्य विवादों को हल करने के लिए शक्ति एवं बल के प्रयोग करने की किसी भी परिस्थिति में अनुमति नहीं दी जाएगी। प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया जाएगा। धार्मिक स्वतंत्रता में किसी व्यक्ति को कोई धर्म अपनाने या न अपनाने, अपनी आस्था की घोषणा करने, उस का पालन करने तथा उसका प्रचार

करने, किसी आस्था को ग़लत कहने या उसे छोड़ने अथवा अपनी आस्था परिवर्तित करने की पूरी स्वतंत्रता होगी और उस स्वतंत्रता को पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

(2) समस्त धर्म वालों के लिए कम से कम इस इस्लामी सिद्धान्त की पाबन्दी अनिवार्य होगी कि वे समस्त धर्मों के प्रवर्तकों तथा प्रत्येक धर्म के बुज़ुर्गों का सम्मान करें। अन्य धर्म चाहे सच्चाई की इस्लामी विचारधारा और उसके ईश्वरीय होने को स्वीकार करने वाले भी हों, यहूदी मत, ईसाई मत, बुद्ध मत, कन्फ्यूशस मत, हिन्दू मत, ज़रथ्रुश्त मत आदि के दृष्टिकोण से चाहे शेष धर्म झूठे ही क्यों न हों और परमेश्वर से उनको कोई भी संबंध न हो तब भी हर धर्म के पुनीत पुरुषों का सम्मान करना उनके लिए अनिवार्य होगा यद्यपि ऐसा करते समय उन्हें अपने सिद्धान्तों के बारे में किसी प्रकार का समझौता करने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि पारस्परिक सम्मान तो मनुष्य के मौलिक अधिकारों से संबंधित समस्या है। प्रत्येक मनुष्य के इस मौलिक मानव अधिकार को स्वीकार करना आवश्यक है कि उसकी धार्मिक अनुभूतियों एवं भावनाओं को किसी प्रकार भी ठेस न पहुंचाई जाए और उसके हृदय को कष्ट न हो।

(3) यह स्मरण रखना आवश्यक है कि धर्मों के पेशवाओं का सम्मान के सिद्धान्त को किसी राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। धार्मिक अनादर को एक निकृष्ट कृत्य ठहराने तथा उसको निरुत्साह करने के लिए जन-चेतना को जागृत करना चाहिए ताकि वह ऐसे अशिष्ट, अनुचित और अभद्र आचरण की निन्दा करे।

(4) इस शताब्दी के प्रारंभ में जमाअत अहमदिया ने जिस पद्धति पर सर्वधर्म सम्मेलनों के आयोजनों का क्रम आरंभ किया था, ऐसे

सम्मेलनों के आयोजनों को विशाल स्तर पर प्रोत्साहन देना चाहिए तथा उनका प्रचलन करना चाहिए। ऐसे सम्मेलनों की जो विशेषताएं होनी चाहिएं वे संक्षिप्त तौर पर वर्णन की जाती हैं -

(अ) समस्त भाषण देने वालों को चाहिए कि वे अपने-अपने धर्म के मनमोहक और विशिष्ट गुण वर्णन करें तथा दूसरे धर्मों पर कीचड़ न उछालें।

(ब) भाषण देने वालों को चाहिए कि पूर्ण ईमानदारी एवं निष्ठा से अन्य धर्मों के गुणों को खोजने का प्रयत्न करें और फिर उन्हें अपने भाषणों में प्रस्तुत करें और यह भी बताएं कि वे उन गुणों से प्रभावित हैं।

(स) वक्ताओं को अन्य धर्मों के प्रवर्तकों और पेशवाओं की जीवनी और चरित्र का अभिनन्दन करना चाहिए। उदाहरणतया एक यहूदी वक्ता हज़रत मुहम्मद साहिब[स.] की मुख्य विशेषताएं वर्णन कर सकता है अर्थात ऐसी विशेषताएं जिनकी समस्त जन अपनी धार्मिक आस्थाओं से किसी प्रकार का समझौता किए बिना प्रशंसा कर सकते हैं। इसी प्रकार एक मुसलमान वक्ता हज़रत कृष्ण[अ.] के संबंध में भाषण दे सकता है, एक हिन्दू हज़रत ईसा[अ.] और एक बुद्ध हज़रत मूसा[अ.] का जीवन-चरित्र वर्णन कर सकता है इत्यादि, इत्यादि। इस शताब्दी के तीसरे दशक में जमाअत अहमदिया के प्रबन्ध के अन्तर्गत हिन्दू-मुस्लिम संबंधों को उत्तम बनाने के लिए ऐसी लाभप्रद एवं लोकप्रिय सम्मेलन आयोजित हुआ करते थे।

(ज) उपरोक्त प्रस्ताव (स) के संबंध में किसी अपवाद के बिना इस बात का ध्यान रखा जाना अत्यन्त आवश्यक होगा कि विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के मध्य विचार-विमर्श के समय धार्मिक शास्त्रार्थ की मर्यादा की पूरी सुरक्षा की जाए। धार्मिक विचार-विमर्श की यह कहकर

निन्दा नहीं की जानी चाहिए कि इससे शान्ति भंग होने की आशंका रहेगी। यदि बहस की पद्धति और शैली ग़लत है तो केवल उस ग़लत ढंग ओर दोषपूर्ण शैली की निन्दा होनी चाहिए न कि बहस को ही स्वयं में ग़लत ठहरा दिया जाए। अपने विचारों की स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्ति एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मौलिक मानव अधिकार है। योग्यतम की उत्तरजीविता की नित्यता के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि किसी मूल्य पर भी इस सिद्धान्त से समझौता न किया जाए।

(र) मतभेदों के क्षेत्र को सीमित करने और पारस्परिक सहमति की संभावनाओं को विकसित करने के लिए इस सिद्धान्त को स्वीकार करना अत्यन्त आवश्यक है कि समस्त धर्म अपनी बहस को अपने और दूसरे धर्मों के आधारभूत सिद्धान्त तक सीमित रखेंगे। क़ुर्आन करीम की यह घोषणा कि समस्त धर्म अपने आरंभ में समान थे बड़ा महत्त्व रखती है और इसमें महान नीतियां निहित हैं। समस्त धर्मों को अपने और समस्त मानवजाति के कल्याण के लिए क़ुर्आन करीम की इस घोषणा का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और उसका सत्य परखने के लिए खोज करनी चाहिए।

(5) सांझे हितों की समस्त योजनाओं के सहयोग का विकास किया जाए और उसे अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया जाए। उदाहरणतया जन-हित योजनाओं पर ईसाई, मुसलमान, हिन्दू और यहूदी सब मिलकर कार्य कर सकते हैं।

अतीतकालीन दार्शनिकों और वलियों (ऋषियों) ने मानवजाति की एकता के जो स्वप्न देखे थे हम केवल इसी स्थिति में साकार करने की आशा कर सकते हैं वह स्वप्न जिनमें उन्होंने धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में मानवजाति को एक झण्डे के नीचे एकत्र करने की कल्पना की थी।

अध्याय - 2

सामाजिक शान्ति

- वर्तमान युग की सामाजिक व्यवस्था
- दो प्रकार के सामाजिक वातावरण
- भौतिकवादी समाज का परिणाम
- मृत्योपरान्त जीवन का इन्कार
- भौतिकवादी समाज की चार विशेषताएं
- कर्मों के उत्तरदायित्व की विचारधारा
- इस्लामी समाज का विशेष्य वातावरण
- इस्लामी समाज के मौलिक सिद्धान्त
- सतीत्व एवं शुद्धाचरण
- परदा और उसकी वास्तविकता
- स्त्रियों के अधिकारों के एक नवयुग का प्रारंभ
- स्त्रियों के समान अधिकार
- बहु विवाह
- वयोवृद्ध सदस्यों की देखभाल
- भावी पीढ़ियां
- निरुद्देश्य और निरर्थक कार्यों को प्रोत्साहन न देना।
- इच्छाओं पर संयम रखना
- समझौतों और वचनों का सम्मान
- बुराई का अन्त - एक सामूहिक दायित्व
- आदेश एवं निषेधादेश
- आदेश
- निषेधादेश
- इस्लाम वंशवाद का खंडन करता है

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُ بِالْعَدْلِ وَالْاِحْسَانِ وَ اِيْتَآئِ ذِى الْقُرْبٰى وَ يَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَالْمُنْكَرِ وَالْبَغْىِ ۚ يَعِظُكُمْ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ○

(सूरह अन्नहल - 91)

अनुवाद - *निश्चय ही परमेश्वर न्याय और उपकार का तथा परिजनों पर किए जाने वाले दान के समान दान का आदेश देता है तथा अश्लीलता और घृणित बातों एवं विद्रोह से मना करता है ताकि तुम नसीहत प्राप्त करो।*

اِعْلَمُوْٓا اَنَّمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا لَعِبٌ وَّلَهْوٌ وَّ زِيْنَةٌ وَّتَفَاخُرٌۢ بَيْنَكُمْ وَتَكَاثُرٌ فِى الْاَمْوَالِ وَالْاَوْلَادِ ؕ كَمَثَلِ غَيْثٍ اَعْجَبَ الْكُفَّارَ نَبَاتُهٗ ثُمَّ يَهِيْجُ فَتَرٰىهُ مُصْفَرًّا ثُمَّ يَكُوْنُ حُطَامًا ؕ وَ فِى الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ شَدِيْدٌ ۙ وَّمَغْفِرَةٌ مِّنَ اللّٰهِ وَرِضْوَانٌ ؕ وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَآ اِلَّا مَتَاعُ الْغُرُوْرِ ○

(सूरह अलहदीद - 21)

अनुवाद - *जान लो कि संसार का जीवन मात्र खेल-कूद तथा कामवासनाओं को पूरा करने का ऐसा माध्यम है जो उच्चतम लक्ष्य से असावधान कर दे एवं सज-धज तथा परस्पर एक दूसरे पर गर्व करना है और धन-सम्पत्तियों एवं सन्तान में परस्पर बढ़ने का प्रयास करना है। (यह जीवन) उस वर्षा से उगने वाली खेती के समान है जिसका उगना काफ़िरों (के हृदयों) को लुभाता है। अत: वह तीव्रता से बढ़ती है फिर तू उसे पीला होते हुए देखता है फिर वह टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और आख़िरत में कठोर अज़ाब (निश्चित) है एवं परमेश्वर की ओर से क्षमा और प्रसन्नता भी, जबकि संसार का जीवन तो मात्र धोखे का एक अस्थायी सामान है।*

अब हम इस प्रश्न की ओर आते हैं कि वर्तमान युग में सामाजिक शान्ति को स्थापित करने में इस्लाम की क्या भूमिका है।

वर्तमान युग की सामाजिक व्यवस्था

दुर्भाग्य से आज के समाज में लोगों के व्यवहार से धर्म का प्रभाव तीव्रता से नष्ट होता जा रहा है, परिस्थितियां निकृष्ट ने निकृष्टतम होती चली जा रही हैं। लोग किसी न किसी प्रकार धार्मिक कर्त्तव्यों से छुटकारा प्राप्त करना चाहते हैं तथा धार्मिक पाबंदियों से दामन छुड़ाने की यह प्रवृत्ति बढ़ती ही चली जा रही है परन्तु जहां एक ओर धार्मिक और नैतिक मर्यादाओं की अवहेलना की जा रही है वहां इसके साथ-साथ समाज में बेचैनी और असुरक्षा की बढ़ती हुई भावना के कारण भय और निराशा की भावना भी जन्म ले रही है, उस जीवित और सदैव रहने वाले परमेश्वर से ईमान बड़ी तीव्रता से उठता चला जा रहा है जो न केवल मनुष्य का भाग्य बनाने वाला है अपितु वह यह अधिकार भी रखता है कि हमारे लिए जीवन पद्धति और नियम निर्धारित करे। इस वस्तु स्थिति को क़ुर्आन करीम संक्षिप्त तौर इस प्रकार वर्णन करता है -

ظَهَرَ الْفَسَادُ فِي الْبَرِّ وَالْبَحْرِ

(सूरह अर्रूम – 42)

अनुवाद – *उपद्रव जल और थल पर फैल गया।*

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक पश्चिम में ईसाई मत का प्रभुत्व था तथा ईसाइयों के आचरण और चरित्र पर ईसाइयत की पकड़ बहुत दृढ़ और प्रभावी थी, परन्तु खेद कि अब यह दृश्य परिवर्तित हो चुका है। वैज्ञानिक समाजवाद तथा तीव्रगामी वैज्ञानिक एवं भौतिक उन्नति के परिणामस्वरूप एक ऐसी संस्कृति ने जन्म लिया है जिसने ईसाई

मत को शनैः शनैः पीछे हटने पर विवश कर दिया है तथा लोगों के सामाजिक आचरण के निर्माण में ईसाइयत की भूमिका का धीरे-धीरे अन्त होता चला गया है। आज वस्तु स्थिति यह है कि पश्चिमी देशों में लोगों के आचरण और चरित्र पर ईसाइयत का मात्र इतना ही निशान शेष है जितना कि अधिकतर मुसलमान देशों में रहने वाले मुसलमानों पर इस्लाम का। खेद यह है कि शेष विश्व में भी सामाजिक और नैतिक पतन की यही स्थिति है। विभिन्न देशों में महात्मा बुद्ध, हज़रत कन्फ़्यूशस और हज़रत कृष्ण के मानने वाले तो बड़ी संख्या में पाए जाते हैं, किन्तु दुर्भाग्य यह है कि बुद्धमत, कन्फ़्यूशसमत और हिन्दूमत कहीं दिखाई नहीं देते अर्थात चारों ओर सागर विद्यमान है परन्तु प्यास बुझाने के लिए एक बूंद भी उपलब्ध नहीं।

यदि किसी समाज से धार्मिक या परम्परागत नैतिक आस्थाएं समाप्त हो जाएं तो फिर नई पीढ़ी अपने परम्परागत विरसे को आंखें बन्द करके स्वीकार नहीं करती। उसके लिए ये आस्थाएं महत्त्वहीन हो कर रह जाती हैं। ऐसी पीढ़ी को अनिवार्य तौर पर एक ऐसे संवेदनशील अन्तरिम दौर और संघर्ष में से गुज़रना पड़ता है जिसमें निराशाजनक शून्यावस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। न ही कोई नैतिक शिक्षा उन के पास होती है। तब जिज्ञासा की यह नवीन यात्रा आरंभ होती है, किन्तु लक्ष्य का न कुछ पता होता है और न परिणाम की कुछ ख़बर।

बहुत संभव है कि इस यात्रा में उन्हें कोई उत्तम नैतिक व्यवस्था मिल जाए परन्तु यह भी संभव है कि यह जिज्ञासा मनुष्य को पूर्ण अधिपतन तथा नैतिक अराजकता की ओर ले जाए। जो परिस्थितियां मुझे दिखाई दे रही हैं उन से अनुमान होता है कि दुर्भाग्य से वर्तमान युग का समाज यही मार्ग धारण कर चुका है। आज विश्व के सभी समाज चाहे वे पूर्वी हों अथवा पश्चिमी, धार्मिक हों अथवा अधार्मिक

क्रान्ति के निशाने पर हैं तथा उनके दुष्प्रभाव ने सम्पूर्ण विश्व को अपने घेरे में ले रखा है, किन्तु त्रासदी यह है कि आज का मनुष्य इस बढ़ती हुई नैतिक प्रदूषण के संबंध में इतना चिन्तित नहीं जितना भौतिक वातावरणों के प्रदूषित होने के बारे में व्याकुल है। क़ुर्आन करीम एक ऐसे ही उपद्रवपूर्ण युग का वर्णन करते हुए फ़रमाता है -

وَالْعَصْرِ ۝ اِنَّ الْاِنْسَانَ لَفِیْ خُسْرٍ ۝ اِلَّا الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَتَوَاصَوْا بِالْحَقِّ ۙ وَتَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ ۝

(सूरह अलअस्र - 2 से 4)

अनुवाद - *युग की क़सम ! निश्चय ही मनुष्य एक बड़े घाटे में है सिवाए उन लोगों के जो ईमान लाए और शुभ कर्म किए और सत्य पर दृढ़ रहते हुए एक दूसरे को सत्य की नसीहत की तथा धैर्य पर दृढ़ रहते हुए एक दूसरे को धैर्य की नसीहत की।*

शोषण, धोखाधड़ी, कपट करना, स्वार्थ, अन्याय, लोभ, आनन्द की पागलों के समान खोज, कुप्रबंधन, भ्रष्टाचार, चोरी-डकैती, मानवाधिकारों की अवहेलना, छल-कपट, दायित्व के प्रति संवेदनहीनता एवं परस्पर आदर और विश्वास की कमी आज के आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषताएं हैं। प्रत्यक्ष संस्कृति का झूठा आडंबर इस कुरूपता को अधिक समय तक गुप्त नहीं रख सकता जो अब खुलकर सामने आ रही है। यह कहना तो उचित न होगा कि इस प्रकार के मानव-दोष पूर्व युगों में नहीं होते थे अपितु वास्तविकता यह है कि अतीत की बहुत सी संस्कृतियां अपने अन्त से पूर्व ऐसे ही रोगों का शिकार थीं। मानव इतिहास में विस्मृत हो जाने से पहले उन्हें भी ऐसे ही रोग लगे हुए थे तथा हम यह भी नहीं कह सकते कि कोई विशेष जाति या क्षेत्र ही ऐसा था जो इस प्रकार की नैतिक बुराइयों के कारण विनाश के गढ़े तक जा पहुंचा था अपितु यह वह इतिहास है जो बार-बार

दोहराया गया है।

आज भी विश्व के विभिन्न समाज पतन का शिकार हो रहे हैं और प्रत्येक स्थान पर इस पतन के कारण भी बहुत सीमा तक मिलते-जुलते हैं। एक दलीय निरंकुश व्यवस्था रखने वाले देशों के विपरीत तथाकथित स्वतंत्र विश्व में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बढ़ता हुआ विवेक स्वयं एक असंतुलित रुझान का रूप धारण कर रहा है। निरंकुश आज़ादी का यही रुझान पर्याप्त सीमा तक भटकाव का उत्तरदायी है।

जिन देशों में एक दलीय निरंकुश शासन व्यवस्था व्याप्त है वहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता का बढ़ता हुआ विवेक अत्याचार और अन्याय के पंजे से मुक्त होने के प्रबल प्रयास और परिश्रम में व्यस्त है। यदि उन देशों की सशस्त्र सेनाओं के बाएं बाजू से संबंध रखने वाले उग्रवादी स्वतंत्रता की इस लहर के विरुद्ध न उठ खड़े हुए तो संभावना यही है कि स्वतंत्रता का यह युद्ध शीघ्र ही विजय प्राप्त कर लेगा। इस स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात पूर्व साम्यवादी देशों के स्वतंत्र और निरंकुश वातावरण में युवा वर्ग के आचरण का क्या हाल होगा इसके लक्षण तो कुछ अच्छे दिखाई नहीं दे रहे। इस धर्महीन एवं नास्तिकता युक्त शून्यता में पूरी दो पीढ़ियां पल कर जवान हो चुकी हैं। स्थिति यह है कि न तो कोई नैतिक व्यवस्था उपलब्ध है और न ही कोई ऐसे निर्देशक सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार वे अपनी भूमिका को उचित रूप दे सकें। एक ओर तो इन समाजों में उन नैतिक मूल्यों का सरासर अभाव है जो किसी भी आध्यात्मिक व्यवस्था के प्राण हुआ करते हैं और दूसरी ओर खेलकूद और विलासिता पूर्ण जीवन के आसक्त निरुद्देश्य और निरंकुश माता-पिता स्वतंत्र पाश्चात्य प्रेरणाओं का एक तूफ़ान है तो सोवियत संघ तथा पूर्वी यूरोप की युवा पीढ़ी को अपनी लपेट में ले रहा है जो आगे चलकर उसके नैतिक आचरण पर

विनाशकारी प्रभाव पैदा करने का कारण भी बन सकता है। धर्मविहीन जीवन के इस लम्बे अनुभव ने जहां वर्तमान युग को बहुत सी बुराइयों में लिप्त कर दिया है वहां इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह अनुभव अपने साथ कुछ लाभ भी लाया है। रूस के सोशलिस्ट देश न केवल धर्म से पृथक हो गए अस्तु उन्हें बिगड़ी हुई कट्टर धार्मिक आस्थाओं और दृष्टिकोणों से भी छुटकारा मिल गया। ईसाइयत हो अथवा इस्लाम या इन धर्मों से सम्बद्ध कोई सम्प्रदाय सब का धार्मिक कल्पनाओं में मध्ययुगीन रूढ़िवादिता पाई जाती थी। धार्मिक आस्थाओं तथा स्वाभाविक वास्तविकताओं में जो परस्पर विरोधाभास पैदा हो गया था उसका कारण यही रूढ़िवादिता थी। ये विरोधाभास इतने गहरे थे कि धर्म और प्रकृति दोनों को एक ही समय में ठीक समझना असंभव हो गया। इस प्रकार के धार्मिक दृष्टिकोणों तथा वास्तविकताओं के मध्य मतभेदों के होते हुए मानसिक अशांति से बच निकलने के लिए एक विशेष प्रकार के मानसिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है। विरोधाभासों के संसार में रहना इतना सरल नहीं इसके अतिरिक्त कि पीढ़ी के बाद पीढ़ी के लोग उनकी मौजूदगी में पोषण पाकर जवान हों, यहां तक कि विरोधाभासों का अहसास ही समाप्त हो जाए। आहिस्ता-आहिस्ता एक ऐसा समय भी आ जाता है कि धार्मिक सम्प्रदाय इन विरोधाभासों की उपस्थिति में जीवित तो रहते हैं, किन्तु उन्हें ये विरोधाभास दिखाई नहीं देते। सोशलिस्ट क्रान्ति ने इन देशों के रहने वालों पर जो प्रभाव डाले हैं उनमें से एक यह भी है कि उनके मस्तिष्क से कट्टर दृष्टिकोण धुल कर साफ हो गए हैं और क्रोध तथा मूर्खता जैसे रोग जाते रहे हैं। फलस्वरूप उनमें एक ऐसे भोलेपन की झलक दिखाई देने लगी है जो कपटतापूर्ण आचरण से पृथक हुए बिना उत्पन्न नहीं हो सकती। यह कहना तो अभी समय से बहुत पूर्व होगा कि आने वाले कड़े परिश्रम के कठिन समय में ऐसा

भोलापन उन्हें कोई नैतिक लाभ भी देगा या नहीं ? किन्तु एक बात निश्चित है कि इन लोगों में आज सत्य के संदेश को बिना पक्षपात के स्वीकार करने के लिए दूसरों से कहीं अधिक योग्यता पैदा हो चुकी है। खेद है कि शेष विश्व में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के तथाकथित के संबंध में हम यही बात विश्वासपूर्वक नहीं कह सकते। निरंकुश स्वतंत्रता के बढ़ते रुझानों की उपस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि ये लोग भी सत्य-स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। वास्तविकता यह है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर व्यावहारिक तौर पर एक व्यक्ति जो चाहे कर सकता है। इस तथाकथित स्वतंत्रता के रुझान का नेता अमरीका है जो बड़े विशाल स्तर पर न केवल प्रथम विश्व के यूरोपीय देशों अपितु द्वितीय और तृतीय विश्व के लोगों पर भी बुरी तरह प्रभाव डाल रहा है और अब तो व्यक्तिगत स्वतंत्रता की इस विकृत धारणा की प्रतिध्वनि वैज्ञानिक समाजवाद की सैद्धान्तिक सीमा के पार भी बहुत दूर तक सुनाई दे रही है। यह स्वतंत्रता का वह दृष्टिकोण है जो व्यक्ति को नैतिकताओं की सीमाओं से स्वतंत्र करता चला जा रहा है। समलैंगिकों, वैश्याओं, बदमाशों, नशा करने वालों, बिगड़े हुए युवाओं अर्थात प्रत्येक प्रकार के अपराधों में लिप्त लोगों की संख्या बढ़ती ही चली जा रही है और यह लोग दिन-प्रतिदिन सुदृढ़ होते जा रहे हैं। इन बिगड़े हुए युवाओं की उद्दण्डता की स्थिति यह है कि यदि उन्हें डांट फटकार और नसीहत की जाए और टोका जाए कि ऐसी हरकतें न करो तो वे पूछते हैं कि हम क्यों ऐसा न करें। ऐसे युवाओं का यह आचरण आज समाज के लिए एक भयानक चुनौती बना हुआ है।

दो प्रकार के समाजिक वातावरण

क़ुर्आन करीम ने सामाजिक व्यवस्था के दो प्रकार के वातावरणों का वर्णन किया है -

प्रथम - ऐसा वातावरण जिसमें बुराई को फलने फूलने की पूर्ण स्वतंत्रता हो।

द्वितीय - ऐसा वातावरण जिसमें बुराई को फलने-फूलने से पूर्णतया रोक दिया जाए।

यदि इस्लाम की नैतिक शिक्षाओं को इकट्ठे तौर पर देखने के स्थान पर उसको भागों के तौर पर देखा जाए तो पाश्चात्य मानसिकता के लिए इस्लाम के सन्देश और उसके दर्शन (फ़्लास्फ़ी) को समझना बहुत कठिन हो जाता है। अत: आवश्यक है कि नैतिक शिक्षाओं का अध्ययन पूरे सामाजिक वातावरण तथा नैतिक शिक्षाओं पर सामूहिक तौर पर विचार किया जाए। पतझड़ केवल एक पीले पत्ते और शुष्क शाखा का नाम नहीं है। यह जानने के लिए कि पतझड़ की ऋतु में पौधों एवं वृक्षों पर क्या गुज़रती है आवश्यक है कि पतझड़ के पूरे वातावरण की कल्पना की जाए और उस की प्रकृति को समझा जाए। बादल का एक टुकड़ा वर्षा-ऋतु के आगमन का पता नहीं दिया करता। हर ऋतु के अपने-अपने रंग होते हैं। बसंत जीवन का लक्षण है तो पतझड़ जीवन से दूरी का दूसरा नाम। बसंत ऋतु में केवल ताप का स्तर ही परिवर्तित नहीं होता अपितु सम्पूर्ण वातावरण ही परिवर्तित हो जाता है तथा शीतल समीर का एक झोंका जीवनदायक प्रतीत होता है। सामाजिक व्यवस्था भी ऋतुओं के समान अलग-अलग विशेषताओं और प्रभावों वाली होती है।

भौतिकवादी समाज का परिणाम

सामाजिक वातावरण के संबंध में इस्लाम का दृष्टिकोण भी यही है। पहले हम एक ऐसे समाज को लेते हैं जो क़ुर्आन करीम की दृष्टि से इस्लामी नहीं है। इसका वर्णन करते हुए परमेश्वर का कथन है -

اِعْلَمُوْٓا اَنَّمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَا لَعِبٌ وَّلَهْوٌ وَّزِيْنَةٌ وَّتَفَاخُرٌۢ بَيْنَكُمْ وَتَكَاثُرٌ فِى الْاَمْوَالِ وَالْاَوْلَادِ ۭ كَمَثَلِ غَيْثٍ اَعْجَبَ الْكُفَّارَ نَبَاتُهٗ ثُمَّ يَهِيْجُ فَتَرٰىهُ مُصْفَرًّا ثُمَّ يَكُوْنُ حُطَامًا ۭ وَفِى الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ شَدِيْدٌ ۙ وَّمَغْفِرَةٌ مِّنَ اللّٰهِ وَرِضْوَانٌ ۭ وَمَا الْحَيٰوةُ الدُّنْيَآ اِلَّا مَتَاعُ الْغُرُوْرِ ○

(सूरह अलहदीद - 21)

अनुवाद - *जान लो कि संसार का जीवन मात्र खेल-कूद तथा कामवासनाओं को पूरा करने का ऐसा माध्यम है जो उच्चतम लक्ष्य से असावधान कर दे एवं सज-धज तथा परस्पर एक दूसरे पर गर्व करना है और धन-सम्पत्तियों एवं सन्तान में परस्पर बढ़ने का प्रयास करना है। (यह जीवन) उस वर्षा से उगने वाली खेती के समान है जिसका उगना काफ़िरों (के हृदयों) को लुभाता है। अतः वह तीव्रता से बढ़ती है फिर तू उसे पीला होते हुए देखता है फिर वह टुकड़े-टुकड़े हो जाती है और आख़िरत में कठोर अज़ाब (निश्चित) है एवं परमेश्वर की ओर से क्षमा और प्रसन्नता भी, जबकि संसार का जीवन तो मात्र धोखे का एक अस्थायी सामान है।*

भौतिकवाद की मृगतृष्णा की वास्तविकता वर्णन करते हुए क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَعْمَالُهُمْ كَسَرَابٍۭ بِقِيْعَةٍ يَّحْسَبُهُ الظَّمْاٰنُ مَآءًؕ حَتّٰٓى اِذَا جَآءَهٗ

لَمْ يَجِدْهُ شَيْـًٔا وَّوَجَدَ اللّٰهَ عِنْدَهٗ فَوَفّٰىهُ حِسَابَهٗؕ وَاللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ۝

(सूरह अन्नूर - 40)

अनुवाद - *और वे लोग जिन्होंने कुफ्र किया उनके कर्म ऐसी मृगतृष्णा के समान हैं जो चटियल मैदान में हो जिसे सख़्त प्यासा पानी समझे यहां तक कि जब वह उस तक पहुंचे उसे कुछ न पाए तथा उस स्थान पर परमेश्वर को पाए। अतः वह (परमेश्वर) उसे पूरा-पूरा (हिसाब) दे और परमेश्वर हिसाब चुकाने में तीव्र है।*

क़ुर्आन करीम के अनुसार भौतिकवाद मृगतृष्णा के समान है। एक प्यासा उसे पानी समझ कर उसकी ओर दौड़ता है परन्तु मृगतृष्णा उस से आगे की ओर भागती है यहां तक कि प्यासा इतना थक जाता है कि मृगतृष्णा का इससे अधिक पीछा नहीं कर सकता। तब उसे अपने किए का दण्ड मिलता है और बड़ी प्रबलता से यह आभास होता है कि वह एक व्यर्थ और निरर्थक उद्देश्य के लिए जीवन पर्यन्त भटकता रहा है फिर अचानक ऐसा लगता है कि वह मृगतृष्णा जैसे स्थिर हो गई हो और कह रहा हो कि आओ मुझे पकड़ लो और देख तो ताकि तुम समझ सको और तुम्हें शीघ्र ही अनुमान हो जाएगा कि झूठे यथार्थ के पार्श्व में सत्य कितने कटु हुआ करते हैं। यह उन लोगों का दण्ड है जो जीवन के झूठे वैभव और ठाट-बाट के पीछे भागते हैं और क़ुर्आन करीम के अनुसार यही वह परिणाम है जिससे भौतिकवादी समाजों का सामना करना पड़ता है।

इसकी तुलना में धर्म एक ऐसी सैद्धान्तिक व्यवस्था प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार यह सांसारिक जीवन ही सब कुछ नहीं है जिसके समाप्त होने के साथ ही सब कुछ समाप्त हो जाए अस्तु एक दूसरा

जीवन भी है जो इस सांसारिक जीवन के पश्चात आने वाला है। अत: इस संसार में मृत्यु हमें स्थायी समाप्ति के घाट नहीं उतारती अपितु जैसा कि इस्लाम तथा अन्य बहुत से धर्म विश्वास दिलाते हैं कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवन-यात्रा किसी न किसी रूप में जारी रहती है। इस जीवन को आने वाले जीवन से पृथक करके नहीं देखा जा सकता। अत: यदि यह सब सत्य है और दोनों जीवन वास्तव में एक ही क्रम के दो नाम हैं तो इस संसार के सामाजिक प्रभावों की अवहेलना करना नितान्त मूर्खता होगी। इस जीवन के बुरे और नकारात्मक प्रभाव दूसरे जीवन (आख़िरत) में अनिवार्य रूप से एक रोगी आत्मा को जन्म देंगे।

मृत्योपरान्त जीवन का इन्कार

यहां परलोक के जीवन के संबंध में इस्लामी दर्शन पर विस्तृत बहस का अवसर नहीं है, परन्तु एक बात का वर्णन करना आवश्यक है। इस्लामी शिक्षा के अनुसार इस संसार का जीवन हमारी आत्माओं पर इतना प्रभावी होता है जैसे एक गर्भवती माता की बीमारी गर्भाशय में शिशु को प्रभावित करती है जिसके परिणामस्वरूप संभव है कि शिशु जन्मजात इतना विकलांग हो कि उसके लिए इस संसार में आकर स्वस्थ बच्चों के साथ नितान्त लाचारी की अवस्था में जीवन व्यतीत करना एक अज़ाब बन जाए। स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों बुद्धि का विकास होगा यह पीड़ा और भी अधिक कटु और गहरी होती जाएगी। संक्षेप में यह कि इस्लामी शिक्षानुसार हम अपने स्वर्ग और नर्क स्वयं निर्माण करते हैं।

इस परिदृश्य में यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि कोई भी सामाजिक व्यवस्था जो एक निरंकुश स्वतंत्रता और उपद्रव पर आधारित कार्य-पद्धति को बढ़ावा देती है वह बहरहाल खण्डन करने योग्य है चाहे सामान्य दृष्टि से वह कितनी ही आकर्षक क्यों न हो।

कोई व्यक्ति कह सकता है कि परलोक पर विश्वास रखने वाले लोग अपनी इच्छा से ऐसी बातें और दावा किया करें, भला मरने के पश्चात् भी कभी कोई व्यक्ति उस संसार से वापस आया है जो उन दावों के सत्य और असत्य होने की पुष्टि कर सके। अत: क्यों न इस संसार ही के मज़े लूटे जाएं। नौ नकद न तेरह उधार। और क्यों अकारण जाने-पहचाने आनंदों को अनदेखे आनंदों पर क़ुर्बान किया जाए ? भौतिकवादी लोग ये बातें इस्लाम के उस दर्शन के उत्तर में किया करते हैं जो बताता है कि समाज-निर्माण के आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं। इस्लाम का दर्शन सांसारिक जीवन तथा पारलौकिक जीवन दोनों पर व्याप्त है। उसके अनुसार ये दोनों जीवन पृथक-पृथक नहीं हैं। वास्तव में जीवन एक निरन्तरता का नाम है जो क्षण भर के लिए मृत्यु के समय टूट जाती है। मृत्यु भी वास्तव में एक जीवन से दूसरे जीवन में जाने का नाम है। इसके विपरीत भौतिकवाद के अनुसार जीवन विवेक का एक अस्थायी और अल्प समय है जो हमें संयोगवश मिल गया है। मृत्यु के साथ ही मानव अस्तित्व और अनस्तित्व के अंधेरों में डूब जाता है। अत: इस दर्शन के अनुसार सामाजिक व्यवस्था का परमोद्देश्य केवल और केवल इतना है कि इस अल्प जीवन के समय की आवश्यकता को किसी न किसी प्रकार पूरा कर लिया जाए। व्यक्ति समाज के समक्ष केवल उस समय तक उत्तरदायी है जब तक वह जीवित है और वह उत्तरदायित्व भी केवल उन अपराधों तक सीमित है जो दिखाई दें और जिनका पता लगाया जा सकता हो। मनुष्य के गुप्त विचार, नीयतें, योजनाएं, षडयंत्र और ऐसे अपराध जो अत्यधिक छल और चालाकी के पर्दों में छिप कर रह जाते हैं जांच-पड़ताल से ऊपर हैं। इसके अतिरिक्त समाज के विरुद्ध किए जाने वाले अपराध केवल इस अवस्था में अपराध ठहरते हैं जब अपराध करने का निश्चित सबूत विद्यमान हो। अत: न्याय की मांगे पूर्ण न होने की

संभावना बहरहाल मौजूद रहती है। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में ऊपरी और सीमित न्याय ही संभव है जो सामाजिक अपराधों को प्रोत्साहन न देने के स्थान पर प्रोत्साहन देता है और इस प्रकार समाज में सामूहिक और व्यक्तिगत हितों की प्राप्ति की एक दौड़ आरंभ हो जाती है।

एक नास्तिक या अर्धनास्तिक समाज में जहां मृत्यु के पश्चात प्रतिफल और दण्ड की कल्पना का पूर्णतया खण्डन कर दिया गया हो या यह कल्पना इतनी अस्पष्ट हो कि व्यावहारिक तौर पर उसका होना, न होना समान होकर रह जाए, वहां अपराध की ठोस नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित परिभाषा खोजना अत्यन्त कठिन कार्य है। अत: ऐसे समाज के लोग कानून तोड़ने के पश्चात उचित तौर पर यह समझ ही नहीं सकते कि उन्होंने किसी अपराध को किया भी है अथवा नहीं। आख़िर कानून है क्या ? क्या यह किसी निरंकुश व्यक्ति के मुख से निकले हुए शब्द हैं ? क्या किसी अत्याचारी शासन के आदेशों को कानून कहा जाए ? क्या बहुमत द्वारा किए जाने वाले निर्णय कानून कहलाए जाने के योग्य होंगे ? एक सामान्य मनुष्य इनमें से किस कानून को उचित और नैतिकता के ठोस दर्शन पर आधारित समझेगा ? अस्तु प्रश्न तो यह है कि आख़िर कौन सा नैतिक दर्शन ? यदि मनुष्य किसी उच्च हस्ती का आभारी न हो, मृत्यु के पश्चात प्राप्त होने वाले जीवन पर विश्वास ही न रखता हो तथा पारलौकिक जीवन में उसे अपने कर्मों के उत्तरदायित्व का कोई भय न हो तो ऐसा व्यक्ति उपरोक्त समस्याओं का जो भी समाधान प्रस्तुत करेगा वह एक उत्तरदायी समाज की मांगों से सामंजस्य पैदा नहीं कर सकता। उसे तो यह कुछ दिन का जीवन व्यतीत करना है। समाज एवं सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकता तो उसे केवल अपने हित के लिए है। यदि वह समाज में किसी सत्ता का आज्ञापालन करता है तो मात्र आवश्यकतावश ऐसा करता है अन्यथा सामाजिक जीवन को

त्यागने में उसे हित दिखाई दे तथा सामाजिक व्यवस्था से पलायन करके वह कुछ आनंद लूट सके तथा छल-कपट से अपने अपराधों पर पर्दा डाल सके तो कौन सा नैतिक प्रतिबंध है जो उसके मार्ग में बाधक हो सकता है ?

ऐसे समाज जो परमेश्वर की कल्पना से खाली हैं तथा भौतिकवाद जिनका आचरण है, उनमें अपराधों की प्रेरणा मनोवैज्ञानिक तौर पर बढ़ने लगती है तथा समय गुज़रने के साथ-साथ उसकी जड़ें दृढ़ होती चली जाती हैं बिल्कुल यही वह मनोवैज्ञानिक अवस्था है जिसे क़ुर्आन करीम ने एक भौतिकवादी समाज का सार ठहराया है। परमेश्वर तथा मृत्योपरान्त पारलौकिक जीवन के इन्कारी लोग कहते हैं कि -

اِنْ هِيَ اِلَّا حَيَاتُنَا الدُّنْيَا نَمُوْتُ وَنَحْيَا وَمَا نَحْنُ بِمَبْعُوْثِيْنَ ○

(सूरह अलमोमिनून - 38)

अनुवाद - *हमारा तो केवल यही सांसारिक जीवन है। हम मरते भी हैं और जीवित भी रहते हैं और हम कदापि उठाए नहीं जाएंगे।*

केवल यही नहीं अपितु काफ़िर लोग पूर्व युगों में अवतरित होने वाले परमेश्वर के भेजे हुओं से (रसूलों से) उपहास के रंग में पूछते हैं -

وَقَالُوْٓا ءَاِذَا كُنَّا عِظَامًا وَّرُفَاتًا ءَاِنَّا لَمَبْعُوْثُوْنَ خَلْقًا جَدِيْدًا ○

(सूरह बनी इस्राईल - 50)

अनुवाद - *और वे कहते हैं कि जब हम मात्र अस्थियां रह जाएंगे और टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे तो क्या हम अवश्य एक नवीन सृष्टि के रूप में उठाए जाएंगे।*

قَالُوْٓا ءَاِذَا مِتْنَا وَكُنَّا تُرَابًا وَّعِظَامًا ءَاِنَّا لَمَبْعُوْثُوْنَ ○

(सूरह अलमोमिनून - 83)

अनुवाद - *वे कहते हैं कि क्या जब हम मर जाएंगे तथा मिट्टी और अस्थियां हो जाएंगे तो क्या हम फिर भी अवश्य उठाए जाएंगे।*

क़ुर्आन करीम के अनुसार एक भौतिकवादी समाज की समस्त बुराइयों की जड़ यही आस्था है और यही कारण है कि पारलौकिक जीवन और हिसाब के दिन पर इतना बल दिया गया है।

बुख़ारी की एक हदीस में हज़रत इब्ने मसऊद[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने एक समकोण चतुर्भुज बनाया और उसके मध्य में लम्बाई की ओर एक रेखा खींची जिसका ऊपरी सिरा चतुर्भुज से बाहर निकला हुआ था फिर आप[स.] ने उस रेखा को काटती हुई ऊपरी ओर कई छोटी रेखाएं खींचीं और संकेत करते हुए फ़रमाया - यह आकृति मानव-जीवन को स्पष्ट करती है। चतुर्भुज जिसने इन रेखाओं को घेरा हुआ है मृत्यु है। मध्यवर्ती रेखा मानव इच्छाओं का चित्रण करती है तथा छोटी रेखाएं जीवन में आने वाली विपत्तियों और संकटों को प्रकट करती हैं। आप[स.] ने फ़रमाया कि यदि वह इनमें से किसी एक विपत्ति से बच निकलता है तो दूसरी का शिकार हो जाता है। तिरमिज़ी की एक हदीस में मृत्यु को मनुष्य की इच्छाओं और मनोकामनाओं का अन्त ठहराया गया है।

भौतिकवादी समाज की चार विशेषताएं

مَا سَلَكَكُمْ فِي سَقَرَ ○ قَالُوا لَمْ نَكُ مِنَ الْمُصَلِّينَ ○ وَلَمْ نَكُ نُطْعِمُ الْمِسْكِينَ ○ وَكُنَّا نَخُوضُ مَعَ الْخَائِضِينَ ○ وَكُنَّا نُكَذِّبُ بِيَوْمِ الدِّينِ ○

(सूरह अलमुद्दस्सिर - 43 से 47)

अनुवाद - *तुम्हें किस वस्तु ने नर्क में प्रविष्ट किया। वे कहेंगे कि हम नमाज़ पढ़ने वालों में से नहीं थे और हम असहायों को भोजन नहीं खिलाया करते थे और हम भी व्यर्थ बातें करने वालों के साथ व्यर्थ बातें किया करते थे तथा हम प्रतिफल एवं दंड के दिन का इन्कार किया करते थे।*

धर्मविहीन तथा भौतिकवादी समाज की रूप-रेखा को इससे अधिक निश्चित और व्यापक शब्दों में वर्णन करना संभव नहीं है। ऐसे समाज की विशेषताएं ये हैं -

(1) परमेश्वर की उपासना से विमुखता

(2) गरीबों और असहायों को भोजन न कराना

(3) व्यर्थ और निरुद्देश्य कार्य कलाप

(4) जांच-पड़ताल और प्रतिफल एवं दण्ड के दिन का इन्कार

इस विषय पर और अधिक प्रकाश डालने से पूर्व एक ऐसी उलझन का निवारण आवश्यक है जिसके कारण एक रोगी समाज के रोग का उचित तौर पर पहचानना कठिन हो जाता है। वे समाज जो परमेश्वर और अन्तिम दिवस (प्रलय) पर प्रत्यक्षतः दृढ़ ईमान रखते हैं उनमें भी उपरोक्त बुराइयां फैल रही हैं। इसलिए तार्किक दृष्टि से यह बात समझ में नहीं आती कि परमेश्वर मृत्यु के पश्चात पारलौकिक जीवन और प्रतिफल एवं दण्ड के दिन पर ईमान रखने वाले इन बुराइयों

का शिकार कैसे हो सकते हैं। अत: प्रश्न यह है कि ऐसे समाज भी भौतिकवाद में क्यों डूबे हुए हैं ? परन्तु जब हम इन लोगों के ईमान और आस्था को गहरी दृष्टि से देखते हैं तो इस प्रश्न का उत्तर खोजना कुछ कठिन नहीं रहता। वास्तविकता यह है कि परमेश्वर के अस्तित्व पर मात्र एक दार्शनिकतापूर्ण और काल्पनिक सा ईमान लोगों के सामाजिक आवरणों पर कदापि प्रभावकारी नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि ऐसी आस्थाएं मात्र ज्ञान संबंधी होती हैं तथा एक उत्तरदायी और स्वस्थ भूमिका में नहीं ढल सकतीं। यह कैसे संभव है कि एक व्यक्ति परमेश्वर पर सच्चा और वास्तविक ईमान भी रखता हो तथा झूठ बोलना और झूठ घड़ना, स्वार्थ परायणता, अधिकार-हनन, भ्रष्टाचार, अनुदारता जैसी बुराइयों का शिकार भी हो। यदि ऐसा हो तो इस प्रकार के समाज में परमेश्वर की कल्पना मात्र ऊपरी, काल्पनिक तथा अप्रभावी होकर रह जाती है तथा मानव आचरण के निर्माण में कोई प्रभावी भूमिका नहीं निभा सकती। मृत्योपरान्त जीवन तथा प्रतिफल एवं दण्ड दिवस पर उन लोगों का ईमान भी वास्तव में एक भ्रम सा होता है। अपनी पसन्द अथवा नापसन्द का प्रश्न पैदा होने पर प्राथमिकता अपने व्यक्तिगत और त्वरित हित ही को प्राप्त होती है और उसे ही प्रमुखता दी जाती है। आने वाले जीवन की कदापि परवाह नहीं की जाती।

जब हम किसी भौतिकवादी समाज की बात करते हैं तो केवल ऐसा समाज ही नहीं होता जिसने परमेश्वर के अस्तित्व एवं पारलौकिक जीवन की कल्पना से खुल्लम खुल्ला विद्रोह किया हो। परमेश्वर के अस्तित्व पर प्रत्यक्षत: ईमान रखने वाले तथा उसका इन्कार करने वाले अधिकांश समाजों में यद्यपि वैचारिक दृष्टि से प्रकट रूप में पूरब और पश्चिम की दूरी दृष्टिगोचर होती है परन्तु इसके बावजूद व्यावहारिक तौर पर इन दोनों के मध्य गहरी समानता पाई जाती है।

कर्मों के उत्तरदायित्व की कल्पना

एक भौतिकवादी समाज की कल्पना के विपरीत क़ुर्आन करीम मनुष्य के हिसाब-किताब और पकड़ की कल्पना प्रस्तुत करता है। फ़रमाया -

لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْأَرْضِ ۗ وَإِنْ تُبْدُوا مَا فِيٓ أَنْفُسِكُمْ أَوْ تُخْفُوهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ ۖ فَيَغْفِرُ لِمَنْ يَّشَآءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ ۗ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ○

(सूरह अलबक़रह - 285)

अनुवाद - *परमेश्वर ही का है जो आसमानों में है और जो ज़मीन में है और चाहे तुम उसे प्रकट करो जो तुम्हारे हृदयों में है या उसे छिपाओ, परमेश्वर उसके बारे में तुम्हारी जांच-पड़ताल करेगा। अत: वह जिसे चाहेगा क्षमा कर देगा और जिसे चाहेगा अज़ाब देगा तथा परमेश्वर प्रत्येक बात पर जिसे वह चाहे स्थायी क़ुदरत रखता है।*

क़ुर्आन करीम इसके संबंध में इसके अतिरिक्त फ़रमाता है -

وَلَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَكَ بِهٖ عِلْمٌ ۗ إِنَّ السَّمْعَ وَالْبَصَرَ وَالْفُؤَادَ كُلُّ أُولٰٓئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْئُولًا ○

(सूरह बनी इस्राईल - 37)

अनुवाद - *और वह विचारधारा न अपना जिसका तुझे ज्ञान नहीं। निश्चय ही कान और आंख और हृदय में से प्रत्येक के संबंध में पूछा जाएगा।*

इस आयत में हृदय से अभिप्राय वह शक्ति है जो सम्पूर्ण मानव

कर्मों के पीछे काम कर रही है। क़ुर्आन करीम के मुहावरे में 'फ़ुआद' से अभिप्राय फैसला करने वाली वह इच्छा शक्ति है जो मस्तिष्क से ऐसे ही काम लेती है जैसे कोई कम्प्यूटर को चलाता है। नेकी और बदी का स्रोत और उद्गम यही इच्छा शक्ति है तथा मरने के पश्चात भी यही शक्ति जीवन का एक नया रूप पाकर सुनने और देखने के साथ अपने कर्मों की उत्तरदायी होगी।

आइये अब हम परमेश्वर पर ईमान से रिक्त समाजों की विशेषताओं का कुछ विस्तृत अध्ययन करते हैं होता यह है कि परमेश्वर और पारलौकिक जीवन पर ईमान न रखने की अस्पष्ट सी स्थिति गुप्त रहती है जिसका चेतन तौर पर पूर्ण आभास नहीं होता। आस्था की सीमा तक तो मनुष्य प्रत्यक्षत: परमेश्वर पर ईमान रखता है और पारलौकिक जीवन को स्वीकार करता है किन्तु व्यावहारिक जीवन में उस ईमान की कोई झलक दिखाई नहीं देती। हां कभी यह अवश्य होता है कि यदि मनुष्य किसी संघर्ष से दो चार हो जाए तो अवचेतन में दबी हुई गुप्त वास्तविकताएं उस पर प्रकट हो जाती हैं अन्यथा कई पीढ़ियां गुज़र जाती हैं और मनुष्य को अपनी आस्थाओं की कमज़ोरी और अनिश्चितता का आभास तक नहीं होता और जब शनै: शनै: एक युग अपने अन्त को पहुंचता है और संसार शनै: शनै: एक नए दौर में प्रवेश करने लगता है तो सामूहिक तौर पर समाज में उन आस्थाओं का नए सिरे से जांच-पड़ताल करने का रुझान पैदा हो जाता है जो उसे अपने पूर्वजों से विरासत में मिले हों। तब परमेश्वर और पारलौकिक हिसाब के दिन का इन्कार जो अब तक अवचेतन में गुप्त था उभर कर सामने आने लगता है और आनन्दों की अनुचित खोज में खोया हुआ समाज जब परमेश्वर के अस्तित्व एवं पारलौकिक जीवन का जान बूझ कर इन्कार कर देता है तो फिर पतन और सर्वोच्च आस्थाओं के पद-दलन की यात्रा बड़ी तीव्र गति के साथ अपनी चरम सीमा

को पहुंच जाती है।

मानव सभ्यता की यात्रा सदैव से अशिष्टता और असभ्यता से शिष्टता की ओर होती चली आई है। मानव इतिहास के प्रत्येक युग और पृथ्वी के प्रत्येक क्षेत्र में यही सिद्धान्त काम करता दिखाई देता है। मानव चरित्र की मूलभूत एवं स्वाभाविक प्रेरक शक्तियां और मांगें परिवर्तित नहीं हुआ करतीं यद्यपि उन प्रेरकों और मांगों की पूर्णता और संतुष्टि के ढंग और माध्यम परिवर्तित होते रहते हैं। उदाहरणतया पेट तो मांस या सब्ज़ी खाकर भरा जा सकता है परन्तु भोजन के प्रकार और स्तर में बड़ा अन्तर हो सकता है। सब्ज़ी और मांस ताज़ा भी हो सकते हैं और बासी भी। उन्हें विभिन्न प्रकार से पका कर और यदि कोई चाहे तो कच्चा भी खा सकता है। सामाजिक उन्नति के साथ-साथ मानवीय इच्छाओं की पूर्ति की पद्धतियां भी परिवर्तित होती रहती हैं और पहले से अधिक शालीन, कोमल और आडम्बरपूर्ण होती चली जाती हैं। उन्नति की इस जारी प्रक्रिया की गति की निर्भरता पर्याप्त सीमा तक लोगों की आर्थिक परिस्थितियों और राजनैतिक प्रेरकों पर हुआ करती है तथापि समाज के उच्च वर्ग सेना की अगली टुकड़ी के तौर पर हमेशा आगे से आगे बढ़ते चले जाते हैं। यद्यपि उनकी यात्रा की गति घटती-बढ़ती रहती है तथापि जब इस सांस्कृतिक उन्नति की यात्रा पूर्णता तक पहुंचती है तो नितान्त बढ़ा हुआ आडम्बर, बनावट और कुछ अन्य नकारात्मक प्रेरक उन्नति के इस रुझान का मुख अवनति की ओर फेर देते हैं। परिणामस्वरूप पतनशील समाजों की सांस्कृतिक गंगा कोमलता से मलिनता की ओर उल्टी बहना शुरू हो जाती है और उसका मुख उच्चता से निम्नता की ओर मुड़ जाता है। यह एक बहुत विशाल विषय है तथा विस्तृत अध्ययन चाहता है। मुझे खेद है कि आज के भाषण में इतने विस्तार की गुंजाइश नहीं है, फिर भी मैं कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को स्पष्ट करना आवश्यक समझता हूं।

जब एक समाज बीमार हो जाता है या अनुचित दिखावे के कारण असंतुलन का शिकार हो जाता है तो वह तीव्रता से पतन की ओर होना अग्रसर होने लगता है और लोग पहले की तरह जानवरों के समान अंधाधुंध अपनी अधम इच्छाओं की संतुष्टि के सामान ढूंढने लगते हैं। आवश्यक नहीं कि यह स्थिति हर प्रकार की सामाजिक और सांस्कृतिक तन्मयता में दृष्टिगोचर हो, परन्तु उसकी झलक उन मानवीय संबंधों एवं व्यवहारों में स्पष्ट तौर पर दिखाई देने लगती है जो आनन्दों के चारों ओर घूमते हैं। मानव जाति की कामवासनाओं के संदर्भ में देखा जाए तो यह रहस्य भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि काम-भावना एक मूल प्रवृत्ति है। प्रकृति ने समस्त प्राणियों में अपनी नस्ल के स्थायित्व के लिए इस मूल-प्रवृत्ति में एक आनंद भी रख दिया है, परन्तु मनुष्यों और जानवरों में अन्तर यह है कि मनुष्य स्वाभाविक इच्छाओं को जानवरों के समान पूरा करने के स्थान पर शनैः शनैः अपनी भावनाओं की संतुष्टि के लिए शालीन और सभ्य ढंग अपना लेता है। स्मरण रहे कि इन भावनाओं की संतुष्टि ही प्रकृति का उद्देश्य नहीं अपितु मूल उद्देश्य मानव जाति का स्थायित्व है। आनन्दों की प्राप्ति मात्र दूसरे स्थान पर है परन्तु एक रोगी समाज में कामभावनाओं की संतृप्ति स्वयं में उद्देश्य बन जाती है तथा मानवीय संतति के स्थायित्व का उद्देश्य दूसरी हैसियत अपना लेता है।

शादी-विवाह और उससे संबद्ध कामसंबंधों पर लगे प्रतिबंध (Taboos) एक समाजशास्त्री के निकट तो समाज की उन्नति-प्रक्रिया का परिणाम हैं। संभव है कि उसके निकट धर्म का इस प्रक्रिया से सीधा कोई संबंध न हो। प्रश्न यह है कि क्या शनैः शनैः चलने वाली प्रक्रिया किसी परम शक्ति के इरादे का परिणाम है अथवा संयोगों के सहारे स्वयं आगे बढ़ती रही है ? इसका उत्तर चाहे कुछ भी हो इस वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्वाभाविक मूल

इच्छाओं की सन्तुष्टि के ढंग धीरे-धीरे पहले से अधिक शालीन और सभ्य होते चले गए हैं।

बेधड़क कामवासना संबंधी मेलजोल और प्रेम-व्यवहार भी इसी रोग का लक्षण है और यह क्रम इन संबंधों की आज़ादी तक सीमित नहीं रहता अपितु इसके साथ कई और कारण भी सम्मिलित हो जाते हैं जो मानव जीवन के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग के वातावरण को दूषित कर देते हैं, यहां तक कि काम-संबंधों के वैध या अवैध होने की बहस को अतीत का किस्सा समझ कर तिरस्कारपूर्वक अनदेखा कर दिया जाता है। निःसन्देह कुछ कट्टर धार्मिक वर्गों में यह विषय फिर भी बहस के अन्तर्गत रहता है, परन्तु टीवी और समाचार पत्रों आदि में ऐसी बहसों को देखें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राचीन परम्परा के कट्टर धार्मिक लोगों की संख्या कम हो रही है तथा उनका महत्त्व भी कम होता जा रहा है। पश्चिम में तो यह विचारधारा फ़ैशन की तरह बल पकड़ रही है कि 'कामशक्ति' (Sex) एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसकी निःसंकोच तथा निर्विघ्न सन्तुष्टि होनी चाहिए। इस विषय पर बात करते समय स्त्री जाति की विशिष्ट लज्जा और शर्म एक प्राचीन वृत्तान्त बनती जा रही है। नग्नता, अश्लीलता, अंग-प्रदर्शन, शरीर को छिपाने की बजाए उसका प्रदर्शन, निर्लज्जतापूर्ण वार्तालाप तथा पाप की गर्वपूर्ण घोषणा को सच्चाई का खुल्लम खुल्ला प्रकटन समझा जाता है।

यदि स्वाभाविक मांगों के नाम पर काम-इच्छाओं की निःसंकोच एवं निर्विघ्न सन्तुष्टि आवश्यक है तो प्रश्न यह पैदा होता है कि फिर इस तर्क के अन्तर्गत अन्य स्वाभाविक मांगें क्यों पूरी नहीं की जातीं ? क्या प्रत्येक रुचिकर वस्तु की प्राप्ति की इच्छा जानवरों और मनुष्यों में समान रूप में नहीं पाई जाती ? क्या उद्विग्न होकर भावनाओं का

पैशाचिक प्रकटन एक स्वाभाविक हैवानी मांग नहीं है ? एक कमज़ोर कुत्ता भी उसी प्रकार अपनी इच्छाओं के हाथों विवश होता है जिस प्रकार एक शक्तिशाली कुत्ता। अन्तर केवल इतना है कि शक्तिशाली कुत्ता काट खाता है और निर्बल केवल भोंकने पर ही बस करता है। फिर क्या मनुष्य के लिए भी वैध होगा कि वह भी अपनी स्वाभाविक इच्छाओं का उसी प्रकार निर्विघ्न प्रकटन करे ? आखिर समाज में कुछ बातें सामान्य तौर पर क्यों निषिद्ध समझी जाती हैं ? सभ्यता और शिष्टाचार के नियम क्या हैं ? शालीनता की कल्पना की क्या वास्तविकता है ? ये समस्त आदेश और निषेधादेश के प्रतिबंध ही तो हैं जो स्वाभाविक भावनाओं और इच्छाओं को निर्विघ्न प्रकट करने के मार्ग में बाधक हो जाते हैं। इसलिए प्रश्न उत्पन्न होता है कि केवल कामेच्छाओं ही के अनुचित, सभ्यता और रिवायत के विरुद्ध अशिष्ट और अनुचित प्रकटन की अनुमति क्यों दी जाए ?

आज जो दृश्य हमारे समक्ष है तथा जिन परिस्थितियों से हम दोचार हैं उसकी ध्यानपूर्वक पड़ताल करना तथा उचित विश्लेषण करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। वह सोच जिसे अपने ही विचार में कामवासनाओं की आज़ादी का नाम दिया जाता है वह कामवासना संबंधी पथभ्रष्टता तक ही सीमित नहीं रहती अपितु उसके शोले जीवन के दूसरे भागों को भी अपनी लपेट में ले लिया करते हैं। अत: हम देख रहे हैं कि चोरी तथा लूट-खसोट का रुझान कितना अधिक बढ़ रहा है तथा दूसरों को कष्ट और पीड़ा पहुंचा कर लोग कितनी प्रसन्नता महसूस करने लगे हैं। लोगों की रुचियां ही बिगड़ चुकी हैं। प्रत्येक वैध और अवैध हथकंडों से आनंद-प्राप्ति की एक अंधी दौड़ जारी है। इन घटिया और अधम रुझानों के हाथों उच्च सभ्यता संबंधी महत्त्व के निशान विकृत हो रहे हैं और उच्चतम परम्पराओं को रौंदा जा रहा है तथा जीवन पुन: उस पाश्विक अवस्था की ओर लौट रहा है जहां

से यात्रा का प्रारंभ हुआ था।

शादी-विवाह के अवसरों पर नाना प्रकार के रीति-रिवाज तथा लोगों पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबंध ही नहीं, प्रेम व अनुराग के मामले, रोमांस एवं प्रेम के सिलसिले सभी उस मूल स्वाभाविक भावना के विभिन्न द्योतक हैं। कविता, साहित्य, कला, संगीत, फैशन, कलाओं से संबंधित प्रदर्शनियां, सुगंध से प्रेम, शालीनता, रख-रखाव तथा अन्य सभ्यतापूर्ण आचरण यदि सम्पूर्ण नहीं तो किसी सीमा तक इसी मूल भावना का सामाजिक प्रकटन ही तो हैं।

समाज ने हज़ारों वर्ष की विकास प्रक्रिया से गुज़र कर ये सभ्यता की मर्यादाएं विरसे में पाई हैं। आशंका यह है कि भावी नस्लें उन के विरुद्ध विद्रोह-ध्वज लेकर न उठ खड़ी हों और देखने वाली आंख को साफ दिखाई दे रहा है कि नई नस्ल इस मार्ग पर चल पड़ी है। सभ्यता और परम्परा से विद्रोह के परिणामस्वरूप संभव है कि प्रत्येक वस्तु पूर्णरूप से तो रद्द न की जा सके। इस दिशा में यात्रा आरंभ हो चुकी है। समाज से आज़ाद और बेपरवाह जीवन, कष्ट पहुंचाने में आनन्द का आभास, हिप्पीइज़्म, कामवासनाओं में तीव्रता तथा जानवरों के समान काम-इच्छाओं को पूर्ण करने का उन्माद कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो उपरोक्त रुझानों का पता दे रहे हैं।

जो व्यक्ति यह जानना चाहता है कि नवीन पीढ़ी किस दिशा में दौड़ी चली जा रही है उसे मन कड़ा करके इन विद्रोही, दुर्दशाग्रस्त, मैले-कुचैले लड़के लड़कियों को जाकर देखने का साहस जुटाना चाहिए जो रेवड़ों और गिरोहों के रूप में इकट्ठे रहते हैं। वहां जाकर ज्ञात होता है कि अब निर्मलता और सुगंध का स्थान मलिनता और दुर्गन्ध ले चुकी है बेदाग़ और स्वच्छ लिबास के स्थान पर अब फटे-पुराने और सड़े गले चीथड़े फ़ैशन का निशान बन गए हैं। वे दिन गए

जब लिबास पर एक मामूली सा दाग़ भी नितान्त लज्जा का कारण हुआ करता था। अब तो फटी पुरानी जीन्स (Jeans) अपितु शरीर के कुछ अंगों की एक झलक दिखाने के लिए विशेष तौर पर फाड़ी गई पतलूनें एक नई पतलून से कहीं अधिक बहुमूल्य समझी जाती हैं। यह सही है कि अतीत के रिवायती विरसे से विमुखता के ये अन्तिम लक्षण सारे समाज में दिखाई नहीं देते परन्तु रोग का प्रारंभ हो तो आवश्यक नहीं कि सम्पूर्ण शरीर तुरन्त ही उस से प्रभावित हो जाए तथापि शरीर पर कहीं-कहीं प्रकट होने वाले घाव रोगी की स्थिति का पता अवश्य दिया करते हैं। जब एक समाज रोगी होने लगता है तो दायित्वविहीन व्यवहार भी सर उठाने लगते हैं। अनुशासन का अभाव तथा उपद्रव का प्रभुत्व हो जाता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पतन और अवनति के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

आनंद की ऐसी खोज शीघ्र ही परिवर्तन और नवीनता की मांग किया करती है ताकि पहले से बढ़कर आनंद उठाया जा सके। यदि ऐसा न हो तो जो वस्तुएं पहले आनंद देती थीं नि:स्वाद होने लगती हैं। धूम्रपान तथा अन्य प्रचलित नशे उतनी संतुष्टि देने में असफल हो जाते हैं जितनी एक बेचैन और अशांत समाज मांग करता है। अत: हर प्रकार की नशीली वस्तुएं और नशे के इस भयानक रुझान की रोकथाम के लिए जो भी पग उठाए जाएं वे अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। नशा करने वालों को तीव्र से तीव्र नशे की खोज रहती है। फलस्वरूप शीघ्र ही क्रेक (Crack) जैसे भयावह प्रकार के विषाक्त और जानलेवा नशीले पदार्थ आविष्कृत कर लिए जाते हैं।

संगीत के संसार में भी इस शताब्दी के अन्तिम दशकों में धीरे-धीरे ऐसे ही रुझान पैदा हो गए हैं। संगीत में गुज़री कुछ शताब्दियों में होने वाली उन्नति की तुलना यदि वर्तमान शताब्दी के अन्तिम कुछ

दशकों में सामने आने वाली तीव्र धमाकेदार और कान फाड़ने वाले संगीत से की जाए तो बहुत सी रोचक आश्चर्यजनक सच्चाइयां सामने आएंगी। व्यक्तिगत तौर पर संगीत के बारे में मुझे कुछ अधिक ज्ञान नहीं है। इसलिए इस पर मेरी समीक्षा यदि कुछ विचित्र दिखाई दे और वास्तविकताएं कुछ और हों तो मैं उसके लिए क्षमा चाहूंगा तथापि मेरा संज्ञान मुझे बताता है कि गुज़री कुछ शताब्दियों में पश्चिम में संगीत की जो शनै: शनै: उन्नति हुई वह उच्च रुचि और श्रेष्ठ संगीत की द्योतक थी। यह संगीत हृदय और मस्तिष्क दोनों के लिए एक साथ सन्तोषजनक महसूस होता था। उत्तम संगीत तो वही है जो हृदय और मस्तिष्क के आन्तरिक संगीत से मिलकर आत्मा की गहराइयों में उतर जाए। संगीत की उन्नति का परमोद्देश्य समानता तथा अमन व शांति की खोज ही तो है। महान संगीतज्ञों ने निश्चय ही ऐसी धुनें भी बनाईं जो ज्वालामुखी पर्वतों के फटने, तूफानों, बादलों की गरज और विद्युत की कड़क तथा शोर एवं हलचल का सा प्रभाव पैदा करती थी। वास्तव में ऐसा संगीत प्रकृति-प्रदर्शनों के साथ एक प्रकार की समानता रखता था तथा उसकी यादों के अविस्मरणीय निशान स्वयं जीवन के स्मरण पटल पर अंकित थे तथा कभी-कभी यह संगीत जब अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा तो ऐसा लगता जैसे उसके ऊंचे स्वरों से यह सृष्टि फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगी परन्तु इसके बावजूद श्रोता यों दम साधे स्तब्ध मूर्तिवत बैठे रहते जैसे स्वर और राग की इस भीषण बाढ़ में बहे चले जा रहे हैं। एक गहरी खामोशी और सन्नाटे की अवस्था व्याप्त हो जाती, हिलना-जुलना तो दूर आंख तक झपकने का समय न मिलता और जब संगीत अपने अन्त को पहुंचता तो सारा हाल (Hall) तालियों की तीव्र गूंज में डूब जाता, किन्तु विचित्र बात यह है कि ऐसा संगीत कितना ही तीव्र, प्रचंड, भावनात्मक तथा अशांतिजनक क्यों न हो श्रोताओं को अत्याचार, तोड़फोड़ और

विद्रोह पर तत्पर नहीं करता था। उसका सन्देश तो बहुत ही उच्चतम और श्रेष्ठतम था अर्थात अमन, शान्ति और आराम जिस से मनुष्य के कोमल श्रेष्ठ अहसास जागृत हों और ऊपरी मलिनताएं धुल जाएं।

परन्तु खेद है कि पिछले कुछ दशकों में यह दृश्य बिल्कुल परिवर्तित हो चुका है। नवीन पीढ़ी के कान ऐसे संगीत के शोर से फट रहे हैं जो मनुष्य के अन्दर की पशुता को भड़काता है और उसे सभ्यता की बजाए दरिंदगी की ओर ले जाता है, यह बेचैन और व्याकुल नस्ल केवल वही संगीत सुनने की अभिलाषी है जो उसके उन्माद और बेचैनी की अग्नि को और भी भड़का दे। संगीत जितना अशांतिजनक तथा क्रान्ति-उत्पादक हो उतना ही अधिक पसन्द किया जाता है। मैं एक बार पुन: अपनी किसी ऐसी समीक्षा पर क्षमा चाहता हूं जो पॉप (Pop) और उच्च श्रेणी संगीत से मेरी अनभिज्ञता पर आधारित हो तथापि एक बात मैं पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूं कि क्रान्ति एवं उपद्रव उत्पादक उन्माद, विद्रोह एवं दरिंदगी के रुझान मनुष्य की उच्च और श्रेष्ठतम योग्यताओं को बड़ी तीव्र गति से बरबाद कर रहे हैं।

प्रोफेसर ब्लूम ने (Bloom) जो पाश्चात्य संगीत से भली भांति परिचित हैं एक पुस्तक "The closing of the American Minds" के शीर्षक से लिखी है। संगीत के बारे में उनके और मेरे विचारों में बहुत समानता पाई जाती है वह भी विलाप करते हैं कि वर्तमान युवाओं में उच्च कोटि की रसिकता तथा कोमल अहसास आहिस्ता-आहिस्ता समाप्त होते जा रहे हैं। वह कहते हैं - "वर्तमान युवा रॉक म्यूज़िक (Rock Music) को सुन-सुन कर पागल हो गए हैं। उनके निकट संगीत यदि आत्मा का भोजन है तो रॉक म्यूज़िक आत्मा के लिए एक हानिप्रद भोजन है।"

अत्यन्त स्पष्ट और खुले लक्षण ऐसे हैं जो समाज की इस रोगग्रस्त

अवस्था का पता देते हैं, जीवन का सन्तोष लुट रहा है। मनुष्य धैर्य, शान्ति, हार्दिक सन्तुष्टि, अमन और सुरक्षा के अहसास से खाली हो चुका है। वह परमेश्वर के अस्तित्व का इन्कार तो कर सकता है परन्तु उन शक्तिशाली प्रकृति के नियमों का इन्कार उसके बस की बात नहीं जो अपनी अवज्ञा करने वालों को दण्ड देना भली भांति जानते हैं। समस्त भौतिकवादी समाजों में बुराई के बढ़ने और फैलने के कारण न्यूनाधिक एक समान होते हैं। इस विषय पर एक सीमा तक पहले बहस की जा चुकी है। यहां स्मरण कराने के लिए संक्षेप में उन कारणों की पुनरावृत्ति की जाती है।

(क) नास्तिकता का बढ़ता हुआ रुझान

(ख) उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर पर ईमान की कमज़ोरी जो मानवीय समस्याओं पर पूर्ण दृष्टि रखता है और प्रति पल देख रहा है कि मनुष्य अपने कर्मों और चरित्र का निर्माण किस पद्धति पर करता है।

(ग) समाज के परम्परागत और नैतिक मूल्यों का धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ जाना।

(घ) जीवन के वास्तविक उद्देश्यों को विस्मृत करने का बढ़ता हुआ रुझान तथा उद्देश्य प्राप्ति के साधनों को ही उद्देश्य समझ लेना।

यह है वह वस्तु स्थिति जो हमें आज के सभ्य और उन्नत कहलाने वाले समाजों में सामान्यत: दिखाई देती है। नैतिक मूल्यों के कमज़ोर पड़ने से धीरे-धीरे कानून निर्माण और सरकारी प्रबंधन भी प्रभावित होने लगते हैं। जब समाज में न तो किसी परमेश्वरीय कानून को स्वीकार किया जाए और न ही स्थायी नैतिक मूल्यों और उच्च परंपराओं को स्वीकार किया जाए तथा उनकी अवहेलना जीवन की दिनचर्या बन जाए तो फिर नैतिकता की स्थापना के लिए की जाने वाली कानून-निर्माण-प्रक्रिया में भी नर्मी और लचक पैदा हो जाती है और इस

प्रकार नैतिकता की इमारत की नींव ही लड़खड़ा जाती है। पिछली कुछ शताब्दियों में इस संदर्भ में की जाने वाली कानून-निर्माण-प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो वास्तविकता स्पष्ट तौर पर सामने आ जाती है। कभी ऑस्कर वाइल्ड का वह युग भी था जब समलैंगिकता को एक नितान्त कठोर दण्डनीय अपराध समझा जाता था। वे दिन बीत गए जब सतीत्व और पवित्रता को मात्र एक नेकी (शुभ कर्म) ही नहीं अपितु सामाजिक मान-मर्यादा और विश्वास का लक्षण समझा जाता था और सतीत्व पर दोष आने पर बड़ी सख्ती से पकड़ की जाती थी। अब तो स्थिति यह है कि अपराध को अपराध ही नहीं समझा जाता और न ही अपराध करने पर ख़तरे की घंटियां बजने लगती हैं। वास्तव में मूल समस्या यही है कि अपराध की परिभाषा ही बिल्कुल बदल रही है। जिस कृत्य को कल तक अपराध की संज्ञा दी जाती थी आज उसे अपराध ही नहीं समझा जाता। कल तक जो अपराध लज्जा, शर्म तथा डांट-डपट के भय से छिप कर किया जाता था आज न केवल सबके सामने खुल्लम खुल्ला हो रहा है अपितु उस पर गर्व किया जाता है। अतः यह यदि दर्शन (फ़लास्फ़ी) उचित है और जीवित रखे जाने के योग्य है तो स्वीकार करना पड़ेगा कि धार्मिक और नैतिक दर्शन जीर्ण और बेकार हो चुके हैं और आज के युग में उनका कोई उद्देश्य शेष नहीं रहा।

अपराध का दण्ड तथा नेकी के प्रतिफल का सार्वभौमिक नियम चेतन और अचेतन के लिए एक साझी प्रेरक शक्ति की प्रतिष्ठा रखता है। निष्प्राण पदार्थों में यह सिद्धान्त प्रकृति के नियमों की अवचेतन प्रक्रिया में कार्यरत दिखाई देता है। जीवित शरीरों में मानव-सृष्टि से पूर्व की प्रगति प्रक्रिया को इसी सिद्धान्त ने आगे बढ़ाया है जो अर्धचेतन अथवा अर्ध सक्रिय अवस्था में जारी रहा है। विकास-प्रक्रिया को बिल्कुल निचले स्तर से लेकर मनुष्य के स्तर तक देखा जाए तो

यह अल्पचेतना से उच्च चेतना की ओर एक यात्रा दिखाई देती है। विकसित विज्ञान की परिभाषाओं में बात की जाए तो अपराध और दण्ड, नेकी और प्रतिफल के सिद्धान्त को योग्यतम की उत्तरजीविता (Survival of the fittest) की संज्ञा भी दी जा सकती है। विकास की समस्त प्रक्रिया में यही वह प्रेरक शक्ति है जिसने निरन्तर इस यात्रा को आगे बढ़ाया है।

यह बात समझ से बिल्कुल बाहर है कि विकास की यह यात्रा जब मनुष्य अर्थात सृष्टि के श्रेष्ठतम रूप में अपनी पूर्णता को पहुंची तथा चेतना के कल्पना स्तर की छलांग से भी उच्चतर हो गया तो अचानक अपराध और दण्ड का पुराना सिद्धान्त व्यर्थ और निलंबित होकर रह गया। यदि सृष्टि का कोई श्रेष्ठ उद्देश्य है तो फिर हिसाब-किताब (जांच-पड़ताल) की भी कोई पद्धति अवश्य होनी चाहिए अन्यथा यह समस्त कारोबार निरुद्देश्य और निरर्थक ठहरेगा। यह नितान्त आश्चर्यजनक बात है कि प्राय: महानतम विद्वान भी ऐसी स्पष्ट और बोलती सच्चाई को समझने से असमर्थ रहते हैं। सापेक्षता के सिद्धान्त को प्रस्तुत करने वाले महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइनस्टाइन का मामला भी कुछ ऐसा ही है। वह कहते हैं —

"मैं एक ऐसे परमेश्वर की कल्पना नहीं कर सकता जो अपनी ही सृष्टि को प्रतिफल या दण्ड देता है। एक ऐसा परमेश्वर जिसके उद्देश्य हम मनुष्यों के उद्देश्यों की भांति हों (जिनकी पूर्णता के लिए उसने प्रतिफल और दण्ड व्यवस्था जारी की हो) संक्षेप में यह कि मैं एक ऐसे परमेश्वर को स्वीकार नहीं कर सकता जो मानवीय कमज़ोरियों का प्रतिबिम्ब अपने अन्दर लिए हुए हो।" (अल्बर्ट आइनस्टायन)

यदि एक सृष्टा परमेश्वर विद्यमान है (जिसका इन्कार अल्बर्ट आइनस्टाइन भी नहीं कर सके) और यदि सृष्टि में जारी और प्रचलित

समस्त विज्ञान संबंधी नियमों को बनाने और चलाने वाला भी वही महान सृष्टा है तो यह बात बिल्कुल ही समझ से दूर है कि सृष्टि-सृजन का वह अन्तिम उद्देश्य अर्थात मनुष्य को अपराध और दण्ड के कानून से आज़ाद करके यों ही अव्यवस्था और दुर्गति में निरुद्देश्य भटकने के लिए छोड़ दे और उसके कर्मों का कोई हिसाब न किया जाए। आइनस्टाइन के इस विचार से स्पष्ट तौर पर मालूम होता है कि वह सृष्टि के शनैः शनैः विकास में अपराध एवं दण्ड कानून-प्रक्रिया को समझने में असफल रहा है। इसके अतिरिक्त उसने मनुष्य के परमेश्वर के रूप पर सृष्टि किए जाने के अर्थ भी बिल्कुल ग़लत समझे हैं।

मनुष्य जिसकी सृष्टि-रचना परमेश्वर के रूप पर की गई है इसके ये अर्थ कदापि नहीं हैं कि मनुष्य पृथ्वी पर परमेश्वर का एक पूर्णतम नमूना है। यदि ऐसा होता तो फिर यह पृथ्वी स्वर्ग तो क्या उससे भी बढ़ जाती। इसका दूसरा परिणाम यह निकलता कि समस्त मानव एक जैसे होते, बिल्कुल एक दूसरे के समरूप। ऐसी स्थिति में यह बात निश्चय ही विचारणीय है कि फिर क्या ऐसा स्थान स्वर्ग कहलाने के योग्य होता अथवा समता और विरसता का शिकार हो जाता जहां न रंगों में कोई विविधता होती और न भिन्न-भिन्न प्रकार की सुगन्धें होतीं। वास्तव में मनुष्य के परमेश्वर के रूप पर सृजन किए जाने का न तो यह उद्देश्य है और न उसके ये अर्थ हैं। गहरी दार्शनिकता पर आधारित यह कथन मनुष्य की उन योग्यताओं की ओर संकेत कर रहा है जो उसे प्रदान की गई हैं। अतः मनुष्य को एक महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सतत् प्रयासरत रहना चाहिए और वह महान उद्देश्य यह है कि जहां तक मनुष्य के लिए संभव है परमेश्वर के गुणों को धारण करके अपने आप को पूर्ण करे, यहां तक कि उसका अस्तित्व परमेश्वर दिखाने वाला अस्तित्व बन जाए। इन अर्थों की दृष्टि से यह

कोई ऐसा निश्चित और सीमित उद्देश्य नहीं है कि परमेश्वर का रूप धारण करके मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा और वैभव को साथ लिए एक स्थान पर बैठा रहे। चूंकि परमेश्वर का अस्तित्व और उसके गुण असीमित हैं, इसलिए ईश्वरत्व की ओर की जाने वाली जो भी यात्रा होगी असीमित होगी। इस मार्ग में पूर्ण हो जाने का अर्थ केवल यह है कि मनुष्य एक निम्न अवस्था से उच्च अवस्था की ओर निरन्तर बढ़ता चला जाए।

परमेश्वर अपने अस्तित्व एवं गुणों में पूर्णतम है। वह सबसे अधिक न्याय करने वाला है, सबसे अधिक कृपालु तथा बारम्बार दया करने वाला है। उसकी दृष्टि प्रत्येक वस्तु पर है तथा वह प्रत्येक वस्तु का ज्ञान रखने वाला है, वह सब का सृष्टा, सब का स्वामी तथा प्रतिफल एवं दण्ड-दिवस का मालिक है। समस्त प्रशंसाएं परमेश्वर ही के लिए हैं। क़ुर्आन करीम परमेश्वर के गुणों की चर्चा करते हुए वर्णन करता है -

هُوَ اللّٰهُ الَّذِیۡ لَاۤ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ عٰلِمُ الۡغَیۡبِ وَ الشَّهَادَةِ ۚ هُوَ الرَّحۡمٰنُ الرَّحِیۡمُ ○ هُوَ اللّٰهُ الَّذِیۡ لَاۤ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ اَلۡمَلِکُ الۡقُدُّوۡسُ السَّلٰمُ الۡمُؤۡمِنُ الۡمُهَیۡمِنُ الۡعَزِیۡزُ الۡجَبَّارُ الۡمُتَکَبِّرُ ؕ سُبۡحٰنَ اللّٰهِ عَمَّا یُشۡرِکُوۡنَ ○ هُوَ اللّٰهُ الۡخَالِقُ الۡبَارِئُ الۡمُصَوِّرُ لَهُ الۡاَسۡمَآءُ الۡحُسۡنٰی ؕ یُسَبِّحُ لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَ الۡاَرۡضِ ۚ وَ هُوَ الۡعَزِیۡزُ الۡحَکِیۡمُ ○

(सूरह अलहश्र - 23 से 25)

अनुवाद - *वही परमेश्वर है जिस के अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य नहीं। परोक्ष का जानने वाला है और वर्तमान का भी। वही है जो बिना मांगे देने वाला, अत्यन्त कृपा करने वाला (तथा) बार-बार दया करने वाला है। वही परमेश्वर है जिसके अतिरिक्त अन्य*

कोई उपास्य नहीं। वह बादशाह है, पवित्र है, सलाम (दोषरहित) है, अमन देने वाला है, निगरान है, पूर्ण प्रभुत्व वाला है, टूटे काम बनाने वाला है (तथा) महत्तावान है, पवित्र है परमेश्वर उस से जो वे शिर्क (अनेकेश्वरवाद) करते हैं। वही परमेश्वर है जो सृजन करने वाला, सृजन का आरंभ करने वाला और समुचित रूप प्रदान करने वाला चित्रकार है। समस्त सुन्दर नाम उसी के हैं। उसी की पवित्रता का बखान कर रहा है जो आसमानों एवं पृथ्वी में है और वह पूर्ण प्रभुत्व वाला (तथा) नीतिवान है।

यह वह परमेश्वर है जिसने धरती और आकाश पैदा किए हैं। उसका अस्तित्व मानव दोषों से बिल्कुल पवित्र है। क़ुर्आन करीम बार-बार ईमान लाने वालों को परमेश्वर के निशानों पर विचार करने का आग्रह करता है। उदाहरण के तौर पर वर्णन करता है -

تَبٰرَكَ الَّذِىْ بِيَدِهِ الْمُلْكُ ۡ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرُ ۙ ۝۱ الَّذِىْ
خَلَقَ الْمَوْتَ وَالْحَيٰوةَ لِيَبْلُوَكُمْ اَيُّكُمْ اَحْسَنُ عَمَلًا ؕ وَهُوَ الْعَزِيْزُ
الْغَفُوْرُ ۙ ۝ الَّذِىْ خَلَقَ سَبْعَ سَمٰوٰتٍ طِبَاقًا ؕ مَا تَرٰى فِىْ خَلْقِ
الرَّحْمٰنِ مِنْ تَفٰوُتٍ ؕ فَارْجِعِ الْبَصَرَ ۙ هَلْ تَرٰى مِنْ فُطُوْرٍ ۝
ثُمَّ ارْجِعِ الْبَصَرَ كَرَّتَيْنِ يَنْقَلِبْ اِلَيْكَ الْبَصَرُ خَاسِئًا وَّهُوَ حَسِيْرٌ ۝

(सूरह अलमुल्क - 2 से 5)

अनुवाद - *बस एक वही बरकत वाला सिद्ध हुआ जिसकी क़ुदरत के अधिकार में सम्पूर्ण बादशाहत है और वह प्रत्येक वस्तु पर जिसे वह चाहे शाश्वत क़ुदरत रखता है। वही जिसने मृत्यु और जीवन को पैदा किया ताकि वह तुम्हारी परीक्षा ले कि तुम में से कर्म की दृष्टि से कौन उत्तम है और वह पूर्ण प्रभुत्व वाला*

(और) बहुत क्षमा करने वाला है। वही जिसने सात आसमानों को तह के बाद तह पैदा किया। तू अत्यन्त कृपालु परमेश्वर की सृष्टि में कोई विरोधाभास नहीं देखता। अत: दृष्टि दौड़ा क्या तू कोई दोष देख सकता है ? दूसरी बार पुन: दृष्टि दौड़ा। तेरी ओर (वह) दृष्टि असफल लौट आएगी और वह थक चुकी होगी।

परमेश्वर के रूप का सही अर्थ समझ लेने के पश्चात जब मानव उत्पत्ति के आरंभ से सम्पूर्ण जगत के आज तक होने वाले विकास को देखता है तो पुकार उठता है कि चेतना के अभाव से चेतना तक की यह सम्पूर्ण यात्रा परमेश्वर का रूप धारण करने तथा मानव अस्तित्व को परमेश्वरीय गुणों से विभूषित करने का प्रयास ही अभिप्राय है।

इस्लामी समाज का विशेष वातावरण

इस्लाम जिस सामाजिक वातावरण का निर्माण करना चाहता है वह कथित भौतिकवादी समाज से उतना ही भिन्न है जितना बसंत ऋतु पतझड़ की ऋतु से भिन्न होती है। इस्लाम समाज की जो कल्पना प्रस्तुत करता है उसमें मनुष्य की स्वाभाविक इच्छाओं में एक संतुलन और अनुशासन रखा गया है। असीमित इच्छाओं पर अवरोध लगाया है। कारण यह है कि यदि इन स्वाभाविक इच्छाओं को निरंकुश छोड़ दिया जाए तो मानवीय भावनाओं एवं इच्छाओं का पूरा अनुशासन अस्त-व्यस्त हो कर रह जाता है। इस्लाम इच्छाओं की इस प्रकार की पूर्ति को प्रोत्साहित नहीं करता या तो उसे निषिद्ध ठहराता है जिसका अन्तिम परिणाम यह हो कि समाज ख़ुशियों और प्रसन्नताओं के स्थान पर दुखों से भर जाए। इसके साथ-साथ इस्लाम नवीन रुचियां दर्शाता है तथा ऐसे कार्यों से आनन्द और सन्तोष प्राप्त करने की योग्यता का विकास करता है जो संभव है कि एक असभ्य और अप्रशिक्षित व्यक्ति को नीरस और आनंद रहित दिखाई दें। अत: इस्लाम मानव-रुचि को

श्रेष्ठ सांचों में ढालता है। अमानवीय इच्छाओं एवं कामवासनाओं को प्रशिक्षित, मर्यादित और संतुलित करता है तथा निम्नतम इच्छाओं को उच्च और श्रेष्ठतम इच्छाओं में परिवर्तित कर देता है।

प्रश्न यह है कि यह निर्णय किस प्रकार किया जाए कि वर्तमान आर्थिक रुझान समाज के लिए किस सीमा तक हानिप्रद है। मेरे विचार में इस प्रश्न का उत्तर बहुत साधारण और सरल है। मनुष्य के स्वास्थ्य के लक्षणों की भांति समाज के स्वास्थ्य का अनुमान लगाने के लिए कुछ भी लक्षण होते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी पीड़ा के कारण बेचैनी और कष्ट से ग्रसित हो और उसे किसी भी प्रकार से चैन न आए तो उसे रोगी ठहराने के लिए किसी प्रवीण उपचारक अथवा बहुत बुद्धिमान मनुष्य की आवश्यकता नहीं होती अपितु कोई भी उन लक्षणों को देखकर जान सकता है कि यह व्यक्ति अत्यन्त बीमार है। ठीक उसी प्रकार वर्तमान समाज में रोग के समस्त संकेत और लक्षण स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं।

हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम का यह कथन कितना अधिक सत्य पर आधारित है -

"उन के फलों से तुम उनको पहचान लोगे। क्या कांटेदार झाड़ियों से कभी अंगूर तोड़े गए हैं और क्या उंटकटारों से कभी अंजीरें भी ली गई हैं। इसी प्रकार अच्छा वृक्ष अच्छे फल लाता है और बुरा वृक्ष बुरे फल लाता है। अच्छा वृक्ष बुरे फल नहीं ला सकता न बुरा वृक्ष अच्छा फल ला सकता है।" (मती बाब-7, आयत - 16 से 18)

आज जो कड़वे फल खाने को मिल रहे हैं उनके विरुद्ध लोग अपने क्रोध को प्रकट तो करते हैं यहां तक कि चीख-चीख कर उनके कंठ बैठ जाते हैं परन्तु वे कड़वे फल देने वाले वृक्ष को परिवर्तित नहीं करना चाहते। वे नहीं चाहते कि उसके स्थान पर मीठे फल देने वाला वृक्ष लगाएं। उनके निकट यदि फल कड़वा है तो वृक्ष का कोई दोष नहीं।

इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था यह मांग करती है कि उस बुरे वृक्ष को उखाड़कर उसके स्थान पर एक पवित्र और स्वस्थ वृक्ष लगाया जाए। क़ुर्आन करीम के अनुसार जब आदम (Adam) को एक वृक्ष का फल खाने से रोका गया तो उस से बिलकुल यही कथित अभिप्राय था। क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

اَلَمْ تَرَ كَيْفَ ضَرَبَ اللّٰهُ مَثَلًا كَلِمَةً طَيِّبَةً كَشَجَرَةٍ طَيِّبَةٍ اَصْلُهَا ثَابِتٌ وَّفَرْعُهَا فِي السَّمَآءِ ۙ تُؤْتِيْٓ اُكُلَهَا كُلَّ حِيْنٍۢ بِاِذْنِ رَبِّهَا ۗ وَيَضْرِبُ اللّٰهُ الْاَمْثَالَ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ۝

(सूरह इब्राहीम - 25, 26)

अनुवाद - *(हे मनुष्य) एक पवित्र बात के बारे में वास्तविकता का वर्णन किया है वह एक पवित्र वृक्ष के समान होती है जिस की जड़ (दृढ़ता के साथ) क़ायम होती है और उसकी (प्रत्येक) शाखा आकाश की ऊंचाइयों में (पहुंची होती) है। वह हर समय अपने रब्ब के आदेश से अपना (ताज़ा) फल देता है और परमेश्वर लोगों के लिए (उनकी आवश्यकता की) समस्त बातें वर्णन करता है।*

इस पवित्र आयत में शजर: अर्थात् वृक्ष का शब्द एक लक्षण के तौर पर प्रयोग हुआ है। क़ुर्आन करीम ने सच्चे और पवित्र दर्शन की तुलना में ग़लत और झूठे दर्शन (Philosophy) की चर्चा करते हुए ऐसी ही सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया है। पवित्र वृक्ष के मुकाबले पर बुरे वृक्ष का वर्णन किया गया है। इस बुरे वृक्ष और ईमान न लाने वालों की दशा का वर्णन अगली दो आयतों में आया है। फ़रमाया -

وَمَثَلُ كَلِمَةٍ خَبِيْثَةٍ كَشَجَرَةٍ خَبِيْثَةِ ِۨاجْتُثَّتْ مِنْ فَوْقِ الْاَرْضِ مَا لَهَا مِنْ قَرَارٍ ۝ يُثَبِّتُ اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا بِالْقَوْلِ الثَّابِتِ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَفِي الْاٰخِرَةِ ۚ وَيُضِلُّ اللّٰهُ الظّٰلِمِيْنَ ۙۗ وَيَفْعَلُ اللّٰهُ مَا يَشَآءُ ۝

(सूरह इब्राहीम - 27, 28)

अनुवाद - *और अपवित्र बात का उदाहरण अपवित्र वृक्ष का सा है जो पृथ्वी पर से उखाड़ दिया गया हो। इसके लिए (किसी एक स्थान पर) स्थिरता निश्चित न हो। परमेश्वर उन लोगों को जो ईमान लाए स्थायी कथन के साथ इस लोक और परलोक में दृढ़ता प्रदान करता है जबकि परमेश्वर अत्याचारियों को पथभ्रष्ट ठहराता है तथा परमेश्वर जो चाहता है करता है।*

कलिमः का शब्द यहां एक दर्शन और विचारधारा के अर्थों में प्रयोग हुआ है बिलकुल ऐसे ही जैसे कलिमः का यह शब्द विशालतम अर्थों में इन्जील यूहन्ना की प्रथम आयत में प्रयोग हुआ है -

प्रारंभ में कलाम था और कलाम परमेश्वर के साथ था और कलाम परमेश्वर था। (यूहन्ना बाब - 1, आयत - 1)

इन झूठे दर्शनशास्त्रों और वैचारिक व्यवस्था का परिणाम भी अनिवार्य रूप से उस बुरे वृक्ष के समान ही होता है जो जीवन के प्रयास में असफल रहता है और अन्ततः तीव्र हवाओं और तूफानों के हाथों उखाड़ फेंका जाता है। हवाएं उसे उड़ाए फिरती हैं परन्तु इसके विपरीत एक स्वस्थ व्यवस्था उस पवित्र वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें पृथ्वी में दृढ़तापूर्वक स्थापित हैं और उसका तना ऊंचा और शाखाएं आकाश के पवित्र वातावरणों और विशालताओं में फैली हुई हैं। यह वृक्ष आकाशीय प्रकाश और नूर से अपनी जीविका प्राप्त करता है तथा प्रत्येक मौसम में अच्छे फल लाता है। क़ुर्आन करीम मोमिनों के बारे में फ़रमाता है कि वे परमेश्वर पर एक दृढ़ और ठोस ईमान रखते हैं और उनके समस्त शिष्टाचार और चरित्र की जड़ें परमेश्वर पर ईमान की पृथ्वी के अंदर स्थापित होती हैं। यही कारण है कि इस्लाम में शिष्टाचार की कल्पना इतनी पूर्ण है कि वह सामाजिक, धार्मिक और वंश स्तर पर कोई प्रमुखता वैध नहीं रखती।

वह निर्देशक सिद्धान्त जो मानव जीवन के समस्त पहलुओं पर चरितार्थ होता है निम्नलिखित आयत में वर्णन हुआ है -

وَلِلّٰهِ غَيْبُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَاِلَيْهِ يُرْجَعُ الْاَمْرُ كُلُّهٗ فَاعْبُدْهُ وَتَوَكَّلْ عَلَيْهِ ؕ وَمَا رَبُّكَ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝

(सूरह हूद - 124)

अनुवाद - *और आसमानों तथा पृथ्वी का परोक्ष (का ज्ञान) परमेश्वर को ही है और सारा मामला (परिणाम की दृष्टि से) उसी की ओर लौटाया जाता है। अत: उसकी उपासना कर तथा उस पर भरोसा कर और तेरा प्रतिपालक उस से असावधान नहीं है जो तुम लोग करते हो।*

इसी प्रकार एक अन्य आयत में फ़रमाया -

اَلَا لَهُ الْخَلْقُ وَالْاَمْرُ ؕ تَبٰرَكَ اللّٰهُ رَبُّ الْعٰلَمِيْنَ ۝

(सूरह अलआराफ़ - 55)

अनुवाद - *सावधान ! सृष्टि करना भी उसी का काम है और शासन भी। अत: एक वही परमेश्वर बरकत वाला सिद्ध हुआ जो समस्त संसारों (लोकों) का प्रतिपालक है।*

इस्लाम द्वारा प्रस्तुत किया हुआ यह दर्शन परमेश्वर के पूर्ण प्रभुत्व की कल्पना से प्रारंभ होता है और उसी पर समाप्त होता है।

इस्लामी समाज के मूल सिद्धान्त

इसी विषय पर क़ुर्आन करीम की आधारभूत आयत यह है -

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُ بِالْعَدْلِ وَالْاِحْسَانِ وَاِيْتَآئِ ذِى الْقُرْبٰى وَيَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَالْمُنْكَرِ وَالْبَغْىِ ۚ يَعِظُكُمْ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ۝

(सूरह अन्नहल - 91)

अनुवाद - *निश्चित रूप से परमेश्वर न्याय का, उपकार का और निकट संबंधियों पर किए जाने वाले दान की तरह प्रदान करने का आदेश देता है तथा निर्लज्जता तथा घृणित बातों एवं विद्रोह से मना करता है। वह तुम्हें नसीहत करता है ताकि तुम नसीहत प्राप्त करो।*

इस आयत का प्रथम भाग सामाजिक व्यवस्था से अधिक आर्थिक मामलों से संबंधित है और यह भाग समाज के वंचित वर्गों से व्यवहार के संबंध में न्याय, उपकार तथा निकट संबंधियों को दान देने की इस्लामी विचारधारा का एक स्पष्ट चित्रण करता है। आयत के द्वितीय भाग का संबंध उस सामाजिक व्यवस्था से है जो इस्लाम हर प्रकार से स्थापित करना चाहता है। इसमें परमेश्वर ने प्रत्येक उस ग़लत कार्य से रोक दिया है जिसे सर्वसम्मति से समस्त संसार में ग़लत समझा जाता है। उदाहरणतया दुराचार, किसी के सम्मान पर प्रहार, अपयश और वास्तव में वे समस्त सामाजिक दोष जिन की किसी धार्मिक शिक्षा के बिना विशालतम मानव समाज में सर्वसम्मति से निन्दा की जाती है। इसी प्रकार इस्लाम प्रत्येक उस कार्य-प्रणाली और रुझान का खण्डन करता है तथा उसकी कठोरता के साथ निन्दा करता है जिसका परिणाम कुप्रबंधन, विद्रोह तथा अत्याचार हो। इस परिप्रेक्ष्य में हर वह अवैध हरकत विद्रोह समझी जाती है जो किसी भी स्थापित और सुदृढ़ व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए की जाए। केवल यही नहीं अपितु क़ुर्आन करीम में जब भी अरबी शब्द "बग़ये" (بَغْيِ)प्रयोग हुआ है उसको केवल सशस्त्र या राजनैतिक विद्रोह पर ही नहीं बोला जाता अपितु यह शब्द समाज की श्रेष्ठ और उच्चतम प्रतिष्ठाओं, नैतिक मूल्यों तथा धार्मिक शिक्षाओं के विरुद्ध सर उठाने पर भी बोला जाता है।

आयत के अन्तिम भाग में स्पष्ट तौर पर चेतावनी दी गई है कि यह नसीहत मनुष्य के अपने हितार्थ ही की गई है। इस प्रकार इस

आधारभूत और मुख्य आयत में इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था की प्रमुख रूप-रेखा स्पष्ट कर दी गई है। यह भी स्मरण रहे कि इस आयत का प्रथम भाग भी इस्लाम की सामाजिक शिक्षाओं से गहरा संबंध रखता है। एक ऐसा समाज जिसे अन्य लोगों के कष्टों का अहसास न हो और जो मानव सेवा की स्थायी भावना से रिक्त हो, इस्लामी समाज कदापि नहीं कहला सकता चाहे इस्लाम की सामाजिक शिक्षाओं के अन्य पहलुओं से कितनी ही अनुकूलता क्यों न रखता हो।

आइए अब हम इस्लामी समाज की कुछ अन्य विशेषताओं का अध्ययन करते हैं जिनकी रूप-रेखा का चित्रण क़ुर्आन करीम ने किया है। इस्लाम ने निष्कपटता, ईमानदारी, वफ़ादारी पर बहुत बल दिया है। इस्लाम हर उस बात और पहल को प्रोत्साहित करता है जिसके परिणामस्वरूप समाज में मानसिक एवं हार्दिक समृद्धि पैदा होती है। भोग-विलास की खोज का जिस प्रकार के सामाजिक विकार और असंतुलन पर अन्त हो सकता है उसे रोकने के लिए भी कई उपाय काम में लाए गए हैं। प्रत्येक ऐसी कार्य पद्धति के मनोबल को तोड़ा गया है जो समाज को निरंकुश कामवासनाओं की आज़ादी की ओर ले जा सकता है चाहे प्रारंभ में वह कितना ही हानिरहित क्यों न दिखाई दे। कामवासना की आज़ादी समाज को कई प्रकार से अत्यधिक हानि पहुंचाती है तथा इसका परिणाम स्वच्छन्द अनैतिक यौनाचार पर घटित होता है, जिसने आज विश्व को अपनी लपेट में ले रखा है। आनन्दों के पीछे अन्धाधुन्ध भागने से अन्य हानियों के अतिरिक्त एक हानि यह भी होती है कि खानदानी रिश्ते टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाते हैं। इसके विपरीत इस्लाम माता-पिता, भाई-बहन तथा सन्तान के पवित्र रिश्तों को बहुत महत्व देता है और उनकी रक्षा करता है। इसी प्रकार इस्लाम उन मित्रता संबंधी रिश्तों को भी बढ़ावा देता है जो लोभ-लालच की बजाए पवित्र प्रेम पर आधारित हों।

सतीत्व और सच्चरित्रता

इस्लाम के अनुसार समाज में स्त्रियों के सम्मान को क़ायम करने के लिए यह बात नितान्त आवश्यक है कि ऐसी समस्त कार्यवाहियां की जाएं जो सतीत्व, वफ़ादारी, आत्म संयम तथा पवित्र जीवन को प्रोत्साहन दें। स्वच्छंद अनैतिक यौनाचार के ख़तरों से पूर्णतया सुरक्षित रहते हुए शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करना इस्लामी समाज की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इस्लाम द्वारा प्रस्तुत सामाजिक शिक्षाओं का यह पहलू वंश-व्यवस्था को बचाने और सुरक्षित रखने के लिए नितान्त महत्त्वपूर्ण है और यही वर्तमान युग की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता भी है।

इस्लाम पारिवारिक इकाई को मात्र पति-पत्नी के संबंध तक सीमित नहीं रखना चाहता अपितु उसे बढ़ाना चाहता है। एक ऐसा खानदान जिसमें प्रेम और मुहब्बत की कल्पना मात्र काम-वासनाओं की पूर्ति तक ही सीमित न हो अस्तु उसमें अन्य खूनी रिश्तों (Blood Relations) के समान गहरी और कोमल सहिकारिताएं भी मौजूद हों। आश्चर्य है कि वर्तमान युग के विद्वान क्यों इस भयानक मानवीय दोष से अपरिचित हैं कि यदि समाज में कामानन्दों की प्राप्ति की खुली छुट्टी मिल जाए तो फिर अश्लीलता और निर्लज्जता का राक्षस उच्च और कोमल मूल्यों का रक्त चूस-चूस कर बढ़ना और फलना आरंभ हो जाता है। सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) एक ऐसे ही समाज की पैदावार है। वह प्रत्येक मानवीय भावना और कार्य को काम-वासना के पैमाने से परखता है। उसके निकट मां और बच्चे का पवित्रतम संबंध भी काम-भावनाओं ही से संबंध रखता है। इसी प्रकार पिता और बेटी के संबंध को भी कोई सम्मान प्राप्त नहीं अस्तु यह भी काम-इच्छाओं का आत्मप्रदर्शन ही है। उसके कथनानुसार मनुष्य का लगभग प्रत्येक कार्य जिसका उसे चेतना के तौर पर ज्ञान हो या

न हो उसकी गहरी अवचेतना काम-इच्छाओं की द्योतक होती है। मैं नहीं जानता कि फ्रायड के अपने युग में भी वर्तमान समाज के समान कामवासना संबंधी पथभ्रष्टता सार्वजनिक हो चुकी थी या नहीं, फिर भी इतना विकार अवश्य था जिसके अनुसार उसने मानव मनोविज्ञान तथा प्रजाति से संबंधित अपना विशेष्य दृष्टिकोण स्थापित किया। यदि फ्रायड की विचारधारा को उचित भी मान लिया जाए तो यह बात और भी आवश्यक हो जाती है कि ऐसे शक्तिशाली और भयानक प्रेरकों को निर्विघ्न खेलने का कोई अवसर न दिया जाए, अन्यथा स्पष्ट है कि मानव मस्तिष्क अवश्य किसी न किसी ग़लत मार्ग पर चल पड़ेगा।

खेद का स्थान तो यह है कि इस्लाम द्वारा प्रस्तुत सामाजिक वातावरण तथा उसकी विशेषताओं को समझना तो पृथक रहा वर्तमान युग का समाज इस बारे में प्रयास करने के लिए तैयार तक नहीं, परन्तु स्मरण रहे कि मनुष्य न तो ईश्वर के कर्म अर्थात प्रकृति के नियमों को परास्त कर सकता है और न ही उसके कथन अर्थात परमेश्वरीय वाणी को झुठला सकता है। चाहे वह प्रारब्ध के स्रष्टा, स्वामी एवं इच्छा पर अधिकृत अस्तित्व पर ईमान रखे या न रखे और चाहे मनुष्य ईश-वाणी के अनुसार अपने सामाजिक आचरण निर्माण पर तत्पर हो या न हो, यह बात निश्चित है कि वह परमेश्वर के कथन और कर्म को झुठला नहीं सकता। परमेश्वर के कर्म और उसकी वाणी को तब ही सत्य समझा जाएगा जब दोनों में पूर्ण अनुकूलता और समन्वय हो। अतः मनुष्य का प्रत्येक वह सामाजिक आचरण जो परमेश्वर की वाणी से टकराए तो उसका अनिवार्य परिणाम विनाश और बरबादी होगा।

मनुष्य सदैव बिना रोक-टोक भोग-विलास का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता चाहे वह उसके लिए कितनी ही इच्छा क्यों न करे। उसे अधिकाधिक यही अधिकार दिया गया है कि कुछ वस्तुओं को

पसन्द करे और कुछ को त्याग दे। वह समाज जो अफीम और अन्य नशीली वस्तुओं को अपना लेता है तथा जीवन की वास्तविकताओं एवं दायित्वों से पलायन करता है, वह समाज जो कामवासनाओं, विलासिता एवं सनसनी पैदा करने के उन्माद में लिप्त हो जाता है, वह समाज जहां जान बूझ कर लोगों की अभिरुचियां बिगाड़ी जाती हैं तथा उन्हें अधिकाधिक भोग-विलास का आसक्त बनाया जाता है ताकि भोग-विलास के नित्य नए सामान और साधनों के निर्माण की मारकीट (Market) पैदा हो सके और "क्या और भी कुछ है" की लालसा बढ़ती चली जाए ताकि इस से अधिक बड़ी व्यावसायिक कम्पनियों का धन-सम्पत्ति के भंडार एकत्र करने का एकमात्र उद्देश्य पूर्ण होता रहे। ऐसा समाज ये सब कुछ तो प्राप्त कर लेता है परन्तु उसे इसका भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। हार्दिक संतोष समाप्त हो जाता है, उच्च आदर्श जाते रहते हैं और समाज का सामूहिक अमन एवं शान्ति बरबाद हो जाती है। स्पष्ट है कि विलासिता और हार्दिक संतोष दोनों कभी इकट्ठे नहीं हो सकते।

एक भौतिकवादी समाज जिन उच्च आदर्शों की अवहेलना करता है इस्लाम उन्हीं की स्थापना पर बल देता है। आनंद का महत्त्व अपने स्थान पर है, परन्तु उसे मानसिक संतुष्टि और सामाजिक अमन के बदले खरीदा नहीं जा सकता। ऐसे समस्त रुझान जिनके कारण धीरे-धीरे खानदान विखंडित हो जाया करते हैं तथा स्वार्थ परायणता, दायित्वहीनता, अश्लीलता, अत्याचार तथा अपराधों का विकास होता है, इस्लाम उन्हें प्रोत्साहित नहीं करता। इस्लामी दर्शन जिस सामाजिक वातावरण को जन्म देता है उसमें और भौतिकवादी वातावरण में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। मुझे आश्चर्य होता है कि कुछ लोग इस वास्तविकता को क्यों विस्मृत कर देते हैं कि इच्छाओं को बढ़ावा देने या खुली छुट्टी देने से उन्हें मानसिक एवं हार्दिक संतुष्टि कदापि प्राप्त

नहीं हो सकती और विश्व का कोई समाज भी चाहे वह आर्थिक दृष्टि से कितना ही दृढ़ क्यों न हो अनियंत्रित इच्छाओं एवं लालसा को कदापि सहन नहीं कर सकता।

विश्व के धनाढ्य समाजों में भी समृद्धिशाली लोगों के साथ-साथ दरिद्र लोग भी विद्यमान हैं तथा ऐसे लोगों की संख्या जो जीवन की मूल सुविधाओं से वंचित हैं हमेशा बहुत अधिक होती है। इसकी तुलना में ऐसे समृद्धिशाली लोग तो बहुत कम हुआ करते हैं जो अपनी प्रत्येक इच्छा पूर्ण कर सकें। वास्तव में हर इच्छा की संतुष्टि वैसे भी संभव नहीं, क्योंकि धन-सम्पत्ति के साथ-साथ इच्छाएं भी बढ़ती चली जाती हैं। इसलिए धन-कुबेरों के भी सभी स्वप्न पूर्ण नहीं हो सकते। बहुत संभव है कि वे भी निराशाओं एवं वंचित रहने की अग्नि में जल रहे हों, किन्तु निर्धन तो बहुत ही दुर्दशा की अवस्था में होते हैं। जीवन की मूल सुविधाएं प्राप्त करना भी उनकी पहुंच से बाहर होता है कहां यह कि वे धनाढ्यों के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर सकें। टी.वी. और समाचारपत्रों आदि में जब इस प्रकार की राजाओं जैसे जीवन की झलकियां दिखाई जाती हैं तो यही निर्धन हैं जिनकी भावनाएं आहत होती हैं तथा जिनकी इच्छाओं का दम घुटने लगता है। ये निर्धन लोग अपने जीर्ण मकानों में बैठे प्रतिदिन भव्य मकानों, वैभवशाली उद्यानों, विलासिता से युक्त कारों, हेलीकाप्टरों, निजी जहाज़ों, नौकरों और सेवकों की फौज को आश्चर्य और निराशा से देखते रहते हैं। जब ये निर्धन लोग हॉलीवुड और बैवरले हिल्ज़ (Beverley Hills) की जीवन-पद्धति, नाच-गाने, नृत्य-राग की सभाएं, धूम-धाम से आयोजित होने वाले आयोजन अथवा जुआघरों में जीवन के रंग-ढंग देखते हैं तो उनके हृदय निराशाओं और हीनताओं का लक्ष्य बनते चले जाते हैं। वह मृगतृष्णा जिनके दृश्य टीवी नाटकों में प्रदर्शित किए जाते हैं निर्धनों के स्वप्न बन जाते हैं क्योंकि टीवी और उसके नाटक ही तो हैं जो ये असहाय और लाचार लोग

देख सकते हैं। दूसरी ओर वास्तविकता यह है कि धन-कुबेर लोगों में से भी केवल गिनती के कुछ लोग ही हैं जो इस पृथ्वी के स्वर्ग को प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु ये निर्धन लोग भोग-विलास युक्त ये दृश्य देखकर अपने दरिद्रता ग्रस्त वातावरण से ही निराश हो जाते हैं। अपने घरों में उनके लिए कोई आकर्षण शेष नहीं रहता। एक ओर वे उच्च सभ्यता और रहन-सहन से भी वंचित होते हैं और दूसरी ओर दिन-रात सुनहरी स्वप्नों में खोए रहते हैं। इस प्रकार उनके अपने जीवन के यथार्थ निरर्थक होते चले जाते हैं। व्यर्थ आनंदों एवं लुभावने स्वप्नों पर निर्मित होने वाले समाज का अन्तिम परिणाम यही है। घर में अमन व शान्ति तथा एक दूसरे के प्रति प्रेम और निष्कपटतापूर्ण संभ्रांति धीरे-धीरे एक छलावा बन कर रह जाती है। फिर एक समय ऐसा आता है कि ऐसे लोग यह भी नहीं जानते कि वे किसके लिए जीवन व्यतीत करें और किस आशा पर जीवन के दिन काटें।

अब यदि हम ने इन प्यारे घरों को फिर से आबाद करना है जो कभी पहले हुआ करते थे, उस पारस्परिक विश्वास को यथावत करना है जो घर के सदस्यों को एक प्राण कर देता है तथा उस विश्वास को स्थापित करना है जो पारस्परिक अमन और शान्ति तथा प्रेम को जन्म देता है तो इसके लिए कई उपाय करने होंगे, परन्तु कदाचित अब देर हो चुकी है और पानी सर से ऊपर गुज़र चुका है। इस सन्दर्भ में इस्लाम का सन्देश बहुत स्पष्ट है। इस्लाम वंश-व्यवस्था की सुरक्षा या जहां कहीं भी यह व्यवस्था टूट कर बिखर चुकी हो उसे नए सिरे से स्थापित करने के लिए स्पष्ट कार्यक्रम रखता है। इस्लाम के अनुसार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन की शिक्षा देने के लिए आवश्यक है कि ज्ञान, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता, सुदृढ़ ईमान और आस्था को काम में लाया जाए तथा समाज में पाए जाने वाले असंतुलन को दूर किया जाए।

पर्दा और उसकी वास्तविकता

इस्लाम में पर्दे की सामाजिक व्यवस्था को पश्चिम में लोगों ने बिलकुल ग़लत समझा है। उनके निकट इस प्रकार पुरुषों और स्त्रियों में एक लिंगानुसार भेद को उचित समझा गया है यह कुधारणा एक सीमा तक इस्लामी संसार में इस्लाम की मूल शिक्षा पर ग़लत रंग में कार्यरत होने के कारण पैदा हुई है। इस कुधारणा का दूसरा कारण पाश्चात्य मीडिया का नकारात्मक आचरण है। जिनका यह स्वभाव बन चुका है कि जहां कहीं कोई दुराचार और दुष्चरित्रता दिखाई दी उसे तुरन्त इस्लाम से सम्बद्ध कर दिया जबकि किसी यहूदी, ईसाई, बुद्ध अथवा हिन्दू के ग़लत आचरण को उसके धर्म की ओर कभी सम्बद्ध नहीं किया जाता।

इस्लाम में पर्दे का आदेश अज्ञानता के युग की किसी दृष्टिगत संकीर्णता की पैदावार नहीं है। वास्तविकता यह है कि पर्दे का प्रचलन या स्त्रियों और पुरुषों के स्वतंत्रतापूर्वक मेलजोल का रुझान युग की उन्नति या अवनति से कोई संबंध नहीं रखता। विश्व इतिहास में सदा से ऐसा होता आया है कि सामाजिक रहन-सहन की नौका धार्मिक या सामाजिक लहरों के ज्वार-भाटे के साथ-साथ आगे बढ़ती रही है।

स्त्रियों की आज़ादी की विचारधारा भी कोई ऐसा रुझान नहीं है जो शनैः शनैः पैदा हुआ हो। इस बात की शक्तिशाली साक्ष्य विद्यमान हैं कि बहुत प्राचीन युगों में भी तथा निकट अतीत में भी संसार के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री वर्ग समाज में बहुत शक्तिशाली तथा प्रभुत्वशाली रहा है। इसी प्रकार पुरुषों और स्त्रियों का स्वतंत्रतापूर्वक मेल मिलाप कदापि कोई नवीन और विचित्र बात नहीं है। संसार में सभ्यताएं उभरती और मिटती रहती हैं। मानवीय स्वभाव, आचरण तथा फैशन भी नित-प्रतिदिन परिवर्तित होते रहते हैं। न जाने कितने ही सामाजिक

रुझान नित नए अनुभवों में से गुज़र कर बनते हैं और बिगड़ते रहते हैं तथा मानव सभ्यता प्रति क्षण एक नवीन दृश्य प्रस्तुत करती रही है। यह कोई ऐसा स्थायी और हमेशा रहने वाला रुझान नहीं है जिस से हम यह अनिवार्य परिणाम निकाल सकें कि मानव इतिहास ने हमेशा एक पर्दे वाले समाज से मिश्रित समाज की दिशा में ही यात्रा की है अथवा स्त्रियां चादर या चार दीवारी के बंधन से आज़ादी के लक्ष्य की ओर बढ़ती रही हैं।

स्त्रियों के अधिकारों के एक नवीन युग का प्रारंभ

उचित होगा कि यहां हम अरब इतिहास के उस अज्ञानता के युग का निरीक्षण करें जिसमें इस्लाम का प्रादुर्भाव हुआ। मुसलमानों की आस्थानुसार इस्लाम का सन्देश परमेश्वर की वाणी पर आधारित था। इसके विपरीत ग़ैर मुस्लिमों के निकट यह हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] की स्वयं निर्मित शिक्षा थी। धार्मिक विद्वानों (उलेमाओं) की इसके संबंध में जो भी विचारधारा हो यह बात सत्य है कि पर्दे के संबंध में इस्लाम की शिक्षा का अरबों की पारंपरिक पद्धति से दूर का भी संबंध नहीं। इस्लाम के प्रादुर्भाव के समय अरब समाज स्त्रियों के बारे में बहुत विरोधाभासी आचरण रखता था। एक ओर कामवासनाओं की आज़ादी तथा स्त्रियों और पुरुषों का स्वतंत्रतापूर्वक मेलजोल था जबकि मदिरा, स्त्री और राग-रंग का उन्माद उस समाज की मुख्य विशेषताएं थीं और दूसरी ओर लड़की के जन्म को नितान्त अपमान और लज्जा का कारण समझा जाता था। कुछ अरब लोगों ने गर्व से वर्णन किया है कि उन्होंने इस अपमान से बचने के लिए अपनी नवजात बेटियों को जीवित पृथ्वी में दफ़्न कर दिया।

स्त्री की हैसियत चल सम्पत्ति से बढ़कर न थी। उसे यह अधिकार प्राप्त न था कि वह अपने पति, पिता या खानदान के किसी अन्य सदस्य से मतभेद कर सके। नि:सन्देह इस सामान्य आचरण से हट कर कुछ उदाहरण इसके अपवाद भी हैं। प्राय: ऐसा भी होता था कि शानदार नेतृत्व की योग्यता रखने वाली स्त्री अपने क़बीले में एक विशेष स्थान प्राप्त कर ले। इस्लाम ने इस सम्पूर्ण सामाजिक स्थिति को बिलकुल परिवर्तित कर दिया और यह परिवर्तन किसी सामाजिक संघर्ष या तनाव के परिणामस्वरूप जन्म लेने वाली स्वाभाविक प्रतिक्रिया नहीं थी अपितु इस्लाम ने न्याय और इन्साफ़ करने वाले के तौर पर संसार में नवीन आदर्श स्थापित किए, एक नवीन सामाजिक व्यवस्था ईश्वरीय वाणी के माध्यम से प्रदान की। यह नवीन व्यवस्था उन प्रेरकों की कृतज्ञ नहीं थी जो सामान्यत: समाज का निर्माण किया करते हैं।

पर्दे की शिक्षा के फलस्वरूप अनैतिक यौनाचार तुरन्त रुक गया। पुरुष और स्त्री के संबंधों को एक ऐसे अनुशासन का पाबन्द बना दिया गया जो सुदृढ़ और नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित था। इसके साथ-साथ स्त्री के स्थान और स्तर को इतना गरिमामय कर दिया गया कि यह संभव ही न रहा कि कोई उसे अशक्त और निष्प्राण सृष्टि समझ कर उससे उपभोग की वस्तुओं के समान व्यवहार करे। जीवन की समस्त समस्याओं में उसे पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गए। इस्लाम से पूर्व स्त्रियां विरासत में विभाजित की जाती थीं परन्तु अब स्त्री न केवल अपने पिता की सम्पत्ति की वारिस हो सकती थी अपितु अपने पति, बच्चों एवं अन्य रिश्तेदारों की सम्पत्ति की शरीअत के अनुसार वारिस बनाई गई। अब वह निर्भीकता के साथ अपने पति की राय से मतभेद कर सकती थी, निर्भय और नि:संकोच उस से बहस कर सकती थी और उसे अपनी राय पर दृढ़ रहने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। अब केवल स्त्री ही को तलाक़ नहीं दी जा सकती

थी अपितु स्त्री चाहे तो वह पुरुष को तलाक़ दे सकती थी इस्लाम ने स्त्री को माता के रूप में जिस मान-सम्मान के योग्य ठहराया है, विश्व के अन्य समाजों में उसका उदाहरण मिलना दुर्लभ है। हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] का शुभ अस्तित्व ही था जिस ने स्त्रियों के अधिकारों की स्थापना के लिए ईशवाणी के अधीन यह घोषणा की -

"तुम्हारा स्वर्ग तुम्हारी माताओं के पैरों के नीचे है।"

इस प्रवचन में आप[स.] ने केवल उस स्वर्ग ही के वादे की चर्चा नहीं की जो पारलौकिक जीवन में पूर्ण होगा अपितु एक ऐसे सामाजिक स्वर्ग का भी वर्णन किया है जिसका वादा उन लोगों से है जो अपनी माताओं के साथ नितान्त आदर-सम्मान के साथ व्यवहार करते हैं और उन्हें हर संभव सुख एवं आराम पहुंचाने के लिए प्रयासरत रहते हैं।

पर्दे से संबंधित इस्लामी शिक्षा को इसी परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास करना चाहिए। इस्लाम यह शिक्षा इसलिए नहीं देता कि पुरुष को स्त्री पर कोई काल्पनिक श्रेष्ठता या प्रमुखता प्राप्त है अपितु परमेश्वर ने यह शिक्षा इसलिए दी है ताकि घर अर्थात चादर और चारदीवारी की पवित्रता स्थापित हो, पति-पत्नी के मध्य परस्पर विश्वास का वातावरण उन्नति करे तथा स्वाभाविक इच्छाओं एवं भावनाओं को संतुलन पर लाया जाए और उन्हें समाज में यों बेलगाम न छोड़ दिया जाए कि वे एक भयानक राक्षस बनकर रह जाएं अपितु उन्हें इस प्रकार अधिकार में लाया जाए जिस से वह प्रकृति की अन्य व्यवस्थित शक्तियों की भांति एक निर्माण संबंधी भूमिका निभा सकें।

पर्दे की इस इस्लामी शिक्षा के संबंध में बहुत सी कुधारणाएं प्रचलित हैं -

इसे एक ऐसी पाबन्दी समझा जाता है जिसके फलस्वरूप स्त्रियां जीवन के समस्त भागों में पूर्णरूप से भाग लेने से वंचित हो जाएं,

हालांकि यह बात कदापि, कदापि उचित नहीं है। पर्दे के इस्लामी दृष्टिकोण को समझने के लिए उसके निहित उद्देश्य को समझना अत्यन्त आवश्यक है। पर्दे का उद्देश्य यह है कि स्त्री के सम्मान और उसके सतीत्व की पवित्रता की रक्षा की जाए और समाज में ऐसे पुरुषों और स्त्रियों जिन से इस्लामी धार्मिक विधान के अनुसार विवाह वैध है के स्वतंत्रतापूर्वक मेल-जोल, संबंधों एवं प्रेमाचारों का मनोबल बड़ी कठोरता के साथ को तोड़ा गया है। पुरुष और स्त्री को न केवल बुरी दृष्टि से देखने से रोका गया है अपितु ऐसे समस्त दृश्यों को देखने तथा शारीरिक निकटता तक से मना किया गया है जिसके परिणाम स्वरूप ऐसी उत्तेजनात्मक भावनाएं भड़क जाएं जिन पर संयम रख पाना एक सामान्य मनुष्य के वश में न हो। स्त्रियों से यह आशा रखी गई है कि वे अपने शरीर को बड़ी अच्छे प्रकार से ढक कर रखेंगी। उन्हें यह नसीहत की गई है कि वे ऐसा ढंग और ऐसी पद्धति न अपनाएं जिसके फलस्वरूप किसी आवारा स्वभाव व्यक्ति को बुरी दृष्टि से देखने का अवसर प्राप्त हो सके। श्रृंगार और सजावट एवं आभूषण पहनना मना नहीं है परन्तु घर से बाहर ऐसे पुरुषों जिनसे विवाह वैध है का ध्यान प्राप्त करने के लिए सौन्दर्य प्रदर्शन करना उचित नहीं है।

हम यह बात भली-भांति जानते हैं कि समस्त विश्व में वर्तमान समाज के स्वभाव और आचरण की दृष्टि से यह शिक्षा कठोर दिखाई देती है। इसमें बहुत सी पाबंदियां हैं और प्रत्यक्षत: यह नीरस और आनंदरहित सी दृष्टिगोचर होती है तथापि इस्लाम की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के गहन अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह राय बहुत शीघ्रता में स्थापित की गई है तथा इसमें ऊपरीपन पाया जाता है। आवश्यक है कि पर्दे की शिक्षा को इस्लाम द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण नैतिक व्यवस्था तथा सामाजिक वातावरण का एक अनिवार्य भाग समझा जाए जिस से पृथक करके उसे समझा ही नहीं जा सकता।

इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों की भूमिका महलों में रहने वाली दासियों की भांति नहीं है, न ही स्त्री को घर की चारदीवारी में कैद किया गया है और न उसे उन्नति और ज्ञान रूपी प्रकाश से वंचित रखा गया है। इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था का यह भयानक चित्र वास्तव में इस्लाम के आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं का बनाया हुआ है या फिर इसे उन मुल्लाओं की ओर संबद्ध किया जा सकता है जो इस्लामी जीवन-पद्धति को समझने की योग्यता ही नहीं रखते।

एक बात तो तय है कि इस्लाम यह अनुमति नहीं दे सकता कि स्त्री को खिलौना समझ कर उस का शोषण किया जाए और वह पुरुष की कामवासना का निशाना बनती रहे। इस्लाम स्त्री के संबंध में ऐसे अपमानजनक व्यवहार के औचित्य की कदापि अनुमति नहीं देता।

क्या यह बहुत बड़ा अत्याचार नहीं कि चूंकि समाज का स्वभाव मांग करता है इसलिए यह आवश्यक समझा जाए कि स्त्री स्वयं को श्रृंगारयुक्त रखे तथा आकर्षक दिखाई देने का प्रयास करती रहे। स्त्री के साथ आज यह अन्याय हो रहा है। हर समय स्त्री-सौन्दर्य का प्रदर्शन किया जाता है।

खाने-पीने की कोई वस्तु दैनिक उपभोग-पदार्थों उदाहरणतया वाशिंग पाउडर इत्यादि तक के विक्रय के लिए आवश्यक हो गया है कि विज्ञापन में स्त्री के चेहरे का प्रदर्शन किया गया हो। दूसरी ओर जीवन के कृत्रिम ठाट-बाट को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जैसे उसके बिना स्त्री के स्वप्नों का निहित परिणाम संभव ही न हो। ऐसा समाज कभी अधिक देर तक संतुलित और स्वस्थ नहीं रह सकता। इस्लामी शिक्षानुसार चाहे कुछ भी हो स्त्री को शोषण से हर प्रकार से आज़ादी मिलनी चाहिए। उसे इस बात से मुक्ति मिलनी चाहिए कि वह पुरुष के लिए मात्र आनन्द-प्राप्ति का साधन बनी रहे। उस के

पास स्वयं अपने लिए कुछ खाली समय होना चाहिए ताकि वह अपने घर और आने वाली पीढ़ियों से सम्बद्ध अपने दायित्व पूर्ण कर सके।

स्त्रियों के लिए समान अधिकार

आजकल स्त्रियों की आज़ादी एवं स्त्रियों के अधिकार आदि की बहुत चर्चा है। इस्लाम इसके संबंध में एक ऐसा व्यापक और आधारभूत सिद्धान्त वर्णन करता है जो इस समस्या के समस्त संभावित पहलुओं पर व्याप्त है। परमेश्वर क़ुर्आन करीम में फ़रमाता है -

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِي عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوفِ ۖ وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ ۗ وَاللَّهُ عَزِيزٌ حَكِيمٌ

(सूरह अलबक़रह आयत - 229)

अनुवाद - *और उन (स्त्रियों) का नियमानुसार (पुरुषों पर) इतना ही अधिकार है जितना (पुरुषों का) उन पर है। हालांकि पुरुषों को उन पर एक प्रकार की श्रेष्ठता भी है। और परमेश्वर पूर्ण प्रभुत्व वाला (और) नीतिवान है।*

क़ुर्आन करीम एक अन्य आयत में फ़रमाता है :-

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّ بِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ؕ

(सूरह अन्निसा आयत - 35)

अनुवाद - *पुरुष स्त्रियों पर निगरान हैं। इस श्रेष्ठता के कारण जो परमेश्वर ने उनमें से कुछ को कुछ पर प्रदान की है और इस कारण भी कि वे अपनी धन-सम्पत्ति (उन पर) व्यय करते हैं।*

इस आयत में अरबी शब्द क़व्वाम (قَوَّامٌ) के अर्थ निरीक्षक के हैं जो अपने निरीक्षक के अधीन लोगों को सही मार्ग पर चलाने का उत्तरदायी हो, परन्तु पुरानी मानसिकता रखने वाले विद्वान क़व्वाम शब्द से यह परिणाम निकालते हैं तथा इस बात का दावा करते हैं कि पुरुषों को स्त्रियों पर श्रेष्ठता प्राप्त है, जबकि इस आयत में पुरुषों की केवल उस श्रेष्ठता का वर्णन है जो एक कमाने वाले को अपनी अभिभावक के अधीन सदस्य पर प्राप्त होती है। इस दृष्टि से एक निगरान और अभिभावक इस बात का उत्तरदायी है कि वह अपनी अभिभावकता के अधीन लोगों का उचित रूप में नैतिक प्रशिक्षण करे।

जहां तक मनुष्य के मूल अधिकारों का प्रश्न है, इस आयत में कदापि यह वर्णन नहीं किया गया कि स्त्रियां पुरुषों के बराबर नहीं हैं, न ही इसमें पुरुषों की स्त्रियों पर श्रेष्ठता का वर्णन है। यद्यपि आयत के अंतिम भाग में पुरुषों की उस श्रेष्ठता का वर्णन है जो निगरान होने के कारण उसे प्राप्त है। इस से यह बात स्पष्ट तौर पर सामने आ जाती है कि स्त्रियों और पुरुषों के मूल अधिकार बिलकुल समान हैं। इस दृष्टि से इस आयत में वर्णित अरबी अक्षर (و) का अनुवाद "इस वास्तविकता के बावजूद कि" अथवा "जबकि" होगा। इस परिप्रेक्ष्य में यही सही अनुवाद है।

बहु विवाह

पश्चिम में इस्लाम के विषय पर बात की जाए तो प्राय: यह प्रश्न किया जाता है कि क्या इस्लाम चार विवाह करने और एक समय में चार पत्नियां रखने की आज्ञा देता है। मुझे पाश्चात्य संसार में समारोहों में सम्मिलित होने और प्रकाण्ड विद्वानों से वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त होता रहता है। मुझे ऐसे अवसर बहुत कम स्मरण हैं जब इस प्रकार का प्रश्न न उठाया गया हो। अनेकों बार ऐसा हुआ कि कोई

न कोई महिला बड़ी खेदपूर्ण शैली में और बड़ी मासूमियत से यह प्रश्न दोहराया करती हैं कि क्या वास्तव में इस्लाम चार विवाहों की अनुमति देता है ? जहां तक इस प्रश्न के उत्तर का संबंध है तो यह कोई गुप्त बात नहीं और कदाचित इस्लाम का यही एक पहलू है जिससे पाश्चात्य लोगों की एक बड़ी भारी संख्या परिचित है। इस्लाम के जिस दूसरे पहलू से पश्चिम में लोग अवगत हैं वह उग्रवाद है। वास्तविकता यह है उग्रवाद का इस्लाम से दूर का भी संबंध नहीं है। (देखिए भाषणकर्ता की पुस्तक "मज़हब के नाम पर ख़ून")

उपरोक्त प्रश्न इस रंग में पूछा जाता है कि पुरुष और स्त्री के मध्य यह किस प्रकार की समानता है जिसे इस्लाम प्रस्तुत करता है कि पुरुष को चार पत्नियों की अनुमति है जबकि स्त्री केवल एक पति कर सकती है। मेरा विचार है कि इस्लाम के संबंध में ऐसे प्रश्न वह समस्त अच्छा प्रभाव समाप्त करने के लिए पूछे जाते हैं जो मैं उस समारोह में स्थापित करता हूं। तुलनात्मक रूप में अल्प परंपरागत सभाओं में जहां शिष्टता और शालीनता का अधिक ध्यान नहीं रखा जाता वहां यह प्रश्न जानकारी प्राप्त करने के स्थान पर उपहास का रूप धारण कर लेता है। बहुत समय पूर्व की बात है जब मैं लन्दन यूनीवर्सिटी के स्कूल आफ ओरियंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज़ (School of Oriental and African Studies) में पढ़ता था। वहां एक पाकिस्तानी छात्र का उसके अंग्रेज़ साथी ने यही प्रश्न पूछ-पूछ कर नाक में दम कर रखा था। वह हर बार एक ठट्ठा लगाकर यह प्रश्न पूछता था। मुझे स्मरण है जब एक बार उस पाकिस्तानी छात्र को बहुत ही परेशान किया गया तो अचानक उसने पलट कर उत्तर दिया कि तुम हमारी चार माताओं के होने पर आपत्ति करते हो जबकि तुम्हारे चार-चार बाप होते हैं। इस आशय को अदा करने के लिए उसने बड़ी बुद्धिमत्ता से Forefather का शब्द प्रयोग किया

अर्थात पूर्वज (बाप-दादा) बोलने में यह शब्द द्विअर्थी है, क्योंकि इससे अभिप्राय Four fathers अर्थात् चार बाप भी लिया जा सकता है। अत: इस प्रकार उसने अपने प्रतिद्वन्दी को ऐसा झटका दिया कि उस अंग्रेज़ की प्रत्यक्ष जीत हार में परिवर्तित हो गई।

प्रत्यक्षत: यह एक चुटकुला दिखाई देता है परन्तु ध्यान से देखा जाए तो मात्र चुटकुला ही नहीं अपितु कुछ वास्तविकताओं का भली भांति अनावरण भी करता है। यह चुटकुला एक खेदजनक सामाजिक परिस्थिति का द्योतक है। इसके द्वारा हम इस्लाम की विचार पद्धति तथा नवीन समाज की विचारधारा के मध्य तुलना कर सकते हैं। केवल निरुद्देश्य और आज़ाद छात्रों की सभाएं ही नहीं अपितु बड़े गंभीर स्वभाव और प्रतिष्ठित लोगों का भी यही आचरण है कि वे उपहास के साथ इस इस्लामी आदेश के संबंध में अपनी खिन्नता को प्रकट किया करते हैं और इसे कोई अशिष्टता और हृदय को कष्ट देने वाली बात नहीं समझते। कुछ ही समय पूर्व की बात है कि मुझे फ्रेंकफर्ट के एक सीनियर जज साहिब का एक पत्र प्राप्त हुआ। मैं उन्हें व्यक्तिगत तौर पर जानता हूं। बहुत दक्ष, खुले मस्तिष्क के मालिक सभ्य और प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। उन्होंने अपने पत्र में इस्लाम की बहु विवाह की सीमित अनुमति पर आपत्ति जताई और वह भी अपनी बात को एक असभ्य मनोविनोद के माध्यम से स्पष्ट करने की इच्छा को दबा नहीं सके या संभव है कि यह मात्र मेरा विचार हो। बहरहाल एक पल के लिए मुझे विचार आया कि मैं भी उन के मनोविनोद का उत्तर forefathers वाले चुटकुले के साथ दूं परन्तु परमेश्वर का आभार कि उचित निर्णय की सामर्थ्य प्राप्त हुई और मैंने ऐसा नहीं किया। जो संक्षिप्त उत्तर मैंने उन्हें प्रेषित किया वह यह था कि प्रथम तो इस्लाम में एक से अधिक विवाह करने की यह अनुमति सामान्य नहीं है, अपितु कुछ विशेष अवस्थाओं से संबंध रखती है। जब समाज का स्वास्थ्य और स्त्रियों के अधिकार हर दो की सुरक्षा

के लिए इस अनुमति का प्रयोग आवश्यक हो जाए। द्वितीय – यह कि क़ुर्आन करीम एक दर्शन और तर्कशास्त्रीय पुस्तक है। यह हो नहीं सकता कि यह मुसलमानों को किसी ऐसी बात पर आचरण करने का निर्देश करे जिस पर आचरण असंभव हो। परमेश्वर ने पुरुषों और स्त्रियों को न्यूनाधिक समान संख्या में पैदा किया है। अतः कैसे संभव है कि इस्लाम जैसा तर्कपूर्ण धर्म जो बार-बार इस बात पर बल देता है कि परमेश्वर के कथन और उसके कर्म में कोई विरोधाभास नहीं है एक ऐसी शिक्षा दे जो स्पष्ट तौर पर अस्वाभाविक और अवास्तविक हो। एक ऐसी शिक्षा जिस पर यदि आचरण का प्रयत्न किया जाए तो संतुलन ख़तरनाक सीमा तक बिगड़ जाएगा और ऐसी कठिनाइयां और निराशाएं जन्म लेंगी जिनका कोई समाधान नहीं होगा। एक ऐसे छोटे से देश की कल्पना करें जिसमें विवाह योग्य पुरुषों की संख्या दस लाख है और न्यूनाधिक इतनी ही स्त्रियां हैं जो विवाह योग्य हैं। यदि बहुविवाह की इस अनुमति को ऐसा आदेश समझा जाए जिस पर अक्षरशः आचरण करना आवश्यक हो तो केवल दो लाख पचास हज़ार पुरुष दस लाख स्त्रियों से विवाह कर लेंगे और सात लाख पचास हज़ार पुरुष बिना विवाह के रह जाएंगे जबकि विश्व के समस्त धर्मों से अधिक इस्लाम समस्त पुरुषों और स्त्रियों पर ज़ोर देता है कि वे विवाह करें। क़ुर्आन करीम के अनुसार पति-पत्नी का संबंध प्रेम की स्वाभाविक भावना पर आधारित होता है और दोनों के लिए संतुष्टि और आराम का सामान उपलब्ध करता है। फ़रमाया -

وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الْمُؤْمِنٰتِ وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ اِذَاۤ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ وَلَا مُتَّخِذِيْۤ اَخْدَانٍ ؕ

(सूरह अलमाइदह - 6)

अनुवाद - *और सतीत्व धारण करने वाली मोमिन स्त्रियां और उन लोगों में से सतीत्व धारण करने वाली स्त्रियां भी जिनको तुम से पूर्व किताब दी गई तुम्हारे लिए वैध हैं जबकि तुम उन्हें निकाह में लाते हुए उन के महर का हक़ अदा करो न कि दुराचार करते हुए और न ही गुप्त मित्र बनाते हुए।*

इसके साथ-साथ क़ुर्आन करीम सन्यास-जीवन व्यतीत करने की विचारधारा का खण्डन करता है तथा उस मनुष्यों का स्वयंनिर्मित नियम या रिवाज ठहराता है (उदाहरण के तौर पर देखिए सूरह अलहदीद, आयत-28) संसार से स्वयं को पृथक कर लेने से कुछ भी तो प्राप्त नहीं हो सकता। न ही स्वाभाविक इच्छाओं का इन्कार करके स्वयं को दण्ड देने का कोई लाभप्रद परिणाम निकल सकता है।

वास्तव में इस्लाम की वैवाहिक व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ नींवों पर खड़ी की गई है। समय की कमी के कारण यह संभव नहीं कि मूल विषय से हट कर इन समस्याओं पर बात की जाए कि जीवन साथी के चयन से संबंधित इस्लामी मांगें क्या हैं और अन्य संबंधित बातें उदाहरणतया तलाक़ के नियम क्या हैं और ऐसी समस्याओं का इस्लाम क्या समाधान प्रस्तुत करता है ?

अब हम बहुविवाह के विषय की ओर वापस आते हैं। क़ुर्आन करीम के अध्ययन से यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि बहु विवाह से संबंधित आयतों के परिदृश्य में युद्ध के समयोपरान्त की विशिष्ट परिस्थितियों का वर्णन हो रहा है। युद्ध के पश्चात बहुत से अनाथ बच्चे और जवान विधवाएं शेष रह जाती हैं। पुरुषों और स्त्रियों की जनसंख्या का अनुपात बिगड़ जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात जर्मनी भी एक ऐसी ही परिस्थिति से दोचार था जिसके परिणामस्वरूप पैदा होने वाली कठिनाइयों का कोई समाधान दिखाई नहीं देता। जीवन पर्यन्त

एक समय में एक ही विवाह करने की ईसाइयत की कठोर शिक्षा इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करने से असमर्थ थी। जर्मनी में चूंकि इस्लाम बहुसंख्यक का धर्म नहीं था, इसलिए वहां के निवासियों को आबादी के असंतुलन के दुष्परिणाम भुगतने पड़े। बहुत बड़ी संख्या में कुंवारी लड़कियां और जवान विधवा स्त्रियां ऐसी थीं कि निराशाएं जिनका भाग्य बन गईं। विवाह उनके लिए एक ऐसा स्वप्न बन कर रह गया जिसकी ताबीर ढूंढने से भी नहीं मिलती थी।

यूरोप महाद्वीप में इतने विशाल स्तर पर केवल जर्मनी ही इन ख़तरनाक सामाजिक समस्याओं से दो चार नहीं हुआ अपितु युद्ध के पश्चात आने वाला नैतिक पतन और अनैतिक यौनाचार की बाढ़ सारे पश्चिमी समाज को बहा कर ले गई। इन बुराइयों के फैलने का कारण पुरुषों और स्त्रियों की आबादी का असंतुलन भी था। प्रत्येक निष्पक्ष व्यक्ति सरलतापूर्वक समझ सकता है कि ऐसी समस्त समस्याओं का समाधान यही है कि पुरुषों को एक से अधिक विवाह करने की अनुमति दी जाए। यह समाधान पुरुषों की काम इच्छाओं की संतुष्टि के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है अपितु स्त्रियों की एक बड़ी संख्या की स्वाभाविक मानवीय मांगों को पूरा करना ही उसका मूल उद्देश्य है। यदि इस नितान्त तर्कसंगत और सत्यप्रिय समाधान का खंडन कर दिया जाए तो फिर समाज के लिए यही एक विकल्प रह जाता है कि वह तेज़ी से बिगाड़ और पथभ्रष्टता का शिकार हो जाए और अपमान के रसातल में गिरता चला जाए। खेद कि पश्चिम यही मार्ग धारण कर चुका है।

यदि आप अधिक सत्यप्रियता से और भावुक न होकर एक बार पुनः इन दो मार्गों का निरीक्षण करें तो निश्चित ही यह सत्य खुल कर सामने आ जाएगा कि बहु विवाह पुरुष और स्त्रियों में समानता की

समस्या नहीं है अपितु यह तो एक भारी दायित्व उठाने या न उठाने का प्रश्न है। स्मरण रहे कि इस्लाम एक से अधिक विवाह करने की अनुमति केवल इस शर्त पर देता है कि पुरुष पूर्ण दायित्व के साथ यह कठिन चुनौती स्वीकार करे कि वह दूसरी, तीसरी या चौथी पत्नी के साथ पूर्ण न्याय से काम लेगा और समान व्यवहार करेगा। क़ुर्आन करीम इस के बारे में फ़रमाता है -

وَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تُقْسِطُوْا فِی الْیَتٰمٰی فَانْکِحُوْا مَا طَابَ لَکُمْ مِّنَ
النِّسَآءِ مَثْنٰی وَ ثُلٰثَ وَ رُبٰعَ ۚ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا تَعْدِلُوْا فَوَاحِدَةً اَوْ مَا
مَلَکَتْ اَیْمَانُکُمْ ؕ ذٰلِکَ اَدْنٰۤی اَلَّا تَعُوْلُوْا ۝

(सूरह अन्निसा-4)

अनुवाद - *और यदि तुम भय करो कि तुम अनाथों के बारे में न्याय नहीं कर सकोगे तो स्त्रियों में से जो तुम्हें पसन्द आएं उन से निकाह करो। दो-दो, और तीन-तीन और चार-चार। परन्तु यदि तुम्हें भय हो कि तुम न्याय नहीं कर सकोगे तो फिर केवल एक (पर्याप्त है) या वे जिनके तुम्हारे दाहिने हाथ मालिक हुए। यह (ढंग इस बात के) बहुत निकट है कि तुम अन्याय करने वाले हो जाओ।*

बहु विवाह के मुकाबले पर एक ही मार्ग रह जाता है जो इतना घृणित और घिनौना है कि उसकी कल्पना से ही रोंगटे खड़े होने लगते हैं। एक ऐसे समाज में जिस पर धर्म का गहरा प्रभाव न हो वहां तो परिस्थिति और भी गंभीर हो जाती है। अविवाहित स्त्रियों की एक बहुत बड़ी संख्या को आप किस मुख से आपत्ति का पात्र ठहरा सकेंगे जब वे पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करेंगी। स्त्रियां भी तो आख़िर इन्सान हैं, उनकी भी भावनाएं हैं, उनकी भी इच्छाएं हैं जो अतृप्त रह गई हैं विशेषकर युद्ध के परिणामस्वरूप होने वाले गहरे

मानसिक एवं भावनात्मक आघातों के कारण किसी जीवन-साथी के सहारे की आवश्यकता तो और भी बढ़ जाती है। इन परिस्थितियों में विवाह से प्राप्त होने वाले घर और सुरक्षा के बिना जीवन बिलकुल वीरान होकर रह जाता है। जीवन का कोई साथी न हो और न ही संतान की कोई आशा हो तो ऐसे लोगों का भविष्य भी उनकी दशा की तरह एक अंधकारमय शून्य बन कर रह जाता है।

यदि एकान्त की मारी हुई ऐसी स्त्रियां कुछ क़ुर्बानी करके तथा "कुछ लो कुछ दो" के सिद्धान्त पर आचरण करते हुए वैध और कानूनी तौर पर घर नहीं बसा सकतीं और सामाजिक व्यवस्था का अंग नहीं बन सकतीं तो वह परिस्थिति भी समाज के अमन के लिए अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध होगी। ऐसी स्त्रियां किसी न किसी उपाय से विवाहित स्त्रियों के पतियों के साथ अवैध संबंध स्थापित करेंगी और उसका परिणाम निश्चित रूप से बहुत बुरा होगा। विवाहित स्त्रियों का अपने पतियों पर से विश्वास उठ जाएगा, सन्देह और शंकाएं जन्म लेंगी, पति-पत्नी के पारस्परिक विश्वास में कमी के कारण कई घरों की नींवें लड़खड़ा जाएंगी। बेवफा पुरुष जब एक अपराध की अनुभूति के साथ जीवन व्यतीत करेंगे तो इससे अतिरिक्त मानसिक जटिलताएं पैदा होंगी और अपराध-प्रवृत्ति बढ़ेगी। सबसे बढ़कर यह कि प्रेम और वफ़ा के कोमल शीशे चकनाचूर हो जाएंगे, प्रेम का सौन्दर्य मिट जाएगा, सच्ची भावनाएं समाप्त हो जाएंगी तथा निम्नकोटि की भावनाओं की सामयिक उत्तेजनाएं शेष रह जाएंगी।

जो लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष और स्त्री के मध्य समानता की बात करते हैं वे यह भूल जाते हैं कि जहां पुरुष और स्त्री जन्मजात तौर पर भिन्न हैं वहां उनमें समानता का प्रश्न ही निरर्थक है। उदाहरणतया बच्चे पैदा करने का काम केवल स्त्री ही कर सकती

है। नौ माह से अधिक समय तक मानवीय नस्ल के बीज को केवल स्त्री ही अपने पेट में रख कर उसका पोषण कर सकती है। स्त्री ही है जो दूध पिलाने और बचपन के प्रारंभिक समय में अपने बच्चों की देखभाल का कर्त्तव्य निभा सकती है जब कि कोई पुरुष यह काम नहीं कर सकता। ये स्त्रियां ही हैं जो अत्यन्त निकटतम रक्त संबंध (Blood Relation) होने के कारण अपने बच्चों के साथ पुरुषों की तुलना में कहीं अधिक गहरे और सुदृढ़ मानसिक संबंध को दृढ़ करती हैं।

यदि कोई सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था स्त्री और पुरुष के बीच इस सृष्टिगत अन्तर को दृष्टिगत नहीं रखती तथा इस अन्तर के कारण समाज में स्त्री और पुरुष के अपने-अपने विशिष्ट आचरण की अवहेलना करती है तो ऐसी व्यवस्था एक स्वस्थ सामाजिक एवं आर्थिक संतुलन के पैदा करने में अनिवार्य रूप से असफल हो जाएगी। स्त्री और पुरुष की शारीरिक रचना में अन्तर ही वह आधार है जिसके परिणामस्वरूप इस्लाम ने दोनों के लिए उन की स्थिति के अनुसार पृथक-पृथक कार्य-क्षेत्र निर्धारित किए हैं। इस्लाम की सामाजिक व्यवस्थानुसार स्त्री को खानदान के लिए आजीविका कमाने के दायित्व से जहां तक संभव है आज़ाद रखा जाना चाहिए। सैद्धान्तिक तौर पर यह दायित्व पुरुषों पर आता है, परन्तु यदि स्त्रियों को अपने घरेलू दायित्वों को पूरा करने के पश्चात समय हो तो कोई कारण नहीं कि उन्हें आर्थिक उन्नति की प्रक्रिया में भाग लेने से रोका जाए। शर्त केवल यही है कि उनके मूल कर्त्तव्यों की अवहेलना न हो। इस्लाम की यही शिक्षा है।

फिर हम देखते हैं कि सामान्यतः स्त्रियां शारीरिक रचना की दृष्टि से पुरुषों की तुलना में कमज़ोर होती हैं। परमेश्वर ने आश्चर्यजनक

तौर पर स्त्रियों को कुछ दृष्टि से बहुत सुदृढ़ शक्तियां भी प्रदान की हैं। इसका मूल कारण यह है कि उनके ऊत्तकों में आधा क्रोमोसोम अधिक होता है। यह वह आधा अतिरिक्त क्रोमोसोम है जो पुरुषों और स्त्रियों के बीच पाए जाने वाले अन्तर का उत्तरदायी है और यह उन्हें इसीलिए दिया गया है कि वे उस महान दायित्व को उठा सकें जो गर्भ, प्रसव और दूध पिलाने के दिनों में उन्हें अदा करना होता है। इस योग्यता के बावजूद स्त्री प्रत्यक्षतः शारीरिक दृष्टि से दृढ़ और कठोर परिश्रमी नहीं होती। अतः समानता के नाम पर या किसी अन्य बहाने से स्त्रियों पर जीविका के वे कार्य नहीं डालने चाहिएं जिनमें मर्दाना पराक्रम तथा परिश्रम की आवश्यकता होती है। स्त्री की कोमलता इस बात की भी मांग करती है कि उसके साथ अधिक नर्मी और उदारता का व्यवहार रखा जाए। दैनिक जीवन में स्त्रियों को कदापि विवश नहीं करना चाहिए कि वे पुरुषों के बराबर भार उठाएं अस्तु उनका भार पुरुषों की तुलना में हल्का होना चाहिए।

उपरोक्त बहस से यह परिणाम निकलता है कि यदि घरेलू कार्यों का विशिष्ट दायित्व स्त्री या पुरुष में से किसी एक के सुपुर्द करने का प्रश्न हो तो निश्चित रूप से स्त्री पुरुष की तुलना में इसकी कहीं अधिक पात्र है। इसके अतिरिक्त स्वाभाविक तौर पर भी स्त्री पर बच्चों की देखभाल का दायित्व डाला गया है। ये ऐसे दायित्व हैं जिनमें पुरुष मात्र आंशिक तौर पर ही स्त्री के साथ भागीदार हो सकता है।

स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वे पुरुषों की तुलना में अपना अधिकांश समय घरों में गुज़ार सकें परन्तु जब उन्हें आजीविका कमाने के दायित्व से आज़ाद रखा जाता है तो उन्हें चाहिए कि वे अनिवार्य रूप से अपने खाली समय को अपनी और समाज की भलाई और कल्याण के लिए खर्च करें। स्त्रियों के संबंध में इस्लाम

की शिक्षा यही है। इसी कारण यह विचार पैदा होता है कि स्त्री का वास्तविक स्थान उसका घर है। इससे यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि स्त्रियां हमेशा रसोई या घर की चार दीवारी के अन्दर ही बंदी रहें। इस्लाम किसी भी प्रकार से स्त्रियों को इस अधिकार से वंचित नहीं करता कि वे अपने खाली समय में किसी कार्य को पूर्ण करने के लिए घरों से बाहर जाएं या वे अपनी पसन्द के किसी स्वस्थ कार्य में भाग लें परन्तु शर्त केवल यह है कि स्त्रियों की इन तत्परताओं के कारण उनके मूल कर्त्तव्यों की अदायगी अर्थात भावी नस्ल की देखभाल प्रभावित न हो और उनकी ये अतिरिक्त व्यस्तताएं भावी नस्लों के हित की सुरक्षा और उनके अधिकारों की अदायगी में बाधक न हों। अतः अन्य कारणों के अतिरिक्त इस कारण भी इस्लाम स्त्रियों की सीमा से बढ़कर सामाजिक तत्परताओं में भागीदारी और पुरुषों के साथ स्वतंत्र रूप में मेलजोल को बड़ी कठोरता के साथ निरुत्साहित करता है। इस्लामी दृष्टिकोण यह है कि स्त्री की तत्परताओं का मुख्य केन्द्र उसका घर होना चाहिए। आधुनिक युग की बहुत सी बुराइयों का यह एक नितान्त बुद्धिमत्तापूर्ण औ व्यावहारिक समाधान है। यदि घर स्त्री की दिलचस्पी का केन्द्र न रहे तो बच्चों की अवहेलना हो जाती है और घरेलू जीवन तबाह-व-बरबाद हो जाता है।

एक ऐसे घर का निर्माण जहां माता को केन्द्रीय हैसियत प्राप्त हो अन्य खूनी रिश्तों की दृढ़ता की मांग करती है। इसके लिए अपने प्रियजनों तथा परिजनों के साथ एक सच्चा और निष्कपट संबंध स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। यद्यपि प्रत्येक पारिवारिक सदस्य अलग-अलग रह सकता है परन्तु इस्लाम एक विशालतम ख़ानदान की विचारधारा को स्थापित करता है और उसे बढ़ावा देता है। इसके कई कारण हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं -

(1) विशालतम ख़ानदान की विचारधारा सामाजिक असंतुलन को रोकती है।

(2) माता-पिता, बेटे-बेटियों और बहन-भाइयों इत्यादि के मध्य प्रेम का दृढ़ संबंध एक स्वस्थ घर की रक्षा करता है। घर के सदस्यों की यह स्वाभाविक निकटता दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-चाची, फूफा-फूफी, भांजियों-भतीजियों, रिश्तें के भाई-बहनों और पोते-पोतियों आदि के साथ एक निष्कपट सच्चे और निकट संबंध के कारण और दृढ़ हो जाएगी। यह चेतना कि हम किसी के हैं और कोई हमारा है प्रेम और प्रसन्नता के नए-नए मार्गों की खोज करती रहती है और इस प्रकार एक विशालतम ख़ानदानी व्यवस्था स्थापित होती चली जाती है।

(3) इस प्रकार की विशालतम खानदानी व्यवस्था से सम्बद्ध घरों के टूटने और बिखरने की संभावना कम हो जाती है। आधुनिक समाज में सामान्यतया लोग घर के नाम पर एक छत के नीचे रहकर जीवन के दिन पूरे कर रहे हैं परन्तु यदि प्रेम और अनुराग के विशाल संबंध स्थापित हो जाएं तो यह दृश्य परिवर्तित हो जाता है। खानदान के बुज़ुर्गों को एक केन्द्रीय स्थान प्राप्त होता है उनका अस्तित्व खानदान की अधिकांश तत्परताओं की धुरी बन जाती है। वे एक दीपक के समान होते हैं जिनकी ओर सब परवाने की भांति खिंचे चले आते हैं। प्यार और मुहब्बत के ये गहरे रिश्ते जीवित रहें तो एकान्त के मारे हुए ऐसे आर्थिक दुर्दशा के शिकार लोग पैदा नहीं होते। जिन्हें लोग भुला चुके हों और समाज में उनका कोई स्तर शेष न रहा हो यहां तक कि स्वयं उनके घर वालों ने उन्हें बेकार और निकम्मा समझ कर उनसे संबंध विच्छेद कर लिया हो।

ख़ानदान और घर के संबंध में इस्लाम की विचारधारा बिलकुल यही है। इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार घर सामाजिक जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण और मूल इकाई है। इसके विपरीत आधुनिक युग के नवीन समाजों में बहुत से वृद्ध या विकलांग माता-पिता को बोझ समझ कर फेंक दिया जाता है। इसका मूल कारण यही है कि आधुनिक युग में घर और खानदान की विचारधारा इस्लाम द्वारा दी गई विचारधारा से बहुत भिन्न है।

वृद्धों की देखभाल

वर्तमान युग में समाज के वृद्ध लोगों की देखभाल का दायित्व शनैः शनैः सरकार के सर डाला जा रहा है। वास्तविकता यह है कि सरकार इन लोगों पर जितना भी खर्च करने पर तत्पर हो वह उन्हें वास्तविक सन्तोष और सन्तुष्टि उपलब्ध नहीं कर सकती। उन का दुःख तो यह है कि उनके अपने प्रियजन उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। वे जीवन के ऐसे मरुस्थल में जहां न पानी है न पेड़, मित्र एवं मददगारविहीन छोड़ दिए गए हैं। एकान्त की बढ़ती हुई पीड़ा उन्हें अन्दर ही अन्दर खाए जा रही है। ये दुःख ऐसे हैं जिनका उपचार अधिकांश लोगों के वश की बात ही नहीं। जब निकटतम संबंधी इन कमज़ोर लोगों को भूल जाएं तो यह बिलकुल असंभव है कि दूर के संबंधी सहायता के लिए आगे आएंगे। ऐसे समाजों में वृद्ध लोगों के लिए अलग घरों की आवश्यकता शनैः शनैः बढ़ती ही चली जा रही है और सरकार के लिए सदैव यह संभव नहीं होता कि वह अपने बजट में उनके लिए इतनी राशि आरक्षित कर सके जिस से एक शिष्टतापूर्ण जीवन की कम से कम आवश्यकताएं ही पूरी की जा सकें। दूसरे यह कि उनकी असल पीड़ा शारीरिक नहीं अपितु मानसिक है। शारीरिक रोगों का उपचार

गंभीर मानसिक समस्याओं की तुलना में बहुत आसान होता है और यही मानसिक पीड़ा और आध्यात्मिक कष्ट हैं जिनमें आज बहुत बड़ी संख्या में वृद्ध लोग ग्रस्त हैं।

मुस्लिम बाहुल्य देशों में भी यद्यपि नैतिक मूल्य अवनति पर हैं परन्तु जो वस्तु स्थिति आज शेष विश्व के सामने है वह अविश्वसनीय है मुसलमान देशों में आज भी वृद्ध लोगों के साथ ऐसा अनुदार और अपमानपूर्ण व्यवहार रखना एक लज्जनीय और अपमाननीय बात समझी जाती है। अधिकतर मुसलमानों के निकट यह एक लज्जाजनक बात है कि अपने बूढ़े रिश्तेदारों की ज़िम्मेदारी सरकार पर डाल दी जाए चाहे सरकार उनकी देखभाल करने के लिए प्रसन्नतापूर्वक तैयार भी हो।

इस दृष्टि से एक मुसलमान स्त्री का घरेलू भूमिका बच्चों के व्यस्क हो जाने के पश्चात समाप्त नहीं हो जाती। अपने खानदान के अतीत से एक स्थायी संबंध के साथ-साथ वह भविष्य के साथ भी अपना गहरा संबंध बनाए रखती है। यह स्त्री की सहानुभूति एवं दया की भावना तथा मुहताजों का ध्यान रखने की स्वाभाविक योग्यता ही है जो समाज के वृद्ध लोगों के लिए सहारा बन जाती है। स्त्री के ध्यान रखने से ही वृद्ध लोगों को पहले जैसा महत्त्व और पूर्ववत सम्मान प्राप्त रहता है और वे अपनी वृद्धावस्था में भी खानदान का एक अनिवार्य अंग समझे जाते हैं। मां उन बुज़ुर्गों की देखभाल में बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है। वह उनके पास बैठती है ताकि उन्हें अकेलेपन का अहसास न हो। इस कर्त्तव्य को वह एक कठिनाई और चट्टी नहीं समझती अपितु उसमें मानवीय संबंधों का एक स्वाभाविक जीवित और जोशपूर्ण प्रकटन पाया जाता है और फिर समय आने पर वह स्वयं इस विश्वास के साथ बुढ़ापे की दहलीज़ पर कदम रखती है कि समाज

उसे कभी धक्का नहीं देगा। वह यह सन्तोष रखती है कि उसे बीते समय की व्यर्थ निशानी समझ कर बेसहारा नहीं छोड़ दिया जाएगा। नि:सन्देह इक्का-दुक्का अपवाद स्वरूप उदाहरण तो हर समाज में दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे मुसलमान समाजों में माता-पिता को बेसहारा छोड़ देने की घटनाएं दुर्लभ की श्रेणी में आती हैं तथा अन्य समाजों के विपरीत बूढ़ों के अलग घर भी तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम संख्या में दिखाई देते हैं।

यहां मुझे एक चुटकुला याद आ रहा है जिसे सुनकर कदाचित कुछ लोग तो हंस पड़ें परन्तु संभव है कि कुछ लोगों को यह चुटकुला रुला भी दे। हुआ यह कि एक बच्चे को यह देखकर कि उसका पिता उसके बूढ़े दादा के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था, बहुत दुख महसूस होता था। दादा के साथ यह दुर्व्यवहार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। शनै: शनै: उसे एक अच्छे और आरामदायक बैडरूम से निकाल कर एक तंग और आराम रहित कमरे में स्थानांतरित कर दिया गया। एक बार असाधारण तौर पर कड़ाके की सर्दी पड़ी तो बूढ़े दादा ने शिकायत की कि मेरा कमरा बहुत ही ठंडा है और लिहाफ इतना हल्का है कि रात भर सर्दी से ठिठुरता रहता हूं तथा आराम से सो नहीं सकता। बच्चे का पिता यह सुनकर फटे-पुराने बेकार पड़े हुए कपड़ों में से कोई फालतू कम्बल खोजने लगा। यह दृश्य देखकर बच्चे ने अपने पिता से कहा कि पापा यह सारे ही फटे-पुराने कपड़े दादा को न दें, कुछ इनमें से मेरे लिए भी रहने दें ताकि जब आप बूढ़े हो जाएं तो मैं ये कपड़े आप को दे सकूं। बच्चे के इस मासूम अप्रसन्नतायुक्त प्रकटन में वर्तमान युग के वृद्ध लोगों के सारे दुख समाए हुए हैं।

जहां एक मुसलमान समाज में वृद्ध बुज़ुर्गों के साथ दुर्व्यवहार के

उदाहरण अपवाद का आदेश रखते हैं वहां नवीन समाजों में वृद्धों के साथ उनके परिजनों की ओर से सद्‌व्यवहार के उदाहरण भी दुर्लभ की श्रेणी में आते हैं और संख्या में घटते चले जा रहे हैं। क़ुर्आन करीम ने तो मुसलमानों को यह शिक्षा दी है कि -

وَقَضٰی رَبُّكَ اَلَّا تَعْبُدُوْٓا اِلَّآ اِيَّاهُ وَبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ؕ اِمَّا يَبْلُغَنَّ عِنْدَكَ الْكِبَرَ اَحَدُهُمَآ اَوْ كِلٰهُمَا فَلَا تَقُلْ لَّهُمَآ اُفٍّ وَّلَا تَنْهَرْهُمَا وَقُلْ لَّهُمَا قَوْلًا كَرِيْمًا ○ وَاخْفِضْ لَهُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ الرَّحْمَةِ وَقُلْ رَّبِّ ارْحَمْهُمَا كَمَا رَبَّيٰنِيْ صَغِيْرًا ○ؕ

(सूरह बनी इस्राईल - 24, 25)

अनुवाद - *और तेरे रब्ब ने फैसला जारी कर दिया है कि तुम उस के अतिरिक्त किसी की उपासना न करो और माता-पिता से अच्छा व्यवहार करो। यदि उन दोनों में से कोई एक तेरे पास बुढ़ापे की आयु को पहुंचे या वे दोनों ही, तो उन्हें उफ़ तक न कह और उन्हें डांट-डपट न कर तथा उन्हें नर्मी और सम्मान के साथ सम्बोधन कर और उन दोनों के लिए दया से विनम्रता का आचरण कर और (उनके लिए दुआ करते हुए) कह कि हे मेरे रब्ब ! इन दोनों पर दया कर जिस प्रकार इन दोनों ने बचपन में मेरा पालन-पोषण किया था।*

बहस के अन्तर्गत विषय पर इन आयतों का महत्त्व स्पष्ट है। इनमें यह शिक्षा दी गई है कि मानव-जाति को चाहिए कि एकेश्वरवाद के पश्चात अपने वृद्ध माता-पिता से प्रेम और मुहब्बत एवं सद्‌व्यवहार को शेष सब बातों पर प्राथमिकता दिया करें। यह बुज़ुर्ग अपनी आयु के एक कठिन दौर से गुज़र रहे हैं। इस आयु में प्राय: उन का आचरण

बड़ा धैर्य की परीक्षा वाला और अप्रिय हो सकता है। ऐसी अवस्था में ये आयतें हमें आदेश देती हैं कि उनके विरुद्ध मामूली सी नफ़रत का प्रकटन नहीं होना चाहिए और न ही खिन्नता का कोई वाक्य मुख से निकलना चाहिए। माता-पिता की इन अप्रिय बातों के बावजूद उनके साथ नितान्त आदर और सम्मान से व्यवहार करना चाहिए।

आने वाली पीढ़ियों का जाने वाली पीढ़ियों के साथ आदर एवं सम्मान का एक जीवित और दृढ़ संबंध होना चाहिए। इस पर बल भी इसीलिए दिया गया है ताकि दोनों पीढ़ियों के मध्य किसी प्रकार की दूरी पैदा न होने पाए अन्यथा पुरानी पीढ़ी जिन महान नैतिक आदर्शों पर स्थापित थी वह नई पीढ़ी में कभी भी पूरी तरह स्थानांतरित नहीं हो सकते। इसलिए इस्लाम की सामाजिक शिक्षा और उस की दार्शनिकता यह है कि कोई पीढ़ी भी अपने से पहली और बाद में आने वाली पीढ़ी के मध्य किसी प्रकार की दूरी पैदा न होने दे। जैसे इस्लामी शिक्षानुसार जेनरेशन गैप (Generation Gap) की कदापि कोई गुंजाइश नहीं है।

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है - इस्लाम में खानदान की कल्पना केवल एक घर के सदस्यों तक सीमित नहीं है। निम्नलिखित आयत में मुसलमानों को यह शिक्षा दी गई है कि वे केवल अपने माता-पिता पर खर्च करें अपितु उन परिजनों और प्रियजनों पर भी ख़र्च करें जो माता-पिता के पश्चात अधिक निकट हैं। यह खर्च इस रंग में होना चाहिए कि जिस से उन का आत्मसम्मान आहत न हो अपितु परस्पर प्रेम और मुहब्बत में उन्नति हो।

وَ اعْبُدُوا اللّٰهَ وَلَا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْـًٔا وَّ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا وَّ بِذِی
الْقُرْبٰی وَالْيَتٰمٰی وَالْمَسٰكِيْنِ وَالْجَارِ ذِی الْقُرْبٰی وَالْجَارِ الْجُنُبِ
وَالصَّاحِبِ بِالْجَنْۢبِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ۙ وَمَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا

يُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُوْرَا ۙ

(सूरह अन्निसा - 37)

अनुवाद - *और परमेश्वर की उपासना करो और किसी वस्तु को उसका भागीदार न ठहराओ और माता-पिता के साथ उपकार करो। और निकट संबंधियों से भी तथा अनाथों से भी और असहायों से भी तथा रिश्तेदारों पड़ोसियों से भी और ग़ैर रिश्तेदार पड़ोसियों से भी और अपने साथ बैठने वालों से भी तथा यात्रियों से भी और उन से भी जिनके तुम मालिक हो। निश्चय ही परमेश्वर उसे पसन्द नहीं करता जो अभिमानी (और) शेखी बघारने वाला हो।*

इस आयत से स्पष्ट है कि क़ुर्आन करीम माता-पिता के साथ सद्व्यवहार पर बल देता है। यदि वर्तमान युग का समाज क़ुर्आन करीम की इस शिक्षा से नसीहत प्राप्त कर ले तो आज की बहुत सी समस्याएं जो वास्तव में उन्नति प्राप्त समाज के चेहरे पर कुरूप दाग़ से कम नहीं समाप्त हो जाएंगी। वृद्ध लोगों के लिए अलग घरों की कोई आवश्यकता नहीं होगी सिवाए कुछ ऐसे दुर्भाग्यशाली वृद्धों के जिनकी देखभाल करने वाले उनके कोई निकटतम संबंधी मौजूद न हों। इस्लामी समाज में माता-पिता और बच्चों के मध्य परस्पर प्रेम-संबंध पर इतना और बार-बार बल दिया गया है कि यह संभव ही नहीं कि बच्चे अपने माता-पिता को बुढ़ापे में अपने भोग-विलास के कारण बेसहारा छोड़ दें।

भावी पीढ़ियां

जहां तक भावी पीढ़ियों का संबंध है इस बारे में इस्लाम ने एक अनुपम पद्धति में समाज के पथ-प्रदर्शन और प्रशिक्षण का प्रबंध किया है। इस्लाम यह शिक्षा देता है कि माता-पिता और बच्चों के मध्य

उत्तम संबंध के लिए पति-पत्नी के मध्य प्यार और मुहब्बत का एक आदर्श संबंध होना अत्यन्त आवश्यक है। इस दृष्टि से सूरह अन्निसा की आयत - 35 जिसमें पुरुष के 'क़व्वाम' अर्थात अभिभावक होने का वर्णन है। पति पर बहुत भारी दायित्व डालती है। यदि पति की कार्यपद्धति रुचिकर घरेलू जीवन के उन्नति के लिए अनुकूल नहीं और अनुकूल वातावरण पैदा नहीं करती तो इसका अर्थ यह होगा कि ऐसा पति निरीक्षक और अभिभावक अपने दायित्त्वों का निर्वाह करने में असफल रहा है। यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि क़व्वाम का उत्तम उदाहरण हमारे प्यारे स्वामी हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] का सम्पूर्ण विशेषताओं से सम्पन्न अस्तित्व है। आप[स.] अपने घर वालों के साथ किसी प्रकार की कोई कठोरता उचित नहीं समझते थे। आप की जीवन पद्धति न तो आदेशात्मक थी और न ही आप उन लोगों के समान थे जो सदैव अपनी ही बात मनवाते हैं। आपके प्रिय व्यक्तित्व में कोई ऐसा आडम्बर या कटुता का अंश तक न था जिस से लोगों के स्वभाव में कोई नफ़रत पैदा हो। घर वालों का प्रशिक्षण एक महान दायित्व था और आप[स.] ने यह दायित्व इस शानदार ढंग से पूरा किया जो आने वाले समस्त युगों के लिए एक नितान्त उच्च जीवित और चमकने वाला तथा अनुकरणीय उदाहरण है। उन सब लोगों को जो शब्द 'क़व्वाम' के वास्तविक अर्थ जानते हैं और समझना चाहते हैं उन्हें हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] के इस आदर्श पर विचार करना चाहिए। एक मशहूर हदीस में जो हज़रत अबू हुरैरा[रज़ि.] ने वर्णन की है। हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने फ़रमाया -

"मोमिनों में ईमान की दृष्टि से पूर्ण मोमिन वह है जिस के आचरण अच्छे हैं और तुम में आचरण की दृष्टि से उत्तम वह है जो अपनी पत्नियों से उत्तम व्यवहार करता है।"

यदि माता-पिता इस बात के अभिलाषी हैं कि उनके बच्चे बड़े होकर एक स्वस्थ समाज के सदस्य बनें तो उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि पति-पत्नी के पारस्परिक संबंध बच्चों के चरित्र को बनाने या बिगाड़ने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। क़ुर्आन करीम फ़रमाता है:-

وَالَّذِيْنَ لَا يَشْهَدُوْنَ الزُّوْرَ ۙ وَ اِذَا مَرُّوْا بِاللَّغْوِ مَرُّوْا كِرَامًا ○ وَالَّذِيْنَ اِذَا ذُكِّرُوْا بِاٰيٰتِ رَبِّهِمْ لَمْ يَخِرُّوْا عَلَيْهَا صُمًّا وَّ عُمْيَانًا ○ وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ وَّ اجْعَلْنَا لِلْمُتَّقِيْنَ اِمَامًا ○

(सूरह अलफ़ुरक़ान - 73 से 75)

अनुवाद - *और वे लोग जो झूठी साक्ष्य नहीं देते और जब वे अनर्गल बातों के पास से गुज़रते हैं तो मर्यादा के साथ (उनमें सम्मिलित हुए बिना) गुज़र जाते हैं, और वे लोग भी कि जब उन्हें उनके प्रतिपालक की आयतें स्मरण कराई जाती हैं तो वे उन पर बहरे और अन्धे होकर नहीं गिरते, और वे लोग जो यह कहते हैं कि हे हमारे रब्ब ! हमें अपने जीवन-साथियों और सन्तान से आंखों की शीतलता प्रदान कर और हमें संयमियों का इमाम बना दे।*

इन आयतों में जो दुआ सिखाई गई है वह अपने अन्दर एक अद्‌भुत मनोहरता रखती है और उसमें गहरी दार्शनिकताएं और नीतियां छिपी हुई हैं। इसमें पति-पत्नी दोनों को यह शिक्षा दी गई है कि वे परस्पर एक दूसरे के लिए और अपने बच्चों के लिए यह दुआ करते रहें कि परमेश्वर हमेशा उन्हें एक दूसरे की ओर से और बच्चों की ओर से सन्तोष और प्रफुल्लता की ने'मतों से सम्मानित करे और उनकी सन्तान परमेश्वर का भय रखने वाली और संयमी नस्लों की प्रमुख

और पेशवा हो। एक व्यक्ति को इस आयत के महत्त्व का पूर्णरूप से अनुमान तभी हो सकता है जब वह इस शिक्षा पर स्वयं कार्यरत हो। किसी वस्तु के लिए एक काल्पनिक सी इच्छा आप के चरित्र पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल सकती परन्तु जब आप एकाग्रचित्त होकर अपनी इच्छापूर्ति के लिए दुआ करते हैं तो उस दुआ का प्रभाव अनिवार्य रूप से आपके चरित्र और कार्य-पद्धति पर पड़ता है। उदाहरण के तौर पर हम में से बहुत से हैं जो सदैव सत्य बोलना चाहते हैं परन्तु उनकी यह इच्छा कभी-कभी ही आचरण का रूप धारण करती है परन्तु जो लोग पूरी निष्कपटता और सच्चे हृदय से परमेश्वर से दुआ मांगते हैं कि वह उन्हें एक सच्चा मनुष्य बना दे। उनकी दुआएं उनके चरित्र पर उन लोगों की तुलना में कहीं अधिक प्रभाव डालती हैं जो सच्चा मनुष्य बनने की मात्र एक काल्पनिक सी इच्छा रखते हैं।

सच्चे हृदय से दुआ करने वाला अपने आचरण में सच्चाई पैदा करने का सच्चा प्रयास करता है। सन्तान के प्रशिक्षण की दुआ के पश्चात यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों के साथ ऐसा व्यवहार करेगा जो उस दुआ के साथ अनुकूलता और अनुरूपता न रखता हो तो यह एक विचित्र अनोखी और समझ न आने वाली बात होगी।

क़ुर्आन करीम विशेष तौर पर युवा पीढ़ी के अधिकारों और उनके प्रशिक्षण से सम्बद्ध दायित्वों के प्रति सतर्क करते हुए फ़रमाता है -

يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا اتَّقُوا اللَّهَ وَلْتَنْظُرْ نَفْسٌ مَّا قَدَّمَتْ لِغَدٍ ۖ وَاتَّقُوا اللَّهَ ۚ إِنَّ اللَّهَ خَبِيرٌ بِمَا تَعْمَلُونَ ○

(सूरह अलहश्र - 19)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो ! परमेश्वर का*

संयम धारण करो और प्रत्येक व्यक्ति यह दृष्टिगत रखे कि वह कल के लिए क्या आगे भेज रहा है। तथा परमेश्वर का संयम धारण करो। निश्चय ही परमेश्वर उससे जो तुम करते हो सदैव अवगत रहता है।

इस आयत में माता-पिता को चेतावनी दी गई है कि यदि वे ऐसी सन्तान के प्रशिक्षण के बारे में डाले गए दायित्वों को पूर्ण करने में असफल रहेंगे और एक ऐसी पीढ़ी अपने पीछे छोड़ेंगे जिसका चरित्र निन्दनीय होगा तो वे उसके लिए परमेश्वर के समक्ष उत्तरदायी होंगे। इसी प्रकार माता-पिता को सावधान किया गया है कि वे अपनी सन्तान का वध न करें। इससे अभिप्राय यह है कि माता-पिता ही हैं जो सन्तान का सही प्रशिक्षण न करने के फलस्वरूप उन के आचरण को नष्ट करके मानो उनके वध का माध्यम बन जाते हैं, जिसके लिए वे परमेश्वर के समक्ष उत्तरदायी हैं।

(उदाहरण के लिए देखें सूरह अलअन्आम - 152)

हज़रत मुहम्मद रसूलुल्लाह[स.अ.व.] ने इस नसीहत पर बल दिया है कि न केवल अपने बच्चों से अपितु नई पीढ़ी के सब बच्चों और युवाओं से प्यार, मुहब्बत और सम्मान के साथ व्यवहार किया करें। आप[स.] ने फ़रमाया -

اَكْرِمُوْا اَوْلَادَكُمْ

(इब्ने माजा, किताबुल अदब, बाब बिर्रुल वालिद वल इहसान इलल बनात)

अर्थात अपनी सन्तान के साथ प्यार, मुहब्बत और सम्मान के साथ व्यवहार किया करो।

यही वह शिक्षा है जिस की वर्तमान संसार को आवश्यकता है। आज कल बर्तानिया में बड़ी गंभीरता से एक ऐसा कानून बनाने पर बहस की जा रही है जिसके अनुसार माता-पिता को अपने बच्चों के

अपराधों का अप्रत्यक्ष तौर पर उत्तरदायी ठहराया जा सकेगा और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाएगा जैसा अदालतें अवयस्क अपराधियों के साथ किया करती हैं। यह बात बड़ी गंभीरता से महसूस की जा रही है कि यदि माता-पिता अपने बच्चों के प्रशिक्षण का दायित्व अधिक गंभीरता से निभाते तो बर्तानिया के गली-कूचों में अपराधों की संख्या कम हो जाती, परन्तु प्रश्न यह है कि जब धर्म के प्रशिक्षित आचरण मस्तिष्कों में भली प्रकार से दृढ़ न हों तो केवल दण्ड देने से समाज की दशा कहां तक श्रेष्ठ बनाई जा सकती है।

निरुद्देश्य एवं निरर्थक कार्यों को प्रोत्साहन न देना

क़ुर्आन करीम सामाजिक सुधार के विषय को आगे बढ़ाते हुए फ़रमाता है:-

وَالَّذِيْنَ هُمْ عَنِ اللَّغْوِ مُعْرِضُوْنَ ○

(सूरह अलमोमिनून - 4)

अनुवाद - *और वे जो व्यर्थ बातों से मुख फेरने वाले हैं।*

इस आयत में परमेश्वर फ़रमाता है कि बुद्धिमान लोग अपनी शक्तियों और योग्यताओं को बेकार और निरर्थक कार्यों में नष्ट नहीं करते। हल्के-फुल्के मनोरंजन के लिए कुछ समय निकाल लेना कोई बुरी बात नहीं और न ही इस्लाम इस से रोकता है, परन्तु यदि इस प्रकार के मनोरंजन से समाज पर सामूहिक तौर पर बुरे प्रभाव पड़ते हों तो फिर निश्चित ही उसको प्रोत्साहन नहीं दिया जाएगा। मनोरंजन का उद्देश्य तो जीवन की व्यस्तताओं के कारण पैदा होने वाले मानसिक दबाव और परेशानियों में कमी करना है परन्तु यदि मनोरंजन स्वयं में एक उद्देश्य बन जाए तो क़ुर्आन करीम की परिभाषा में उसे लग़्व

(व्यर्थ) कहा जाएगा। जिसके अर्थ बेकार, व्यर्थ और निरुद्देश्य कार्य के हैं। जब मनोरंजन जीवन की मुख्य दिनचर्या में बाधक हो और उसके फलस्वरूप वह बहुमूल्य समय नष्ट हो जिसका कोई अन्य उचित उपयोग होना चाहिए था तो ऐसे मनोरंजन को भी अरबी शब्दकोश के अनुसार 'लग़्व' ही कहा जाएगा।

इस बात में कोई सन्देह नहीं कि टेलीविज़न के द्वारा बहुत से लाभ प्राप्त हुए हैं परन्तु सामान्यत: यह देखा जाता है कि बच्चे सारा दिन टेलीविज़न की स्क्रीन पर दृष्टि जमाए बैठे रहते हैं। लोग अपने काम से वापस घर लौटते हैं तो चाहे कैसा ही प्रोग्राम क्यों न दिखाया जा रहा हो टेलीविज़न के सामने डेरा डाल देते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा करते समय वे अपने उन दायित्वों से लापरवाह होते हैं जो उनकी पत्नी और बच्चों, मित्रों और सामूहिक तौर पर समस्त समाज की ओर से उन पर आते हैं। टीवी अपने अनुचित प्रयोग के कारण आधुनिक युग की एक ला'नत बन चुका है। टेलीविज़न देखने में इतना समय नष्ट कर दिया जाता है कि यह अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है कि उसकी हानियां अधिक हैं या लाभ ? बात यहीं पर समाप्त नहीं हो जाती टीवी पर दिखाए जाने वाले अपराधों को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है कि बच्चों के हृदयों में अपराध से घृणा के स्थान पर उसकी ओर प्रेरणा पैदा होने लगती है। विशेष तौर पर बच्चों के लिए बनाए गए प्रोग्रामों में बच्चों के मान्य और प्रिय चरित्र ऐसी-ऐसी चतुराइयां और अनुचित छेड़खानियां करते हुए दिखाए जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप घरों का अमन और शान्ति बरबाद होने लगते हैं। ये प्रोग्राम कितने ही मनोरंजक और मज़ेदार क्यों न हों नसीहत देने वाले कदापि नहीं होते। नि:सन्देह टेढ़े स्वभाव के कई बच्चे ऐसे ही प्रोग्रामों की पैदावार हैं और ऐसे बच्चों में अपराधी बनने की एक गुप्त इच्छा पहले ही करवटें ले रही होती है।

बड़ी आयु के लोगों के लिए भी जो टीवी प्रोग्राम बनाए जाते हैं उनमें भी अनजाने में अपराध के नए से नए उपाय सिखाए जाते हैं। एक ऐसा बेकार जीवन का चित्रण किया जाता है जो मात्र आराम की इच्छा और खेलकूद है और उसमें ऐसी रूप सज्जा की जाती है कि दर्शक समझता है कि जीवन हो तो ऐसा हो। खेद है कि दर्शकगण भूल जाते हैं कि कल्पना और वास्तविकता के मध्य कितनी दूरियां हैं और नहीं जानते कि स्वप्नों का संसार वास्तविक संसार से कितना भिन्न होता है।

कदाचित बहुत से लोगों को यह बोधभ्रम हो कि क़ुर्आन करीम ने बेकार कार्य-कलापों और व्यर्थ आनंदों के पीछे भागने से जो रोका है वह एक साधारण बात है परन्तु वास्तव में यह एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण आदेश है। टीवी और मनोरंजन के अन्य साधन एक ऐसे वातावरण के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं जिसमें निराशाएं और असफलताएं बढ़ती ही चली जाती हैं और मनुष्य आश्चर्य करता है कि इस अवनति की अन्तिम सीमा क्या होगी।

इच्छाओं पर नियंत्रण

क़ुर्आन करीम मनुष्य को अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण पाने की चेतावनी देता है। दूसरों को देखकर ईर्ष्या की अग्नि में जलना और हृदय में असंख्य निराशाएं पाल लेना इस्लामी शिक्षा की दृष्टि से अनुचित है। मनुष्य को आत्मसंयम सिखाने और इच्छाओं को सीमति करने के बारे में यह शिक्षा अपने अन्दर एक बहुत महत्त्वपूर्ण सन्देश रखती है। इस्लाम न तो जीवन से पलायन सिखाता है और न ही ऐसे सन्यास की शिक्षा देता है कि समस्त स्वाभाविक इच्छाओं को मार कर निर्वाण की प्राप्ति की जाए। निर्वाण के दर्शन के अनुसार इच्छाएं हमें भौतिकवाद में जकड़ लेती हैं और उसका दास बना देती हैं। दूसरे

शब्दों में मोक्ष का माध्यम यही है कि मनुष्य अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं का दमन करे। इस्लाम ऐसे दर्शन का खण्डन करता है। इस्लाम के निकट यह मनुष्य का बनाया हुआ एक अस्वाभाविक दर्शन है जो जीवन की समस्याओं का वास्तविक समाधान नहीं है। निर्वाण की कल्पना सन्तोष और सन्तुष्टि से अधिक मृत्यु के निकट है। इसके विपरीत इस्लाम ने एक भिन्न समाधान प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार कोई मनुष्य स्वाभाविक इच्छाओं का दमन करके जीवन के रहस्य को नहीं पा सकता। इसी प्रकार सामाजिक शान्ति की स्थापना के लिए जो बहुत से उपाय प्रस्तावित किए गए हैं उनमें से एक यह भी है कि मनुष्य अपनी इच्छाओं को कम करके उनको अनुशासनबद्ध और उन्हें नियंत्रण में रखे। यह असंभव है कि मनुष्य अपनी समस्त इच्छाओं की अनियंत्रित सन्तुष्टि से वास्तविक सन्तोष एवं आत्मतुष्टि प्राप्त कर ले। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है मनुष्य जिस तीव्र गति से इच्छाओं के पीछे भागता है इच्छाएं उससे कहीं अधिक तीव्रता से आगे-आगे भागती हैं। इच्छाओं के तूफान का मुकाबला करने के लिए इस्लाम द्वारा प्रस्तुत उपाय संभव है देखने में छोटे दिखाई दें परन्तु वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण और बहुत प्रभावी हैं। उदाहरणतया क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

وَلَا تَمُدَّنَّ عَيْنَيْكَ إِلَىٰ مَا مَتَّعْنَا بِهِۦٓ أَزْوَٰجًا مِّنْهُمْ زَهْرَةَ ٱلْحَيَوٰةِ ٱلدُّنْيَا ۙ

لِنَفْتِنَهُمْ فِيهِ ۚ وَرِزْقُ رَبِّكَ خَيْرٌ وَأَبْقَىٰ ○

(सूरह ताहा - 132)

अनुवाद - *और अपनी आंखें इस अस्थायी सामान की ओर न फैला जो हमने उनमें से कुछ गिरोहों को सांसारिक जीवन के सौन्दर्य के तौर पर प्रदान किया है ताकि हम उसमें उनकी परीक्षा लें और तेरे रब्ब की आजीविका बहुत अच्छी और*

अधिक शेष रहने वाली है।

क़ुर्आन करीम में कुधारणा जासूसी और पीठ पीछे बुराई करने से रोका गया है। अतः परमेश्वर फ़रमाता है -

يَآاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوا اجۡتَنِبُوۡا كَثِيۡرًا مِّنَ الظَّنِّ ۫ اِنَّ بَعۡضَ الظَّنِّ اِثۡمٌ وَّلَا تَجَسَّسُوۡا وَلَا يَغۡتَبۡ بَّعۡضُكُمۡ بَعۡضًا ؕ اَيُحِبُّ اَحَدُكُمۡ اَنۡ يَّاۡكُلَ لَحۡمَ اَخِيۡهِ مَيۡتًا فَكَرِهۡتُمُوۡهُ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ تَوَّابٌ رَّحِيۡمٌ ○

(सूरह अलहुजुरात - 13)

अनुवाद - *हे लोगो जो ईमान लाए हो ! अत्यधिक गुमान करने से बचते रहा करो। निश्चय ही कुछ गुमान पाप होते हैं और एक दूसरे की जासूसी न किया करो और तुम में से कोई व्यक्ति किसी दूसरे की पीठ पीछे बुराई न किया करे। क्या तुम में से कोई यह पसन्द करता है कि अपने मुर्दा भाई का मांस खाए ? (यदि तुम्हारी ओर यह बात सम्बद्ध की जाए तो) तुम इस से सख्त घृणा करते हो तथा परमेश्वर का संयम धारण करो। निश्चय ही परमेश्वर तौबा (प्रायश्चित) को बहुत अधिक स्वीकार करने वाला (और) बार-बार दया करने वाला है।*

वचन, प्रतिज्ञा एवं समझौतों का सम्मान

इस्लामी समाज में परस्पर वचन, प्रतिज्ञा को बहुत महत्त्व प्राप्त है। समझौते की सुरक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के सम्मान को इस्लामी सामाजिक एकता की विचारधारा के लिए आवश्यक समझा जाता है। क़ुर्आन करीम मोमिनों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए फ़रमाता है -

وَالَّذِيْنَ هُمْ لِاَمٰنٰتِهِمْ وَعَهْدِهِمْ رٰعُوْنَ ۝

(सूरह अलमोमिनून - 9)

अनुवाद - *और वे लोग जो अपनी अमानतों और अपने समझौते की निगरानी करने वाले हैं।*

'बुराई का अन्त' एक सामूहिक दायित्व

लोगों की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व सरकारों पर नहीं डाला गया अपितु सामूहिक तौर पर समाज के सब लोगों पर डाला गया है। यह लोगों का कर्त्तव्य है कि वे बुराई से बचें और शुभ कर्म करें।

विकसित देशों में घरों, गलियों और बाज़ारों से कूड़ा-कर्कट एकत्र करके उसे यथास्थान फेंकने का काम कुछ विशेष लोगों के सुपुर्द होता है। निर्धन देशों में घर वाली स्त्री घर के कूड़ा-कर्कट को गलियों में फेंक देती है जिसका परिणाम यह होता है कि मार्ग गन्दगी से इतने भर जाते हैं कि गुज़रना कठिन हो जाता है। घरों को स्वच्छ और साफ रखना निःसन्देह घर वालों का कर्त्तव्य है, परन्तु इसके साथ-साथ गलियों, मुहल्लों और मार्गों की सफाई का भी कोई नियमित प्रबंध अवश्य होना चाहिए। पश्चिम ने सार्वजनिक स्थानों (Public

Places) को स्वच्छ रखने की सामाजिक ज़िम्मेदारी के महत्त्व को समझ लिया है परन्तु खेद है कि वे अपराधों की गन्दगी से समाज को पवित्र रखने की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता और दायित्व को नहीं समझ सके। यह वह गन्दगी और मलिनता है जो प्रतिदिन घरों से निकल-निकल कर गलियों और बाज़ारों और सम्पूर्ण समाज को गन्दा कर देती है।

इस्लाम ने सामाजिक वातावरण की इस समस्या को बड़े समवेत रूप से वर्णन किया है और इस का समाधान भी प्रस्तुत किया है। बुराई की गन्दगी को कम से कम करने का प्रथम दायित्व घर के बड़ों और बुज़ुर्गों पर आता है। उद्देश्य यह है कि समाज में पवित्रता हो, नेकी का विकास हो और बुराई की गन्दगी न हो। दूसरे इस्लाम समाज पर भी यह दायित्व डालता है कि वह व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर भी बुराई के विरुद्ध एक अभियान प्रारंभ करें। यह अभियान न तो तलवार द्वारा होना चाहिए और न मात्र कानूनी-प्रतिबन्धों से अपितु नीति के साथ लोगों को समझाना चाहिए और निरन्तर नसीहत करते चले जाना चाहिए।

क़ुर्आन करीम के अनुसार समाज को बुराइयों से पवित्र करने का उत्तम साधन धैर्यपूर्वक लोगों को प्रवचन और नसीहत देते चले जाना है। फ़रमाया -

وَلْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ يَّدْعُوْنَ اِلَى الْخَيْرِ وَيَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَيَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ ؕ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ○

(सूरह आले इमरान - 105)

अनुवाद - *और चाहिए कि तुम में से एक वर्ग हो वे भलाई की ओर बुलाता रहे और नेकी की शिक्षा दे और बुरे कामों से रोके और यही लोग हैं जो सफल होने वाले हैं।*

उपरोक्त आयत से यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि समय की सरकार लोगों के नैतिक स्वास्थ्य को यथावत रखने के दायित्व से पूर्ण रूप से पृथक हो जाती है ऐसा कदापि नहीं है। निःसन्देह कानून बनाने और उसे लागू करने के अधिकार सरकार के पास हैं। मैं केवल यह बताना चाहता हूं कि इस्लाम के निकट केवल सरकारी मशीनरी अपराधों को निरुत्साहित करने तथा उनका समूल विनाश करने के लिए पर्याप्त नहीं है। एक बार जब घरों में और समाज में आपराधिक वृत्तियों को बढ़ने और फैलने की अनुमति दे दी जाए और यह बीमारी जड़ पकड़ जाए तो सरकार अधिक से अधिक यही कर सकती है कि कभी-कभी इस बीमारी के कुछ ऊपरी लक्षणों को दूर कर दे। बुराई को जड़ से उखाड़ फेंकना सरकारों के वश की बात नहीं। कानून के लम्बे हाथ भी बुराई के गहरे मूल कारणों तक नहीं पहुंच सकते। अतः बुराई का विनाश करने का प्राथमिक दायित्व खानदान के बुज़ुर्गों, धार्मिक नेताओं तथा जन सामान्य के प्रमुखों पर आता है।

क़ुर्आन करीम की कथित आयत तथा इसी विषय की अन्य बहुत सी आयतों को दृष्टिगत रखते हुए हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने एक बार फ़रमाया - कि तुम में से पहले लोग दुष्परिणाम का इसलिए शिकार हुए कि उन्होंने अवज्ञा और उद्दण्डता धारण की तथा एक दूसरे को बुराई से नहीं रोका। आपने अतिरिक्त फ़रमाया -

"तुम पर अनिवार्य है कि नेकी का आदेश दो और बुरी बातों से लोगों को रोको और अत्याचारी का हाथ पकड़ लो और उसे न्याय से काम लेने पर तत्पर करो और उसे सत्य पर दृढ़ता से स्थापित करो अन्यथा परमेश्वर तुम्हारे हृदयों को परस्पर एक दूसरे के सदृश कर देगा और तुम पर उसी प्रकार ला'नत करेगा जिस प्रकार कि उसने उन (पहलों) पर ला'नत की।"

(सुनन अबू दाऊद व सुनन अत्तिरमिज़ी अब्वाबुल फ़ितन बाब मा जाआ फिल अम्र बिलमा'रूफ़ वन्नहिये अनिल मुन्करे)

हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के आदेशानुसार किसी जाति की अवनति का एक ख़तरनाक लक्षण यह है कि लोग खुल्लम खुल्ला बुराई करने के विरुद्ध घृणा और नफ़रत के प्रदर्शन का साहस खो देते हैं। हज़रत रसूले करीम[स.अ.व.] ने एक हदीस में ऐसे समाज के सदस्यों को एक नौका के यात्रियों से उपमा दी है।

हज़रत नो'मान बिन बशीर वर्णन करते हैं कि हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने फ़रमाया - उस व्यक्ति का उदाहरण जो परमेश्वर की (ओर से निर्धारित) सीमाओं को क़ायम रखता है और जो उन्हें तोड़ता है उन लोगों की तरह है जिन्होंने एक नौका में स्थान प्राप्त करने के लिए पर्ची (क़ुरआ) डाली। कुछ लोगों को ऊपर का भाग मिला और कुछ को नीचे के तल पर स्थान मिला। जो लोग नीचे के तल में थे वे ऊपर वाले तल से गुज़र का पानी लेते थे, फिर उन्हें विचार आया कि हम अकारण ऊपर के तल वाले लोगों को कष्ट देते हैं। क्यों न हम नीचे के तल में छेद कर लें और वहां से पानी ले लिया करें। अब यदि ऊपर वाले उनको ऐसा मूर्खतापूर्ण कार्य करने दें तो सब डूबेंगे और यदि उनको रोक दें तो सब बच जाएंगे।

(सही बुख़ारी - किताबुश्शहादात, बाबुल क़ुरअते फ़िल मुश्किलात)

मुझे भय है कि यह उदाहरण बड़ी सीमा तक आधुनिक युग के समाजों पर चरितार्थ होता है।

विधि और निषेध

कुछ अन्य सामाजिक दायित्वों से संबंधित आयतें निम्नलिखित हैं। उन पर आचरण करने के फलस्वरूप सामाजिक शान्ति का विकास होता है -

وَعِبَادُ الرَّحْمٰنِ الَّذِيْنَ يَمْشُوْنَ عَلَى الْاَرْضِ هَوْنًا وَّاِذَا خَاطَبَهُمُ الْجٰهِلُوْنَ قَالُوْا سَلٰمًا ○

(सूरह अलफ़ुरक़ान - 64)

अनुवाद - *और रहमान (परमेश्वर) के बन्दे वे हैं जो पृथ्वी पर विनम्रता के साथ चलते हैं और जब मूर्ख लोग उन से बात करते हैं तो (उत्तर में) कहते हैं "सलाम"*

وَاِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا بِاَحْسَنَ مِنْهَآ اَوْ رُدُّوْهَا ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ حَسِيْبًا ○

(सूरह अन्निसा - 87)

अनुवाद - *और यदि तुम्हें कोई उपहार प्रस्तुत किया जाए तो उस से उत्तम (उपकार) प्रस्तुत किया करो या वही लौटा दो। निश्चय ही परमेश्वर प्रत्येक वस्तु का हिसाब लेने वाला है।*

وَلَا تُصَعِّرْ خَدَّكَ لِلنَّاسِ وَلَا تَمْشِ فِى الْاَرْضِ مَرَحًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ كُلَّ مُخْتَالٍ فَخُوْرٍ ○ وَاقْصِدْ فِىْ مَشْيِكَ وَاغْضُضْ مِنْ صَوْتِكَ ؕ اِنَّ اَنْكَرَ الْاَصْوَاتِ لَصَوْتُ الْحَمِيْرِ ○

(सूरह लुक़मान - 19, 20)

अनुवाद - *और (नफ़रत) से मनुष्यों के लिए अपने गाल न*

फुला तथा पृथ्वी में यों ही अकड़ते हुए न फिर। परमेश्वर किसी अभिमानी तथा अहंकारी को पसन्द नहीं करता और अपनी चाल में मध्यम गति धारण कर तथा अपनी आवाज़ को धीमा रख। निश्चय ही सब से बुरी आवाज़ गधे की आवाज़ है।

इस्लाम जो शिष्टाचार और आचरण एक मुसलमान के अन्दर पैदा करना चाहता है वे स्वयं ही हर प्रकार की दायित्वहीन और अपराधों को समाप्त करते हैं। इस्लाम सामाजिक वातावरण के लिए एक ऐसी स्वच्छ और स्वस्थ भूमि तैयार करता है जो गलत रुझानों के पनपने के लिए अनुकूल नहीं होती। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इस्लाम ने विधि और निषेध के रूप में एक विस्तृत और पूर्णतम शिक्षा प्रदान की है। इन विधि और निषेधों की संख्या सैकड़ों तक जा पहुंचती है। इस्लामी शिक्षा का केन्द्रीय और मूल भाग लगभग समस्त धर्मों में साझा है। अतः मतभेद वाली आस्थाओं से दृष्टि हटाते हुए इन क़ुर्आनी आयतों के कुछ हवाले प्रस्तुत करता हूं जिनमें कुछ आदेशों और निषेधों का वर्णन आता है।

आदेश (विधि-विधान)

सतीत्व और पवित्राचरण - सूरह बनी इस्राईल आयत नं. 33, अलमोमिनून आयत 6 से 8, 'अन्नूर' आयत - 31, 34, 61, अलफ़ुरक़ान - आयत 69, अलअहज़ाब आयत - 36, अलमआरिज आयत 30 से 32

स्वच्छता - अलबक़रह आयत - 223, अन्निसा आयत - 44, अलमाइदह आयत - 7, अलहज्ज आयत - 30, अलमुद्दस्सिर आयत - 5, 6

क्रोध पर नियंत्रण - आले इमरान आयत - 135

सहयोग - अलमाइदह आयत - 3

साहस और शौर्य - अलबक़रह आयत - 178, आले इमरान आयत - 173 से 175, अत्तौबः 40, ताहा आयत 73, 74, अलअहज़ाब - 40, अलअहकाफ़ आयत - 14

नेकी करना - अलबक़रह आयत - 196, आले इमरान - 135, अलमाइदह - 94, अलआराफ़ - 57

सत्कर्मों का आदेश और अप्रिय एवं ग़ैर शरई बातों से रोकना - आले इमरान - 111

नेकियों (शुभ कर्मों) में परस्पर आगे बढ़ना - अलबक़रह आयत - 149

अमानतों का लौटाना - अलबक़रह आयत - 284, अन्निसा - 59, अलमोमिनून आयत - 9, अलमआरिज - 33

भूखों को भोजन खिलाना - अद्दहर आयत - 9, अलबलद आयत - 17 से 21

क्षमा करना - अलबक़रह - 10, आले इमरान - 135, 160, अन्निसा - 150, अलमाइदह - 7, 9, इब्राहीम - 8, अज़्ज़ुमर - 8, 68, अल अहकाफ़ - 16

सच्ची साक्ष्य देना - अन्निसा - 136, अलमाइदह - 9, अलफ़ुरक़ान - 73

नौकरों से सद्व्यवहार - अन्निसा - 37

पड़ोसियों से सद्व्यवहार - अन्निसा - 37

परिजनों से सद्व्यवहार - अलबक़रह - 178, अन्नहल-91, अर्रूम - 39

कृतज्ञता - अलबक़रह - 153, 173, 186, आले इमरान - 145, अलमाइदह - 7, 90, इब्राहीम - 8, अज़्ज़ुमर - 8, 67, अलअहक़ाफ़ - 16

विनय - अलअन्आम - 64, अलआराफ़ - 14, 56, 147, अन्नहल - 24, 30, बनी इस्राईल - 38, अलक़सस - 81, लुक़्मान - 19, 20, अलमोमिन - 36

न्याय - अलमाइदह - 9, अलअन्आम - 153, अन्नहल - 91, अलहुजुरात - 10

लोगों के मध्य संधि कराना - अन्निसा - 115, अलहुजुरात - 10

धैर्य - अलबक़रह - 46, 154, 178, हूद - 12, अर्रअद - 23, अन्नहल - 127, 128, अलक़सस - 81, अलअन्कबूत - 61, अज़्ज़ुमर - 11, अश्शूरा - 44, अलअस्र - 4

दृढ़ता - अर्रअद - 23, हामीम अस्सज्दह - 31, 33

शुद्धता और पवित्रता - अलबक़रह - 223, अलमाइदह - 7, अत्तौबः 103, 108, अन्नूर - 22, अलअहज़ाब - 34, अलमुद्दस्सिर - 5, अलआ'ला - 15, अश्शम्स - 10, 11

आत्म संयम - अन्निसा - 136, अलआराफ़ - 202, अलकहफ़ - 29, अर्रूम - 30, साद - 27, अन्नाजिआत - 41, 42

शिष्टाचार - अज़्ज़ुमर - 3, 4, अलबय्यिनह - 6, अलमाऊन - 5, 7

सत्य - अन्निसा - 136, अलमाइदह - 120, अत्तौबः 119, बनी इस्राईल - 82, अलहज्ज - 31, अलफ़ुरक़ान - 73, अल अहज़ाब - 25, 26, 71, अज़्ज़ुमर - 33

त्याग - अलबक़रह - 208, 263, हूद - 52, अलहश्र - 10, अत्तग़ाबुन - 17, अद्दहर - 9, 10, अल्लैल - 20, 21

निषेधादेश

दुराचार - बनी इस्राईल - 33

स्वयं को महत्व देना तथा अहंकार - अलबक़रह - 35, 88, अन्निसा - 174, अलआराफ़ - 37

चुग़ली - अलहुजुरात - 13

अभिमान - अलहदीद - 24

तिरस्कार करना - अलहुजुरात - 12
अभिहास एवं उपहास - अलहुजुरात - 12
निराशा - अज़्ज़ुमर - 54
ईर्ष्या - अलफ़लक़ - 6
अपव्यय - अलआराफ़ - 32, बनी इस्राईल - 27, 28
मूर्खतापूर्ण अनुकरण - बनी इस्राईल - 37
गर्व एवं अहंकार - बनी इस्राईल - 38, अलमोमिनून - 47, लुक़मान - 19
नाप-तोल में कमी - अलमुतफ़्फ़िफ़ीन 2 से 4
बुरे नाम रखना - अलहुजुरात - 12
कृपणता - अन्निसा - 106, 108, अलअन्फ़ाल - 27, 59
कुधारणा (बदगुमानी) - अलहुजुरात - 13
झूठ - अलहज्ज - 31, अलफ़ुरक़ान - 73
चोरी - अलमाइदह - 39

इस्लाम समस्त धर्मों के प्रमुखों को निमंत्रण देता है कि वे मिल-जुल कर प्रयत्न करें कि नेकी का विकास हो और वह हृदयों में दृढ़ हो जाए तथा लोगों को बुराई के विरुद्ध सतर्क किया जाए। काश ऐसा हो सके ताकि संसार की दशा ठीक हो जाए।

इस्लाम नस्लवाद का खण्डन करता है

वर्तमान युग में नस्लवाद एक ऐसा अभिशाप है जो विश्व शान्ति के लिए सब से बड़ा ख़तरा है। क़ुर्आन करीम न केवल मुसलमानों को अपितु सम्पूर्ण मानवजाति को यह वास्तविकता स्मरण कराता है कि -

يَآاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّ خَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِيْرًا وَّنِسَآءً ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِىْ تَسَآءَلُوْنَ بِهٖ وَالْاَرْحَامَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلَيْكُمْ رَقِيْبًا ○

(सूरह अन्निसा - 2)

अनवाद - *हे लोगो ! अपने रब्ब का संयम धारण करो जिसने तुम्हें एक ही जान से पैदा किया और उसी की प्रजाति से उसका जोड़ा बनाया और फिर उन दोनों में से बहुत से पुरुषों और स्त्रियों को (पैदा करके) संसार में फैला दिया तथा परमेश्वर से डरो जिसके नाम को साक्ष्य ठहरा कर तुम एक दूसरे से आपस में मांगते हो तथा रिश्तेदारियों (के बारे) में विशेषकर (परमेश्वर के आदेशों का) ध्यान रखो। निश्चय ही परमेश्वर तुम्हारा संरक्षक है।*

अतः क़ुर्आन करीम यह घोषणा करता है कि किसी व्यक्ति को किसी दूसरे पर मनुष्य होने के नाते कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है फ़रमाया -

يَآاَيُّهَا النَّاسُ اِنَّا خَلَقْنٰكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ وَّاُنْثٰى وَجَعَلْنٰكُمْ شُعُوْبًا وَّقَبَآئِلَ لِتَعَارَفُوْا ؕ اِنَّ اَكْرَمَكُمْ عِنْدَ اللّٰهِ اَتْقٰكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌ خَبِيْرٌ ○

(सूरह अलहुजुरात - 14)

अनुवाद - *हे लोगो ! निश्चय ही हमने तुम्हें पुरुष और स्त्री से पैदा किया और तुम्हें जातियों और क़बीलों में विभाजित किया*

ताकि तुम एक-दूसरे को पहचान सको। निःसन्देह परमेश्वर के निकट तुम में सब से अधिक आदरणीय वह है जो सब से अधिक संयमी है। निश्चय ही परमेश्वर सर्वज्ञ, सावधान और सतर्क है।

يَآاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَسْخَرْ قَوْمٌ مِّنْ قَوْمٍ عَسٰٓى اَنْ يَّكُوْنُوْا خَيْرًا مِّنْهُمْ وَلَا نِسَآءٌ مِّنْ نِّسَآءٍ عَسٰٓى اَنْ يَّكُنَّ خَيْرًا مِّنْهُنَّ ۚ وَلَا تَلْمِزُوْٓا اَنْفُسَكُمْ وَلَا تَنَابَزُوْا بِالْاَلْقَابِ ؕ بِئْسَ الِاسْمُ الْفُسُوْقُ بَعْدَ الْاِيْمَانِ ۚ وَمَنْ لَّمْ يَتُبْ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ○

(सूरह अलहुजुरात - 12)

अनुवाद - *हे लोगो जो ईमान लाए हो ! (तुम में से) कोई जाति किसी जाति पर उपहास न करे। संभव है कि वे उन से अधिक अच्छे हो जाएं और न स्त्रियां स्त्रियों से (उपहास करें) हो सकता है कि वे उनसे अधिक अच्छी हो जाएं, तथा अपने लोगों पर दोष न लगाया करो और एक दूसरे को नाम बिगाड़ कर न पुकारा करो। ईमान के बाद दुराचार का धब्बा लग जाना बहुत बुरी बात है और जिसने तौबा न की तो यही वे लोग हैं जो अत्याचारी हैं।*

विहंगम दृष्टि से देखा जाए तो ऐसा लगता है जैसे वर्तमान समाज रंग और नस्ल के भेदभाव से दूर हटता जा रहा है और नस्लवाद के विरुद्ध संसार की अन्तरात्मा में जागृति पैदा हो रही है, किन्तु यदि इस समस्या को अधिक निकट होकर और गहराई में जाकर देखा जाए तो ज्ञात होगा कि नस्लवाद का अभिशाप आज भी संसार में जगह-जगह यथावत विद्यमान है। कठिनाई यह है कि नस्लवाद की कोई एक ठोस परिभाषा नहीं की जा सकती। विभिन्न दृष्टिकोणों से यह परिभाषा परस्पर भिन्न दिखाई देने लगती है। नस्ल संबंधी पक्षपात, जातिवाद, धार्मिक श्रेष्ठता की भावना, कबीलों का परस्पर अभिमान

करना, फासिज़्म, साम्राज्यवाद और जातिवाद में अन्तर कर पाना कठिन है। पश्चिमी यूरोप में ईसाइयों ने एक हज़ार वर्ष तक यहूदियों के साथ अत्यन्त बर्बरता और अमानवीय आचरण जारी रखा। अतीत की यह हृदयविदारक घटना भूल भी जाएं तो नाज़ियों का यहूदियों के साथ वह पाशविक व्यवहार कैसे भुलाया जा सकता है जो उन्होंने उस शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक में किया। यही कारण है कि नस्लवाद का शब्द सुनते ही सहसा हमारा मस्तिष्क यहूदियों पर किए जाने वाले अत्याचारों के सुदीर्घ इतिहास की ओर चला जाता है, परन्तु यहूदियों के साथ होने वाले अत्याचार नस्ली पक्षपात का पूर्ण चित्रण नहीं करते अपितु इस में कई पहलू हैं जो दृष्टिपात की परिधि से ओझल रह जाते हैं। हमें कभी उन क्रान्तिकारी यहूदियों का विचार तक नहीं आता जो ग़ैर यहूदी जातियों के साथ उसी प्रकार के भयानक पक्षपात का प्रदर्शन करते हैं जिसका वे स्वयं निशाना बनते रहे हैं। यह कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। नस्लवादी पक्षपात के कई ऐसे रूप भी हैं जो प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं देते परन्तु वास्तव में विद्यमान हैं जिनमें से एक जातिवाद भी है। इसके अतिरिक्त धार्मिक, कबीला संबंधी तथा क्षेत्रीय पक्षपात इत्यादि के भी कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिन के पार्श्व में नस्लवादी पक्षपात विभिन्न नामों से काम कर रहा है। श्वेत लोगों पर यह आरोप लगाना अन्याय होगा कि केवल वही काले और पीले लोगों से द्वेष रखते हैं। स्वयं काली और पीले रंग वाली जातियां भी नस्लवाद का कुछ कम प्रदर्शन नहीं करतीं और फिर ऐसा नस्लवादी पक्षपात भी विद्यमान है जिसका सम्बन्ध उन लोगों से है जिनकी खाल का रंग न तो काला है और न ही बिल्कुल पीला अपितु दोनों के मध्य में से है।

नस्लवाद के उपद्रव की जड़ वास्तव में जातीय द्वेष ही है और कदाचित यही उसकी उचित परिभाषा भी है। जब भी एक वर्ग के लोग अपने हितों के लिए दूसरे वर्ग के विरुद्ध द्वेष से काम लेते हैं तो

नस्लवादी पक्षपात का नाग अपना ज़हरीला और भयानक सर उठाता है फिर नफ़रतों की एक ऐसी आंधी चलती है जो अच्छे और बुरे में अन्तर नहीं किया करती। अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े सब उसकी लपेट में आ जाते हैं और समाज नफ़रतों का लक्ष्य-स्थल बन जाता है।

कुछ शताब्दियों पूर्व पृथ्वी का पश्चिमी भाग काफी सीमा तक ईसाइयत और इस्लाम के मध्य विभाजित था और ये दोनों धर्म एक दूसरे के आमने-सामने खड़े थे। धार्मिक विद्वेष के इस युग में यहूदियों ने मुसलमानों के विरुद्ध जो भूमिका अदा की वह सामान्य तौर पर लोगों के ज्ञान में नहीं है तथापि इस वास्तविकता से सब अवगत हैं कि यहूदी मसीही यूरोप का ही भाग थे और यूरोप रोम सागर के आसपास आबाद मुसलमान जातियों से बहुत नफ़रत करता था और उनके संबंध में सदैव ही अविश्वसनीयता का शिकार रहा। यूरोपीय लोग पश्चिमी यूरोप की ओर मुसलमानों के आगे बढ़ने से भयभीत थे। ईसाइयों और मुसलमानों के मध्य इस कठोर प्रतिद्वन्द्विता के युग में नस्लवादी द्वेष का एक ऐसा रूप भी मौजूद था जिसका आधार रंग-भेद था। मुसलमानों और ईसाइयों को यह संघर्ष अधिकतर तुर्क-अरब एकता तथा मसीही यूरोप के मध्य एक युद्ध दिखाई देता है जबकि इन्डोनेशिया, मलेशिया, चीन तथा हिन्दुस्तान के मुसलमान इस झगड़े से बिल्कुल अलग-थलग रहे हैं।

यद्यपि प्रत्यक्षतः उस युग का इतिहास अतीत के धुंधलकों में दफ़्न हो चुका है और उसकी यादें मानस पटल से मिट चुकी हैं परन्तु मैं इस दबी हुई अग्नि को पुनः सुलगते हुए देख रहा हूं। मानवीय समस्याएं सदैव के लिए कभी समाप्त नहीं होतीं। ये विवाद इतिहास के अंधेरों में कैसे ही लुप्त क्यों न हो चुके हों फिर भी सर उठा सकते हैं। अतीत से निकल कर वर्तमान में आ जाइए। जब तक विश्व दो महान शक्तियों और उनके मित्र देशों में बंटा रहा, पश्चिम के हितों

के लिए यह आवश्यक था कि इस प्रकार की सैकड़ों वर्ष पुरानी समस्याओं को स्वयं न छेड़ा जाए और न ही किसी को उन्हें छेड़ने की आज्ञा दी जाए, किन्तु जब से पूरब और पश्चिम के मध्य संबंधों के एक नवीन युग का प्रारंभ हुआ है ऐसा प्रतीत होता है जैसे विश्व पुनः मध्यकालीन युगों के किसी जुझारू सेनापति के अत्याचार का शिकार होने वाला है।

सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप में प्रकट होने वाले महान परिवर्तनों ने एक ऐसे वातावरण को जन्म दिया है जिस से ईसाइयों और मुसलमानों की पुरानी धार्मिक और राजनीतिक शत्रुताओं के पुनः उभरने का ख़तरा पैदा हो गया है। दोनों ओर के स्वार्थी इस अग्नि को और भी हवा देने का कारण बन सकते हैं और मुझे सन्देह है अपितु दृढ़ विचार है कि इस्लाम और ईसाइयत दोनों के धार्मिक नेता इस वर्तमान स्थिति को और भी अधिक बिगाड़ देंगे और इस प्रकार मुसलमानों और ईसाइयों के बीच अमन और पारस्परिक मिलवर्त्तन की संभावनाएं और अधिक धुंधली हो जाएंगी। यदि ऐसा हुआ तो इसका लाभ निश्चित रूप से इस्राईल को होगा। यह संभव नहीं है कि इस्राईल ऐसी अवस्था में कोई दिलचस्पी न ले और मूक दर्शक बन कर देखता रहे। अब विश्व राजनीतिक और आर्थिक आधारों पर भी विभाजित हो चुका है। यह विभाजन उत्तर के धनी देशों तथा दक्षिण के निर्धन देशों तथा पूरब और पश्चिम के मध्य एक नवीन प्रकार के नस्लवादी द्वेष को जन्म दे रहा है। पूरब और पश्चिम के मध्य इन शत्रुताओं और नफ़रतों के बारे में किसी ने क्या ख़ूब कहा है -

East is East and West is West
And never the twain shall meet.

अर्थात पूरब पूरब है और पश्चिम पश्चिम है और ये दोनों कभी इकट्ठे नहीं हो सकेंगे। विश्व शक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता में वर्तमान समय

में हुई कमी और मित्रतापूर्ण संबंधों के सुधरने से इस बात की संभावना भी है कि पश्चिम के ईसाई देशों और पूरब के मुसलमान देशों के बीच पाए जाने वाले प्राचीन धार्मिक और राजनीतिक मतभेद और वैमनस्य पुनः जीवित हो जाएं। महा शक्तियों के बीच मित्रतापूर्ण संबंधों के दृढ़ होने से अनिवार्य तौर पर एक नवीन साम्राज्यवाद अस्तित्व में आएगा और एक ऐसा नस्लवादी द्वेष सर उठाएगा जिसकी जड़ें सुदूर गहराई में फैली होंगी और जिसके कारण पूरब और पश्चिम के बीच पाई जाने वाली दूरियां यदि और भी बढ़ जाएं तो इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हो सकता है कि यह उपरोक्त विवरण नस्लवाद की मान्य परिभाषा से अतिक्रमण करता हुआ दिखाई दे और कुछ लोग यह समझें कि मैंने नस्लवादी भेदभाव की परिभाषा आवश्यकता से अधिक विस्तृत कर दी है और ऐसी बातों को भी बहस में सम्मिलित कर लिया है जो प्रत्यक्ष रूप में नस्लवाद से संबंध नहीं रखतीं, परन्तु मैं नस्लवादी भेदभाव के प्रेरक तत्वों के गहरे और निष्पक्ष अध्ययन और दृष्टिपात के आलोक में कह सकता हूं कि किसी भी त्रुटिपूर्ण कार्य-प्रणाली को आप नस्लवादी भेदभाव कहें या उसे कोई और शिष्ट सा नाम दे दें इस से कुछ अन्तर नहीं पड़ता। यदि पार्श्व में कारण एक समान हैं तो फिर रोग भी वास्तव में एक ही है चाहे उसका नाम कोई सा भी क्यों न रख दिया जाए। नस्लवादी भेदभाव को यदि विशालतम अर्थों में देखा जाए तो इससे अभिप्राय वे साम्प्रदायिक भेदभाव होंगे जो हमेशा न्याय और इन्साफ़ के मार्ग में आ जाते हैं।

अमरीकी और रूसी ब्लाकों के मध्य प्रतिद्वन्द्विता में इतनी तीव्रता से जो इस समय कमी आई है वह विश्व को सर्वथा एक नवीन युग की ओर ले जा रही है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस आने वाले समय में हर प्रकार के मतभेद मिट जाएंगे परन्तु समझने और समझाने के परिणामस्वरूप विश्व का एक नया नक्शा उभर कर सामने आ रहा है। ज्यों-ज्यों दृष्टिकोणों संबंधी मतभेदों की तीव्रता में कमी

आ रही है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहले से मौजूद कुछ अन्य मतभेद अब उभर कर सामने आएंगे और उनमें अनिवार्य रूप से तीव्रता पैदा होगी। जब पूंजीवादी और साम्यवादी व्यवस्था का विरोध चरम सीमा पर था तो पूरब और पश्चिम का तथाकथित विभाजन अपेक्षाकृत दूसरा रूप धारण कर गया था और ये विवाद पार्श्व में चले गए थे, परन्तु स्थिति परिवर्तित हो चुकी है। अब पूरब और पश्चिम का वही पुराना विभाजन उन्नतिशील पश्चिम और पिछड़े हुए पूर्वी देशों के बीच एक बार फिर प्रकट होकर सामने आएगा।

पूर्वी यूरोप के आज़ाद होने वाले देश और स्वयं रूस धीरे-धीरे पूंजीवादी देशों के रंग में रंगीन हो जाएंगे और अन्ततः उन्हीं का भाग बनकर तीसरे विश्व के देशों के साथ वही व्यवहार करेंगे जो इस समय पूंजीवादी देश कर रहे हैं। यद्यपि विदेशी अन्तर्राष्ट्रीय मंडियों पर अधिकार जमाने और उन पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए शत्रुताएं नवीन रूप धारण कर लेंगी किन्तु समवेत रूप से पश्चिम पहले से कहीं बढ़कर एक शक्तिशाली राजनीतिक एवं आर्थिक संघटन बन कर उभरेगा और पूर्वी ब्लाक का भी अन्ततः यूरोप में ही समावेश हो जाएगा और इस प्रकार पूरब और पश्चिम का तथाकथित विभाजन और भी स्पष्ट और गहरा हो जाएगा।

इसके अतिरिक्त यह कि एक नए रूप के समाजवाद के कारण जातियां लोगों और वर्गों का स्थान ले लेंगी। वर्गीय विभाजन और वर्गीय संघर्ष अब एक देश के अमीरों और ग़रीबों के मध्य नहीं अपितु अमीर और ग़रीब जातियों के मध्य होगा। भविष्य में कुछ समय तक इस विनाशकारी संघर्ष को दबाया तो जा सकता है और कदाचित उसकी तीव्रता को भी कम किया जा सकता है परन्तु इससे बचने का कोई उपाय नहीं। अन्ततः यह होकर रहेगा। मुझे ख़तरा है और यह ख़तरा अकारण नहीं कि हम एक भयानक प्रकार के विश्वव्यापी

नस्लवादी मतभेदों के युग में प्रवेश कर रहे हैं और भय है कि नस्लवाद की इस अग्नि को यहूदियत का राजनीतिक नेतृत्व और भी भड़काएगा। हैफ़ा यूनीवर्सिटी के बैंजामिन बैत हलाहमी ने एक पुस्तक लिखी है "The Israeli Connection: Whom Israel Arms and Why" Published 1988 by I.B. Tauris & Co. Ltd, London. यदि लेखक के विचारों को गंभीरता से लिया जाए और यहूदियों की सोची समझी राजनैतिक विचारधारा के संबंध में उसके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों को प्रमाणित समझा जाए तो विश्व-शान्ति के लिए निश्चय ही यह कोई अच्छा लक्षण नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में इस्राईल ने जो भूमिका निभाई है और जो भूमिका निभाने का अभी वह इरादा रखता है उसका कुछ न कुछ अनुमान निम्नलिखित इबारतों से हो सकता है -

"इस्राईली शासन के प्रवर्तक डेविड बिन गुरियन (David Ben Gurion) ने जनवरी 1957 ई. में कहा कि हमारे अस्तित्व और सुरक्षा की दृष्टि से हमारे लिए किसी भी यूरोपियन देश की मित्रता सम्पूर्ण एशिया से अधिक महत्त्व रखती है।"

(Medzini, 1976; p.75) p.5

"अरबों पर नए सिरे से श्रेष्ठता प्राप्त करने की यहूदी योजना और साम्राज्यवाद के पतन को रोकने का अमरीकी लक्ष्य परस्पर घुल मिल गए हैं।" (पृष्ठ - 205)

"आज दाहिने बाज़ू से संबंध रखने वाला व्यक्ति हृदय से यही चाहता है कि इस्राईल शक्तिशाली होता चला जाए। वे चाहते हैं कि इस्राईल उज़ी (Uzi) जैसे विनाशकारी अस्त्रों से सुसज्जित होकर तृतीय विश्व के हर कट्टरवादी आंदोलन और शक्ति पर विजय पाकर काले और पीले रंग वाले लोगों को तलवार के घाट उतारता फिरे। यही कारण है कि अर्जन्टीना

के फौजी जनरल और पैरागुए (Paraguay) के कर्नल और दक्षिणी अफ्रीका के गोरे ब्रिगेडियर इस्त्राईलियों से प्रेम करते हैं।" (पृष्ठ - 218)

"अमरीका में 1970 ई. से 'तीसरा संसार मुर्दाबाद' का जो उद्घोष तीव्र होना आरंभ हुआ है वह इस्त्राईली संकल्पों की ही प्रतिध्वनि है। इस प्रेरणा के प्रवर्तक Daniel Patrick Moynihan और Jean Kirkpatrick इस्त्राईल को अपना विश्वस्त और प्राण-वायु समझते हैं।" (पृष्ठ - 222)

यहूदियत के दाएं बाज़ू के द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व के एक लीडर व्लादीमीर जाबोटिनस्की (Vladimir Jabotinsky) स्पष्ट शब्दों में यहूदियत और साम्राज्यवाद की परस्पर एकता की बातें किया करते थे। उनका कहना था कि -

"रोम सागर और उसके आसपास का समस्त क्षेत्र यूरोपीय जातियों के अधिकार में रहना चाहिए। यह हमारा दृढ़ संकल्प है ..... पूरब और पश्चिम के मध्य प्रत्येक विवाद में हम सदैव पश्चिम का साथ देंगे क्योंकि मंगोलों के हाथों बग़दाद की ख़िलाफ़त के विनाश के पश्चात पिछले एक हज़ार वर्ष से अधिक समय से पूरब की अपेक्षा पश्चिम ही श्रेष्ठ संस्कृति, रहन-सहन और सभ्यता का केन्द्र रहा है ..... और आज हम उस संस्कृति और रहन-सहन के सब से प्रमुख संरक्षक हैं। हम प्रलय तक अरब आन्दोलन का समर्थन नहीं कर सकते। यह आन्दोलन एक इस्त्राईल दुश्मन आन्दोलन है इसे पहुंचने वाली प्रत्येक हानि और प्रत्येक पराजय हमारे लिए हार्दिक प्रसन्नता का कारण है।" (Brenner, 1984 pp.75–77) (पृष्ठ 227)

"तीसरे संसार की आज़ादी की कल्पना यहूदियत की नींवों के लिए एक ख़तरा है। मानवाधिकारों की कल्पनाएं इस्त्राईल की

राजनैतिक व्यवस्था के लिए अत्यन्त ख़तरनाक हैं। फ़लस्तीनियों के साथ किए गए अत्याचार इतने स्पष्ट हैं कि इस मामले को सार्वजनिक तौर पर बहस के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता। इस्राईल तृतीय विश्व में जो कुछ कर रहा है उसका निश्चित परिणाम यह होगा कि संसार का ध्यान फ़लस्तीनियों के अधिकारों की ओर हो जाएगा। जब मानवाधिकार और अन्तर्राष्ट्रीय न्याय की समस्याएं बहस के अन्तर्गत आती हैं तो इस्राईली लोग सम्पूर्ण संसार को धोखेबाज़ ठहराने और बुरा-भला कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करते। इस दृष्टि से उनमें दक्षिणी अफ़्रीका के गोरे लोगों में कोई अन्तर नहीं है।" (पृष्ठ - 236, 237)

"मनीला (फिलिपाइन) से टैगोसीगाल्पा Tegucigalpa (होन्डुरस Honduras) तक और नमीबिया में विन्ढोइक (Windhoek) तक निरन्तर जारी युद्ध में जो कि वास्तव में एक विश्व युद्ध है इस्राईली एजेन्टों का हाथ अवश्य होता है। आखिर वह कौन सा शत्रु है जिसके विरुद्ध इस्राईल युद्धरत है ? यह तृतीय विश्व में बसने वाली सृष्टि है जिन्हें कदापि यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि उनकी फैलाई हुई कोई क्रान्ति सफल हो।" (पृष्ठ - 243)

इस्राईल अपने भविष्य के सुहावने स्वप्न केवल उसी समय तक देख सकता है जब तक अरब संसार और तृतीय विश्व के देश परस्पर मतभेद का शिकार हैं और कमज़ोर हैं। इस अवस्था में कोई परिवर्तन इस्राईल के लिए कोई शुभ लक्षण नहीं है। (पृष्ठ - 247)

इस्राईल के निर्यात (Export) में केवल टेक्नालौजी, शस्त्र और अनुभवी विद्वान ही नहीं अपितु एक विशेष प्रकार की मानसिकता भी सम्मिलित है। सफल अधिकार जमाने के लिए संसार को किस दृष्टि से देखने की आवश्यकता है और अत्याचारी का तर्कशास्त्र क्या होता

है। ये सब बातें भी इस्राईल संसार में निर्यात करता है। (पृष्ठ - 248)

दृढ़ आशा है कि अन्ततः यहूदियत के युद्ध के उदघोषों पर इस्राईली नेतृत्व के गंभीर वर्ग का स्वर विजयी हो जाएगा। इस्राईली लेखकों में से कदाचित हरकाबी (Harkabi) ही है जिसे सर्वाधिक तर्क प्रिय और संतुलित स्वभाव रखने वाला कहा जा सकता है। वह यहूदी कट्टरवादियों की अत्याचारपूर्ण आक्रामक रणनीति को केवल बुरा ही नहीं समझता अपितु उसे स्वयं यहूदी हितों के पक्ष में आत्महत्या का पर्याय समझता है। यद्यपि अन्य यहूदी विचारक और विद्वान हरकाबी (Harkabi) की विचारधारा से पूर्णरूप से सहमत नहीं हैं परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी समस्या के बारे में हरकाबी का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक और यथार्थप्रिय होता है। विशेषकर उसने शान्ति के लिए जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया है उसमें अरबों के लिए आशा की एक किरण अवश्य दिखाई देती है।

मैं आशा रखता हूं कि किसी भी दृष्टि से और किसी भी स्तर पर मानव जाति के विभाजन और विशेष व्यवहार से कुछ लोग सामयिक लाभ तो प्राप्त कर सकते हैं परन्तु अन्ततः उसके दूरगामी परिणाम सब के लिए अनिवार्यतः बुरे ही हुआ करते हैं। वर्तमान युग के इस आलोक में इस्लाम एक ऐसा स्पष्ट और आशावादी सन्देश देता है जो वर्तमान परिस्थितियों में बड़ी प्रभावशाली भूमिका निभा सकता है। इस्लाम नस्लवाद एवं वर्गीय घृणा की तीव्र निन्दा करता है और उपद्रव का कोई भी रूप क्यों न हो उसे निन्दनीय ठहराता है। इस विषय से संबंधित क़ुर्आन करीम की बहुत सी आयतों में कुछ तो इस से पूर्व प्रस्तुत की जा चुकी हैं। निम्नलिखित आयत में इस्लाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] के आचरण को परमेश्वर का प्रकाश कहा गया है ; ऐसा प्रकाश जो न केवल पूरब के लिए है और न ही केवल पश्चिम के लिए अपितु पूरब तथा पश्चिम दोनों की समान भलाई के लिए परमेश्वर की ओर से उतारा गया है।

اَللّٰهُ نُوْرُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ مَثَلُ نُوْرِهٖ كَمِشْكٰوةٍ فِيْهَا مِصْبَاحٌ ؕ اَلْمِصْبَاحُ فِىْ زُجَاجَةٍ ؕ اَلزُّجَاجَةُ كَاَنَّهَا كَوْكَبٌ دُرِّىٌّ يُّوْقَدُ مِنْ شَجَرَةٍ مُّبٰرَكَةٍ زَيْتُوْنَةٍ لَّا شَرْقِيَّةٍ وَّلَا غَرْبِيَّةٍ ۙ يَّكَادُ زَيْتُهَا يُضِىْٓءُ وَلَوْ لَمْ تَمْسَسْهُ نَارٌ ؕ نُوْرٌ عَلٰى نُوْرٍ ؕ يَهْدِى اللّٰهُ لِنُوْرِهٖ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَيَضْرِبُ اللّٰهُ الْاَمْثَالَ لِلنَّاسِ ؕ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَىْءٍ عَلِيْمٌ ○

(सूरह अन्नूर - 36)

अनुवाद - *परमेश्वर आकाशों और पृथ्वी का प्रकाश है। उसके प्रकाश का उदाहरण एक आले का सा है जिसमें एक दीपक हो, वह दीपक शीशे की चिमनी में हो। वह शीशा ऐसा हो जैसे एक चमकता हुआ प्रकाशित नक्षत्र है और वह (दीपक) ज़ैतून के ऐसे मुबारक वृक्ष से प्रकाशित किया गया हो जो न पूर्वी हो और न पश्चिमी। उसका तेल ऐसा है कि निकट है कि वह स्वतः भड़क कर प्रकाशित हो जाए। चाहे उसे अग्नि का स्पर्श न भी हुआ हो। यह प्रकाश, उत्तरोत्तर प्रकाश है। परमेश्वर अपने प्रकाश की ओर जिसे चाहता है मार्ग-दर्शन करता है और परमेश्वर लोगों के लिए उदाहरणों का वर्णन करता है और परमेश्वर प्रत्येक वस्तु का स्थायी ज्ञान रखने वाला है।*

इसके अतिरिक्त क़ुर्आन करीम में हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] को 'रहमतुल्लिआलमीन' (सूरह अलअंबिया-108) ठहराया गया है, जिसके अर्थ ये हैं कि आप[स.] सम्पूर्ण संसार एवं समस्त मानव जाति के लिए दया का साकार प्रारूप हैं परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि मध्यकालीन युगों का स्वभाव रखने वाले बहुत से मुसलमान विद्वान जिन्हें भूलवश रूढ़िवादी भी कहा जाता है यह दृष्टिकोण रखते हैं कि मुसलमानों के लिए यह अनिवार्य है कि वे ग़ैर मुस्लिमों के विरुद्ध सशस्त्र जिहाद में व्यस्त रहें यहां तक कि ग़ैर मुस्लिमों का या तो पूर्ण रूप से सफ़ाया हो जाए या फिर वे इस्लाम को स्वीकार कर लें। क़ुर्आन करीम जिस

इस्लाम को प्रस्तुत करता है उसका जिहाद की इस बिगड़ी हुई विचारधारा से दूर का भी संबंध नहीं है। प्रथम अध्याय में इस विषय के संबंध में क़ुर्आन करीम की कई आयतें प्रस्तुत की जा चुकी हैं, इसलिए यहां उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं।

मैं अन्त में इस बात को पूर्ण विश्वास के साथ दोहरा कर इस बहस को समाप्त करता हूं कि वास्तविकता यही है कि इस्लाम मानव एकता का ज़बरदस्त समर्थक है और इसके साथ-साथ मानव एकता की स्थापना और विश्व-शान्ति को सुनिश्चित बनाने के लिए शान्तिपूर्ण उपाय प्रस्तावित करता है। हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] का इस संबंध में जो महान आदर्श था उसे जानने के लिए हज्जतुलवदाअ[1] के भाषण में से लिए गए कुछ उद्धरण पर्याप्त हैं। आप[स.] ने अपने निधन से पूर्व मानवजाति के समारोह से जो कि आप के जीवन का सबसे बड़ा समारोह था भाषण देते हुए फ़रमाया -

"हे लोगो ! मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुनो क्योंकि मैं नहीं जानता कि भविष्य में कभी मैं इस मैदान में तुम्हारे सामने भाषण दे सकूंगा या नहीं। परमेश्वर ने प्रलय पर्यन्त तुम्हारे प्राणों और धन-संपत्तियों को एक दूसरे के लिए अवैध ठहरा दिया है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए विरासत (पैतृक सम्पत्ति) में उसका भाग निर्धारित कर दिया है। कोई ऐसी वसीयत स्वीकार नहीं की जाएगी जिसमें एक वैध वारिस के साथ अन्याय किया गया हो। बच्चा उस का होगा जिसके घर में वह पैदा हुआ है। एक दुराचारी यदि बच्चे के पिता होने का दावा करेगा तो वह इस्लामी कानून के अधीन दण्ड का पात्र होगा। जो व्यक्ति अपने पिता के अतिरिक्त स्वयं को किसी अन्य की ओर संबद्ध करता है या गलत बयान देकर किसी को अपना स्वामी ठहराता है उस पर परमेश्वर, उसके फ़रिश्तों और समस्त मानवजाति की फटकार होगी।

हे लोगो ! तुम्हारे कुछ अधिकार तुम्हारी पत्नियों पर हैं परन्तु तुम्हारी पत्नियों के कुछ अधिकार तुम पर भी हैं। उन पर तुम्हारा

[1] हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के जीवन का अन्तिम हज। (अनुवादक)

अधिकार यह है कि वे पवित्रता और सतीत्व के साथ जीवन व्यतीत करें और ऐसे कार्य न करें जो पतियों के लिए लोगों में अपमान का कारण हों, परन्तु यदि वे ऐसा कार्य नहीं करतीं जिससे पति के सम्मान पर धब्बा लगता हो तो फिर अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार उन का भोजन, लिबास और निवास का प्रबंध करना तुम्हारा दायित्व है। अपनी पत्नियों से सदैव सद्‌व्यवहार के साथ आचरण करना, क्योंकि अल्लाह तआला ने उनकी अभिभावकता तुम्हारे सुपुर्द की है। स्त्री कमज़ोर है तथा वह अपने अधिकारों की सुरक्षा नहीं कर सकती। विवाह के पश्चात परमेश्वर ने उनके स्वत्वों की अदायगी तुम्हारे सुपुर्द की है। तुम उन्हें परमेश्वर प्रणीत कानूनों के अनुसार अपने घर लाए थे। अतः परमेश्वर ने जो अमानत तुम्हारे सुपुर्द की है उसमें बेईमानी करने के दोषी न बनना।

हे लोगो ! अभी तक कुछ युद्धबन्दी तुम्हारे कब्ज़े में हैं। अतः मैं तुम्हें नसीहत करता हूं कि उन्हें वैसा ही भोजन खिलाओ जो तुम स्वयं खाते हो और वैसा ही लिबास पहनाओ जो तुम स्वयं पहनते हो। यदि उनसे कोई ऐसी ग़लती हो जाए जिसे तुम क्षमा न कर सको तो उन्हें किसी अन्य के सुपुर्द कर दो। वे भी ईश्वर ही की सृष्टि हैं। अतः उन्हें कष्ट देना या दुख पहुंचाना किसी प्रकार भी वैध नहीं हो सकता।

हे लोगो ! जो कुछ मैं तुम से कहता हूं उसे सुनो और स्मरण रखो। समस्त मुसलमान परस्पर भाई-भाई हैं। तुम सब बराबर हो। सब मनुष्य चाहे वे किसी जाति या किसी कबीले से संबंध रखते हों और कैसा ही पद क्यों न रखते हों मनुष्य होने के नाते समान हैं। (यह कहते हुए आपने अपने दोनों हाथ उठाए और दोनों हाथों की उंगलियां मिलाईं और फ़रमाया) जिस प्रकार इन दोनों हाथों की उंगलियां बराबर हैं इसी प्रकार मानवजाति आपस में बराबर हैं। किसी को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह दूसरे पर किसी प्रकार की श्रेष्ठता का दावा करे। तुम सब आपस में

भाई-भाई हो। हे लोगो ! तुम्हारा परमेश्वर एक है और तुम एक आदम की सन्तान हो। किसी अरबी को किसी ग़ैर अरबी पर कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है, न किसी ग़ैर अरबी को अरबी पर श्रेष्ठता है। किसी काले को गोरे पर कोई प्रधानता प्राप्त नहीं है और न किसी गोरे को काले पर कोई प्रधानता है। हां प्रधानता केवल इस सीमा तक है जहां तक कोई परमेश्वर और उसकी प्रजा के अधिकारों को अदा करता है। तुम में सब से अधिक सम्मानित वही है जो परमेश्वर की दृष्टि में सबसे अधिक संयम करने वाला है।

जिस प्रकार यह महीना, यह दिन, यह पृथ्वी पवित्र है उसी प्रकार परमेश्वर ने प्रत्येक मनुष्य के प्राण, धन और सम्मान को पवित्र ठहरा दिया है। किसी व्यक्ति के प्राण, धन एवं सम्मान पर प्रहार करना ऐसा ही अनुचित और अवैध है जैसे इस दिन, इस महीने और इस पृथ्वी की पवित्रता को पैरों तले रौंदना। यह आदेश केवल आज के लिए नहीं है अपितु सदैव के लिए है। मुझे आशा है कि तुम इसे स्मरण रखोगे और इस पर आचरण करते रहोगे यहां तक कि तुम अपने स्त्रष्टा के समक्ष उपस्थित हो जाओ।

आज मैंने जो कुछ तुम से कहा है उसे संसार के किनारों तक पहुंचा दो। हो सकता है जो लोग ये बातें नहीं सुन रहे वे इन बातों से इन लोगों की अपेक्षा अधिक लाभ प्राप्त करें जो सुन रहे हैं।"

(सिहाह सित्तह, तिबरी, इब्ने हिशाम, खमीस, बैहक़ी)

उस महान भाषण का यह एक अति सुन्दर सुललित, सारगर्भित, ओजस्वी उद्धरण है। इसमें हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] ने विशेष तौर पर जिस बात की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराया है वह यह है कि हम सब एक आदम की सन्तान हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि विभिन्न धर्मों को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे इस विश्वव्यापी मानव एकता की धज्जियां उड़ा दें जो एक आदम की सन्तान होने के नाते पैदा होती है।

अध्याय - 3

सामाजिक-आर्थिक शान्ति

- पूंजीवादी व्यवस्था, समाजवाद और इस्लाम में आर्थिक न्याय की कल्पना
- निर्धनता के बावजूद महान उद्देश्यों के लिए खर्च करना
- निर्धनों के लिए खर्च करना
- कृतज्ञता की भावना
- सत्कर्म के प्रतिफल की किसी मनुष्य से आशा न रखना
- भिक्षावृत्ति
- आर्थिक त्याग के लिए शुद्ध धन की शर्त
- ईश्वर के मार्ग में प्रत्यक्ष एवं गुप्त दान
- सामाजिक दायित्व
- इस्लामी इतिहास की एक घटना
- ईश्वर प्रदत्त सब नेमतों से ईश्वर के लिए खर्च करना
- जन-सेवा
- मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा का निषेध
- मदिरापान के कारण होने वाली मौतें
- मदिरापान के कारण होने वाली वार्षिक आर्थिक हानियां

وَمَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَتَثْبِيْتًا مِّنْ اَنْفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍ بِرَبْوَةٍ اَصَابَهَا وَابِلٌ فَاٰتَتْ اُكُلَهَا ضِعْفَيْنِ ۚ فَاِنْ لَّمْ يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ○

(सूरह अलबक़रह - 266)

अनुवाद - *और उन लोगों का उदाहरण जो अपनी धन-संपत्तियां परमेश्वर की प्रसन्नता चाहते हुए और अपने निकटवर्ती लोगों में से कुछ को अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए खर्च करते हैं - ऐसे बाग़ के समान है जो ऊंचे स्थान पर हो और उस पर तीव्र वर्षा हुई हो तो वह बढ़ चढ़ कर अपना फल लाए और यदि उस पर तीव्र वर्षा न हो तो ओस ही उसके लिए पर्याप्त हो और परमेश्वर उस पर जो तुम करते हो गहरी दृष्टि रखने वाला है।*

زُيِّنَ لِلنَّاسِ حُبُّ الشَّهَوٰتِ مِنَ النِّسَآءِ وَالْبَنِيْنَ وَالْقَنَاطِيْرِ الْمُقَنْطَرَةِ مِنَ الذَّهَبِ وَالْفِضَّةِ وَالْخَيْلِ الْمُسَوَّمَةِ وَالْاَنْعَامِ وَالْحَرْثِ ؕ ذٰلِكَ مَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَاللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الْمَاٰبِ ○

(सूरह आले इमरान - 15)

अनुवाद - *लोगों के लिए स्वाभाविक तौर पर पसन्द की जाने वाली वस्तुओं की अर्थात स्त्रियों की, सन्तान की और ढेरों-ढेर सोने-चांदी की और विशेष निशान के साथ दागे हुए घोड़ों की तथा पशुओं और खेतों का प्रेम सुन्दर करके प्रदर्शित किया गया है। यह लौकिक जीवन का अस्थायी सामान है और परमेश्वर वह है जिस के पास अत्युत्तम लौटने का स्थान है।*

इस्लाम ने हमें उन स्थलों पर भी विस्तृत निर्देश दिए हैं जहां सामाजिक और आर्थिक क्षितिज परस्पर मिलते हुए दिखाई देते हैं। यदि इस्लाम की इन शिक्षाओं को लागू किया जाए तो हमारे अहर्निश देदीप्यमान और मनमोहक हो जाएंगे।

पूंजीवादी व्यवस्था, समाजवाद एवं इस्लाम में आर्थिक न्याय की कल्पना

आर्थिक न्याय का नारा (उद्घोष) तो बड़ा चित्ताकर्षक है और स्वतंत्र मार्किट मितव्यता रखने वाली पूंजीवादी व्यवस्था और 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद'[1] के तर्क पर स्थापित वैज्ञानिक समाजवाद दोनों यही नारा लगाते हैं। एक ओर पूंजीवादी व्यवस्था यह सिद्ध करने का प्रयत्न करती है कि एकमात्र वही आर्थिक न्याय उपलब्ध करता है, दूसरी ओर वैज्ञानिक समाजवाद का भी यही दावा है कि उसके अतिरिक्त कोई आर्थिक न्याय स्थापित नहीं हो सकता। मैं क्षमा चाहते हुए दोनों के संबंध में अपनी निराशा प्रकट करता हूं कि ये दोनों ही आर्थिक न्याय के सुनहरी सिद्धान्त को अपनाने और उस पर कार्यरत होने में असफल रहे हैं। तथापि इस विषय पर विस्तारपूर्वक बहस हम आगे चलकर करेंगे।

इस्लाम में न्याय की कल्पना बहुत विशाल और व्यापक है और यह कल्पना इस्लामी शिक्षा के सब पहलुओं पर व्याप्त है, किन्तु केवल यही नहीं अपितु इस्लाम इस दिशा में एक पग और आगे बढ़ता है। वैज्ञानिक समाजवाद में यह प्रयास किया जाता है कि समाज की

① कार्लमार्क्स और फ्रैडरिक की निर्मित विचारधारा (सिद्धान्त) जिसके अनुसार तत्त्व मस्तिष्क से श्रेष्ठ है। मस्तिष्क स्वयं तत्त्व का उन्नत रूप है तथा समय और स्थान तत्त्व के रूप हैं। अंग्रेज़ी में इसे Dialectical Materialism कहा जाता है। (अनुवादक)

आर्थिक ऊंच-नीच को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाए। धनवान और निर्धन में कोई अन्तर शेष न रहे और सब लोग राष्ट्रीय धन से समान रूप से लाभ प्राप्त करें। समाज में न निर्धन हों और न उनकी ऐसी आवश्यकताएं हों जो पूर्ण न हो सकें। इस का परिणाम यह होगा कि अधिकारों की मांग का प्रश्न ही नहीं उठेगा और धनवानों को दुर्दशाग्रस्त लोगों से यह खतरा नहीं होगा कि वे उनकी संचित धनराशि को लूट लेंगे जबकि पूंजीवादी व्यवस्था में प्राय: सब के लिए समान अवसर उपलब्ध कराने की बात की जाती है। वे धनराशि के समान विभाजन के स्थान पर स्वतंत्र अर्थव्यवस्था पर बल देते हैं ताकि सब को अपनी कार्यकुशलता दिखाने के लिए समान अवसर प्राप्त हो सकें। इस प्रकार जिस समाज का निर्माण होता है उसमें सदैव लोगों को अपनी मांगें प्रस्तुत करने की आवश्यकता रहती है। सरकार या पूंजीपतियों से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए दबाव डालने वाले दल बनाए जाते हैं। ट्रेड यूनियनों की स्थापना होती है जो कर्मचारियों और श्रमिकों के अधिकारों के लिए कटिबद्ध रहती हैं किन्तु इसके बावजूद ऐसे समाज में कर्मचारी और श्रमिक वर्ग के लोग सदैव ही हीनभावना का शिकार रहते हैं। दूसरी ओर यदि वैज्ञानिक समाजवाद को आदर्श रूप में लागू किया जाए तो समाज के किसी वर्ग को किसी प्रकार की मांग करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। या तो समाज इतना समृद्ध होगा कि सब की आवश्यकता का ध्यान रखते हुए राष्ट्रीय धन का न्यायसंगत विभाजन संभव होगा। या फिर समाज इतना निर्धन होगा कि वह किसी की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकेगा और सब लोग एक ही प्रकार की दुर्दशा का शिकार होंगे। दोनों रूपों में एक ऐसा समाज पनपेगा जिसमें अधिकारों की मांग एक निरर्थक बात होगी जबकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में हर ओर अधिकारों की मांगें दृष्टिगोचर होती हैं। इस व्यवस्थानुसार निर्धनों को अपने असंतोष

को प्रकट करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होना चाहिए और उन्हें ऐसे अवसर भी उपलब्ध होने चाहिएं जहां उनकी बात सुनी जाए। अत: इस स्थिति में अन्तत: दबाव-दल बनेंगे, हड़तालें होंगी तथा मालिक और मज़दूर के विवाद होंगे और कारखानों पर ताले पड़ जाएंगे।

इस्लाम एक ऐसी विचारधारा पैदा करना चाहता है जिसके द्वारा शासक वर्ग और धनवानों को यह स्मरण रहे कि यह न्यायसंगत अर्थव्यवस्था की स्थापना उनके अपने ही हित में है। इस्लाम शासक वर्ग और पूंजीपतियों को आग्रहपूर्वक आदेश देता है कि वे सदैव दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखें। कमज़ोर और निर्धन वर्ग के मूल आर्थिक अधिकार कभी नष्ट न होने दें। व्यवसाय के चयन की आज़ादी, समान अवसर और जीवन की मूल आवश्यकताएं उनके मूल अधिकार हैं जो उन्हें प्राप्त होने चाहिएं। इस सोच और विचारधारा के अभाव से मनुष्यों ने जीवन के संघर्ष में बड़े दुख उठाए हैं और मानव इतिहास में उपद्रव एवं उत्पात के असंख्य काले अध्याय लिखे गए हैं। समाज को ऐसे दुखों से सुरक्षित रखने के लिए इस्लाम ने जो शिक्षा दी है उसमें लेने और समेटने से अधिक देने पर बल दिया गया है। शासक तथा पूंजीवादी वर्ग का कर्त्तव्य है कि वह हमेशा इस बात की निगरानी करते रहें कि समाज का कोई वर्ग मानव के मूल अधिकारों से इस सीमा तक वंचित न हो कि उचित और सम्मानजनक जीवनयापन भी न कर सके। एक वास्तविक इस्लामी शासन का कर्त्तव्य है कि जनता की मूल आवश्यकताओं का पूरा अहसास रखे और उनकी उपलब्धता के लिए उचित प्रबंध करे। इससे पूर्व कि लोगों के हृदयों में दबे हुए दुख दिखाई देने लगें, मौन शोक आर्तनाद करने लगें और मानव आवश्यकताएं व्यवस्था और समाज की शान्ति के लिए ख़तरा बन जाएं वे आवश्यकताएं पूर्ण होनी चाहिएं और उन शोकों और दुखों के कारण का समाधान होना चाहिए।

जीवन की मूल आवश्यकताएं उपलब्ध करने की दृष्टि से यहां प्रत्यक्ष तौर पर इस्लाम और समाजवाद में थोड़ी सी समानता दिखाई देती है, परन्तु वास्तव में यह एक ऊपरी समानता है। अन्तर यह है कि इस्लाम अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उन ज़बरदस्ती करने वाले माध्यमों का उपयोग नहीं करता जो वैज्ञानिक समाजवाद ने प्रस्तुत किए हैं। इस संक्षिप्त समय में मैं विस्तार से तो यह वर्णन नहीं कर सकता कि इस्लाम किस प्रकार इस महान लक्ष्य-प्राप्ति को संभव बनाता है परन्तु संक्षेप में इतना अवश्य कहूंगा कि इस्लाम ज़बरदस्ती भौतिकता के दर्शन के समान इस समस्या को एक निष्प्राण और मशीन पद्धति में नहीं लेता। इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था मानव मनोविज्ञान के स्वाभाविक नियमों से पूर्ण रूप से समन्वित है। अन्य बातों के अतिरिक्त इस्लाम एक ऐसे वातावरण को पैदा करता है जिसमें अपने अधिकारों की मांग के स्थान पर दूसरों के अधिकारों का सम्मान पैदा हो जाता है। एक वास्तविक इस्लामी समाज के लोग दूसरों के दुख-दर्द की समुचित अनुभूति और संवेदना के कारण अपने अधिकारों से अधिक उन मांगों की चिन्ता करते हैं जो समाज उन से करता है।

हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] ने अपने अनुयायियों को बार-बार ये नसीहतें की हैं कि मज़दूरों को उनके अधिकार से बढ़कर दो। मज़दूर की मज़दूरी उसका पसीना सूखने से पहले दे दो। अपने अधीन लोगों से मेहनत और परिश्रम के ऐसे काम न लो जिनके करने की स्वयं तुम में शक्ति नहीं। जहां तक हो सके अपने नौकरों को वैसा ही भोजन खिलाओ जैसा तुम अपने घर वालों को खिलाते हो और वैसा ही कपड़ा पहनाओ जैसा तुम स्वयं पहनते हो। निर्बल पर किसी प्रकार का अत्याचार न करो अन्यथा तुम परमेश्वर के समक्ष उत्तरदायी होगे। कभी-कभी अपने नौकरों को अपने साथ भोजन कराओ और स्वयं उनको सामने बैठाकर भोजन प्रस्तुत करो ताकि तुम मिथ्या अभिमान और घृणा से बच सको।

दरिद्रता के बावजूद महान उद्देश्यों के लिए व्यय करना

क़ुर्आन करीम ने मानव सम्मान और उसकी मर्यादा की सुरक्षा पर अत्यधिक बल दिया है। निर्धनों और मुहताजों की आवश्यकताएं उनके स्वाभिमान को दृष्टिगत रखते हुए किस प्रकार पूर्ण करनी चाहिएं, इसके संबंध में निम्नलिखित आयत एक नैतिक कार्य-प्रणाली उपलब्ध करती है। इसमें उन विशेषताओं का वर्णन है जो उपकार करने वालों में होनी चाहिएं और उन्हीं विशेषताओं से युक्त लोगों के लिए परमेश्वर ने इससे पूर्व की आयत में क्षमा के पुरस्कार का वर्णन किया है -

الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ فِى السَّرَّآءِ وَالضَّرَّآءِ وَالْكٰظِمِيْنَ الْغَيْظَ وَالْعَافِيْنَ عَنِ النَّاسِ ؕ وَاللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ○

(सूरह आले इमरान - 135)

अनुवाद - *(अर्थात) वे लोग जो समृद्धि में भी ख़र्च करते हैं और तंगी में भी और क्रोध को दबा जाने वाले और लोगों से (उनके) दोषों को (देखकर) अनदेखा करने वाले हैं और परमेश्वर उपकार करने वालों से प्रेम करता है।*

निर्धनों के लिए खर्च करना

दान-पुण्य के जो अर्थ सामान्यत: समझे जाते हैं उसके दो पहलू हैं -

एक ओर दान देने वाले का गुणगान और प्रशंसा होती है तो दूसरी ओर लेने वाले को यदि अपमान का नहीं तो कम से कम तिरस्कार का सामना अवश्य करना पड़ता है। मात्र दान लेने के कारण वह व्यक्ति अपने स्तर से गिर जाता है और उसके सम्मान में कमी आ

जाती है। इस्लाम ने एक क्रान्तिकारी भावना के रूप में सदका-ख़ैरात (दान) की इस कल्पना को बिल्कुल परिवर्तित करके रख दिया है।

क़ुर्आन करीम की एक आयत में इस बात का अति सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है कि क्यों समाज में कुछ लोग बहुत धनवान होते हैं और कुछ अत्यन्त निर्धनता का शिकार हो जाते हैं। फ़रमाया -

وَفِيٓ أَمۡوَٰلِهِمۡ حَقّٞ لِّلسَّآئِلِ وَٱلۡمَحۡرُومِ ○

(सूरह अज़्ज़ारियात - 20)

अनुवाद - *और उनकी धन-सम्पत्तियों में मांगने वालों और न मांगने वाले मुहताजों के लिए एक हक़ है।*

इस आयत में शब्द 'हक़' के अर्थ को पूर्ण रूप से समझा नहीं गया। यह शब्द जहां दान देने वालों को बताता है कि मुहताजों और निर्धनों से तुम्हारा क्या व्यवहार होना चाहिए। वहां यह शब्द दान लेने वालों की सोच को भी उचित दिशा देता है। दान देने वाले को यह स्मरण कराया गया है कि जो धन वह निर्धनों को दे रहा है वह वास्तव में उनका धन नहीं है तथा शब्द 'हक़' में यह सन्देश दिया गया है कि दान स्वीकार करने वाले को लज्जित होने या किसी प्रकार की मानसिक उलझन का शिकार होने की बिल्कुल कोई आवश्यकता नहीं। परमेश्वर ने उसे यह अधिकार दिया है कि वह अच्छा और सम्मानजनक जीवन व्यतीत करे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस समाज में कुछ लोग बिल्कुल दरिद्र और कंगाल बन कर रह जाएं या जीवित रहने के लिए भीख मांगने पर विवश हो जाएं। वह समाज स्वस्थ नहीं कहला सकता। उसमें निश्चय ही कोई ऐसा दोष होगा जिससे यह भयानक स्थिति पैदा हुई। एक स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था में कोई व्यक्ति इतना ग़रीब नहीं होना चाहिए कि वह जीवन की मूल आवश्यकताओं से भी वंचित हो और जीवन को बचाए रखने

के लिए हाथ फैलाने पर विवश हो।

जैसा कि मैं पहले वर्णन कर चुका हूं कि ईश्वर प्रदत्त शिक्षा मानव प्रकृति के बिलकुल अनुकूल है। यदि दान के आदेश से संभावित तौर पर कुछ लोगों का स्वाभिमान और आत्मसम्मान आहत हो सकता हो तो क़ुर्आन करीम ने इसके निवारण का सामान भी कर दिया है और इस प्रकार ग़रीबों को हर प्रकार की लज्जा और शर्मिन्दगी से बचा लिया है।

कृतज्ञता की भावना

ग़रीबों की सहायता को उन का अधिकार समझा जाए तो यह ख़तरा सदैव मौजूद रहता है कि कहीं ऐसा न हो कुछ लोग उपकार पर उल्टी कृतघ्नता करने लगें। उन पर उपकार किया जाए तो वे कह दें कि जो कुछ हमें दिया गया है वह हमारा अधिकार था। इसलिए हमें किसी प्रकार की कृतज्ञता व्यक्त करने की कदापि कोई आवश्यकता नहीं है। यदि यह वृत्ति सर्वजनीन हो जाए तो इसके तो यही अर्थ होंगे कि शालीनता और अच्छे आचरण समाप्त हो गए हैं। इसका यही कारण है कि क़ुर्आन करीम उपकार स्वीकार करने वाले को बार-बार स्मरण कराता है कि उसका यह कर्त्तव्य है कि वह कृतज्ञ बने। उपकार चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो उसे चाहिए कि अपने उपकार करने वाले का धन्यवाद अदा करे। एक मोमिन को बार-बार यह बताया गया है कि परमेश्वर किसी कृतघ्न मनुष्य से प्रेम नहीं करता।

إِنْ تَكْفُرُوْا فَإِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ عَنْكُمْ ۟ وَلَا يَرْضٰى لِعِبَادِهِ الْكُفْرَ ۚ وَإِنْ
تَشْكُرُوْا يَرْضَهُ لَكُمْ ۭ وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِّزْرَ أُخْرٰى ۭ ثُمَّ إِلٰى رَبِّكُمْ
مَّرْجِعُكُمْ فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ۭ إِنَّهٗ عَلِيْمٌۢ بِذَاتِ الصُّدُوْرِ ○

(सूरह अज़्ज़ुमर - 8)

अनुवाद - *यदि तुम इन्कार करो तो निश्चय ही परमेश्वर तुम से निस्पृह है और वह अपने बन्दों के लिए कुफ़्र को पसन्द नहीं करता और यदि तुम धन्यवाद करो तो वह इसे तुम्हारे लिए पसन्द करता है। और कोई बोझ उठाने वाली हस्ती किसी का बोझ नहीं उठाएगी फिर तुम सब को अपने प्रतिपालक की ओर लौटना है, अत: वह तुम्हें उन कर्मों से अवगत करेगा जो तुम किया करते थे। निश्चय ही वह हृदय के भेदों को भली-भांति जानता है।*

हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] कृतज्ञता के महत्त्व पर अधिक बल देते हुए मोमिनों को स्मरण कराते हैं :-

مَنْ لَمْ يَشْكُرِ النَّاسَ لَمْ يَشْكُرِ اللّٰهِ

(सुननुत्तिरमिज़ी, अब्वाबुलबिर्रेवस्सिलते - बाब मा जाआ फ़िश्शुकरे लिमन अहसना इलैका)

अर्थात जो व्यक्ति मनुष्य का धन्यवाद अदा नहीं करता वह परमेश्वर का भी धन्यवाद अदा नहीं करता।

इससे अभिप्राय यह है कि तो व्यक्ति मानवजाति का धन्यवाद नहीं करता वह यदि परमेश्वर का धन्यवादी हो भी तो उसका धन्यवाद परमेश्वर के यहां स्वीकार नहीं किया जाएगा। सूरह अज़्ज़ुमर की उपरोक्त आयत शालीनता, उच्च आचरण और कृतज्ञता की भावना को कदापि निरुत्साहित नहीं करती। इस आयत में तो उपकार स्वीकार करने वाले को यह मूक सन्देश दिया गया है कि उसे किसी प्रकार की हीन भावना में ग्रस्त होने की कदापि कोई आवश्यकता नहीं है और न ही उपकार स्वीकार करने से उसकी मान-मर्यादा आहत होनी चाहिए। हां किसी का कृतज्ञ होना न केवल मानव-मर्यादा के विपरीत नहीं है अपितु यह तो एक ऐसी विशेषता है जो मर्यादा में बढ़ोतरी का

कारण बन जाती है। इस्लाम उपकार करने वाले को भी एक सर्वथा भिन्न और अनूठी पद्धति अपनाने की शिक्षा देता है। सामान्यतया यह बात मर्यादा और विनय के विपरीत समझी जाती है कि कृतज्ञता को अधिकार समझ कर स्वीकार किया जाए। ऐसी नम्रता प्रदर्शित करना संस्कृति का अंग है, परन्तु इस सामान्य सभ्य शैली में और इस्लाम की उच्च नैतिक शिक्षा में एक मूलभूत अन्तर है। इस्लाम नेकी, भलाई एवं जन-सेवा का आदेश इसलिए नहीं देता कि ऐसे कार्यों के द्वारा यश प्राप्ति हो अथवा स्वाभाविक सेवा-भावना की संतुष्टि का साधन जुटाया जाए। इस्लाम के निकट जन-सेवा का उच्चतम उद्देश्य केवल परमेश्वर की प्रसन्नता प्राप्ति है। बार-बार बल दिया गया है कि शुभ कर्म मात्र परमेश्वर के लिए होने चाहिएं ताकि हमें परमेश्वर की प्रसन्नता प्राप्त हो और वही इस का प्रतिफल प्रदान करे।

इससे यह बात भली-भांति स्पष्ट हो जाती है कि जब एक सच्चा और वास्तविक मुसलमान किसी मुहताज की आवश्यकता की पूर्ति करता है तो उसके समक्ष कोई व्यक्तिगत हित नहीं होता, न ही वह किसी व्यक्ति को प्रसन्न करना चाहता है अपितु उसका एकमात्र उद्देश्य केवल अपने स्रष्टा और स्वामी परमेश्वर को प्रसन्न करना होता है। वह उस परमेश्वर की प्रसन्नता चाहता है जिसने वह सब कुछ उसे प्रदान किया जिसका आज वह मालिक है।

अत: इस सिद्धान्त के अनुसार वह दूसरों पर जो कुछ भी खर्च करता है वह कोई उपकार नहीं करता अपितु परमेश्वर के उन उपकारों का धन्यवाद अदा करता है जो स्वयं उसके ऊपर हैं। इस शानदार विचारधारा और व्यवहार की नींव क़ुर्आन करीम की एक प्रारंभिक आयत है जिसमें कहा गया है कि -

وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ○

(सूरह अलबक़रह - 4)

अनुवाद - *और जो कुछ हम उन्हें आजीविका प्रदान करते हैं वे उसमें से खर्च करते हैं।*

अत: एक सच्चा मोमिन यदि यह नहीं चाहता कि किसी उपकार के प्रतिफल में लोग उसका धन्यवाद अदा करें तो किसी आडम्बरजन्य विनम्रता या मात्र दिखावे की सभ्यता के वशीभूत नहीं होता, वह तो वास्तव में इस बात को अपनी आस्था का अभिन्न अंश समझता है और कहता है कि मैंने जिस व्यक्ति पर उपकार किया है उस पर यदि किसी का धन्यवाद अदा करना अनिवार्य है तो वह केवल परमेश्वर का अस्तित्व है। यही कारण है कि वास्तविक मोमिन जो ईमान के अर्थ से परिचित हैं जब कोई उनके उपकारों का धन्यवाद अदा करे तो वे अत्यन्त लज्जा महसूस करते हैं। क़ुर्आन करीम यह घोषणा करता है -

وَيُطْعِمُوْنَ الطَّعَامَ عَلٰى حُبِّهٖ مِسْكِيْنًا وَّيَتِيْمًا وَّاَسِيْرًا ○ اِنَّمَا نُطْعِمُكُمْ لِوَجْهِ اللّٰهِ لَا نُرِيْدُ مِنْكُمْ جَزَآءً وَّلَا شُكُوْرًا ○

(सूरह अद्दहर आयत 9, 10)

अनुवाद - *और वे खाने को उसकी चाहत के होते हुए, असहायों, अनाथों और क़ैदियों को खिलाते हैं। (और कहते हैं) हम तुम्हें मात्र परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए खिला रहे हैं। हम तुम से कदापि न कोई प्रतिफल चाहते हैं और न कोई कृतज्ञता।*

मात्र भोजन करा देना ही पर्याप्त नहीं अपितु जीवन की विसंगतियों, कष्टों एवं भूख की पीड़ा को जानते हुए लोगों के दुखों के भागीदार होकर तथा किसी कृतज्ञता की आशा के बिना भोजन कराना एक वास्तविक मोमिन के यथायोग्य कार्य है। उपरोक्त आयतों का सौन्दर्य आंखों को चुंधिया देता है। यदि यह शिक्षा दी जाती कि मोमिन एक पाखंड जन्य कृत्रिम विनय और नम्रता प्रदर्शित करते हुए लोगों की

कृतज्ञता को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया करें मानो कृतज्ञता स्वीकार करना उनकी प्रतिष्ठा के विपरीत है तो दुराचार के फलने फूलने का भय था। जब एक व्यक्ति रस्मी तौर पर यह कहता है कि धन्यवाद की कोई आवश्यकता नहीं तो वास्तव में वह जानता है कि इस प्रकार वह उस व्यक्ति की दृष्टि में और भी अधिक आदरणीय हो जाएगा जिस पर उसने उपकार किया। इसके विपरीत इस्लाम की शिक्षा कहीं अधिक सुन्दर और पवित्र भावनाओं का आदर्श प्रस्तुत करती है। उपकार करने वाले को स्मरण कराया गया है कि वह अपने धन को एक ही समय में दो खरीदारों के हाथ विक्रय नहीं कर सकता। नेकी का काम या तो परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए हो सकता है या फिर ईश्वरेतर की प्रसन्नता के लिए हो सकता है। यह आयत बताती है कि दोनों प्रकार की भावनाएं एक ही समय में इकट्ठी नहीं हो सकतीं। परमेश्वर का एक निष्कपट बन्दा जब किसी मुहताज की आवश्यकता को पूरा करते समय यह कहता है कि मेरी भावना तो वास्तव में मात्र परमेश्वर की प्रसन्नता प्राप्ति है तो इस प्रकार वह उस मुहताज को भी स्मरण करा रहा होता है कि उसका वास्तविक उपकारी वह नहीं अपितु परमेश्वर है। स्पष्ट है कि सोच की इस प्रक्रिया से उस मुहताज व्यक्ति के हृदय में किसी प्रकार की हीन भावना के पैदा होने की संभावना नहीं रहती।

शुभ कर्म के प्रतिफल की किसी मनुष्य से आशा न रखना

इस्लामी शिक्षा के अनुसार किसी व्यक्ति से उत्तम शिष्टाचार का व्यवहार करना प्रचलित सभ्यता के बाह्य रूप से प्रभावित होकर क्षुद्र स्वभाव के रूप में नहीं होना चाहिए अपितु समस्त शिष्टाचार की जड़ें परमेश्वर के प्रति आस्था में सन्निविष्ट होनी चाहिएं। मुहताजों को दान उस क्षुद्र भावना से नहीं देना चाहिए कि उसके प्रतिफल में उस से

भी कभी कोई लाभ प्राप्त करेंगे।

وَلَا تَمۡنُنۡ تَسۡتَکۡثِرُ ۪ۙ○

(सूरह अलमुद्दस्सिर आयत 7)

अनुवाद - *और अधिक लेने के लिए उपकार न किया करो।*

इस्लाम की शिक्षा यह है कि यदि आप ने किसी पर उपकार किया है तो उसे इस प्रकार भूल जाएं जैसे कुछ भी नहीं हुआ। उपकार जताना तथा नेकी पर गर्व करना और उसे बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करना नेकी को नष्ट कर देना है। एक वास्तविक मोमिन कदापि ऐसा नहीं करता। उसकी कार्य-प्रणाली निम्नलिखित आयतों में वर्णन की गई है। ये आयतें गलत और सही कार्य प्रणाली में बड़ी ठोस तुलना प्रस्तुत करती हैं -

مَثَلُ الَّذِیۡنَ یُنۡفِقُوۡنَ اَمۡوَالَہُمۡ فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ کَمَثَلِ حَبَّۃٍ اَنۡۢبَتَتۡ سَبۡعَ سَنَابِلَ فِیۡ کُلِّ سُنۡۢبُلَۃٍ مِّائَۃُ حَبَّۃٍ ؕ وَاللّٰہُ یُضٰعِفُ لِمَنۡ یَّشَآءُ ؕ وَاللّٰہُ وَاسِعٌ عَلِیۡمٌ ○ اَلَّذِیۡنَ یُنۡفِقُوۡنَ اَمۡوَالَہُمۡ فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ ثُمَّ لَا یُتۡبِعُوۡنَ مَاۤ اَنۡفَقُوۡا مَنًّا وَّلَاۤ اَذًی ۙ لَّہُمۡ اَجۡرُہُمۡ عِنۡدَ رَبِّہِمۡ ۚ وَلَا خَوۡفٌ عَلَیۡہِمۡ وَلَا ہُمۡ یَحۡزَنُوۡنَ ○ قَوۡلٌ مَّعۡرُوۡفٌ وَّمَغۡفِرَۃٌ خَیۡرٌ مِّنۡ صَدَقَۃٍ یَّتۡبَعُہَاۤ اَذًی ؕ وَاللّٰہُ غَنِیٌّ حَلِیۡمٌ ○ یٰۤاَیُّہَا الَّذِیۡنَ اٰمَنُوۡا لَا تُبۡطِلُوۡا صَدَقٰتِکُمۡ بِالۡمَنِّ وَالۡاَذٰی ۙ کَالَّذِیۡ یُنۡفِقُ مَالَہٗ رِئَآءَ النَّاسِ وَلَا یُؤۡمِنُ بِاللّٰہِ وَالۡیَوۡمِ الۡاٰخِرِ ؕ فَمَثَلُہٗ کَمَثَلِ صَفۡوَانٍ عَلَیۡہِ تُرَابٌ فَاَصَابَہٗ وَابِلٌ فَتَرَکَہٗ صَلۡدًا ؕ لَا یَقۡدِرُوۡنَ عَلٰی شَیۡءٍ مِّمَّا کَسَبُوۡا ؕ وَاللّٰہُ لَا یَہۡدِی الۡقَوۡمَ الۡکٰفِرِیۡنَ ○

(सूरह अलबक़रह आयत 262 से 265)

अनुवाद - *उन लोगों का उदाहरण जो अपने धन परमेश्वर के मार्ग में खर्च करते हैं ऐसे बीज की भांति है जो सात बालियां उगाता हो प्रत्येक बाली में सौ दाने हों और परमेश्वर जिसे चाहे (उस से भी) अधिक बढ़ा कर देता है और परमेश्वर बढ़ाने वाला (और) स्थायी ज्ञान रखने वाला है। वे लोग जो अपने माल परमेश्वर के मार्ग में ख़र्च करते हैं फिर वे जो खर्च करते हैं उसका उपकार जताते हुए या कष्ट देते हुए पीछा नहीं करते उनका प्रतिफल उनके रब्ब के पास है और उन को कोई भय नहीं होगा और न वे चिन्तातुर होंगे। अच्छी बात कहना और क्षमा कर देना अधिक श्रेष्ठ है ऐसे दान से कि उसके पीछे कोई कष्ट की आशंका हो और परमेश्वर निस्पृह (और) सहनशील है। हे लोगो जो ईमान लाए हो ! अपने दान को उपकार जता कर या कष्ट पहुंचा कर नष्ट न किया करो उस व्यक्ति के समान जो अपना धन लोगों को दिखाने के लिए खर्च करता है और न तो परमेश्वर पर ईमान रखता है और न प्रलय के दिन पर। अत: उसका उदाहरण एक ऐसी चट्टान की भांति है जिस पर मिट्टी (की तह) हो फिर उस पर मूसलाधार वर्षा हो तो उसे चटियल छोड़ जाए। जो कुछ वे कमाते हैं उसमें से किसी वस्तु पर वे कोई अधिकार नहीं रखते और परमेश्वर काफ़िर (परमेश्वर और उसके अवतारों का इन्कार करने वाली) जाति का मार्ग-दर्शन नहीं करता।*

इसी प्रकार क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

وَاَمَّاالسَّآئِلَ فَلَاتَنْهَرْ ○

(सूरह अज़्ज़ुहा आयत 11)

अनुवाद - *और जहां तक मांगने वाले का संबंध है तू उसे न झिड़क।*

भिक्षावृत्ति

इस्लाम भिखारी के साथ भी सम्मानपूर्वक व्यवहार करने का आदेश देता है और कठोरतापूर्वक बात करने से सख्ती से मना करता है। यद्यपि भिक्षावृत्ति को पसन्द नहीं किया गया अपितु उसे निरुत्साहित किया गया है परन्तु अत्यन्त आवश्यकता के समय मांगने के अधिकार को कायम रखा गया है और किसी व्यक्ति को ऐसे मांगने वालों के स्वाभिमान को ठेस पहुंचाने की आज्ञा नहीं दी गई है जो बेचारे हाथ फैलाने पर विवश हों।

इस्लाम के प्रारंभिक युग में इसके बावजूद कि मांगने वालों का आत्म-सम्मान पूर्ण रूप से सुरक्षित था फिर भी वे लोग भली भांति समझते थे कि भीख न मांगना भीख मांगने से श्रेष्ठ है। एक बार हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] ने मांगने वाले और देने वाले की तुलना करते हुए फ़रमाया -

اَلْيَدُ الْعُلْيَا خَيْرٌ مِّنَ الْيَدِ السُّفْلٰى

अर्थात देने वाला हाथ लेने वाले हाथ से श्रेष्ठ है। इस शिक्षा का परिणाम था कि कुछ मुसलमानों ने ग़रीबी में मरना स्वीकार कर लिया परन्तु जीवित रहने के लिए भीख मांगना पसन्द न किया। ऐसे लोगों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए जो परमेश्वर के मार्ग में प्रयासरत हैं और गरीबी के हाथों विवश हैं क़ुर्आन करीम ने समस्त समाज का ध्यानाकर्षण किया है। अतः फ़रमाया -

لِلْفُقَرَآءِ الَّذِيْنَ اُحْصِرُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ ضَرْبًا فِي الْاَرْضِ ۫ يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ اَغْنِيَآءَ مِنَ التَّعَفُّفِ ۚ تَعْرِفُهُمْ بِسِيْمٰهُمْ ۚ لَا يَسْـَٔلُوْنَ النَّاسَ اِلْحَافًا ؕ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ○

(सूरह अलबक़रह आयत 274)

अनुवाद - *(यह खर्च) उन मुहताजों के लिए है जो परमेश्वर के मार्ग में घेरे में बन्द कर दिए गए (और) वे पृथ्वी में चलने फिरने की शक्ति नहीं रखते। एक अज्ञान (उनके) प्रश्न से बचने (की आदत) के कारण उन्हें धनवान समझता है (परन्तु) तू उन के लक्षणों से उन्हें पहचानता है। वे पीछे पड़कर लोगों से नहीं मांगते और जो कुछ भी तुम धन में से खर्च करो तो परमेश्वर उसको भली भांति जानता है।*

यह बात निम्नलिखित आयत से और अधिक स्पष्ट हो जाती है -

مَآ اَفَآءَ اللّٰهُ عَلٰى رَسُوْلِهٖ مِنْ اَهْلِ الْقُرٰى فَلِلّٰهِ وَلِلرَّسُوْلِ وَلِذِى الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ۙ كَىْ لَا يَكُوْنَ دُوْلَةًۢ بَيْنَ الْاَغْنِيَآءِ مِنْكُمْ ؕ وَمَآ اٰتٰىكُمُ الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ ۚ وَمَا نَهٰىكُمْ عَنْهُ فَانْتَهُوْا ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۝

(सूरह अलहश्र आयत 8)

अनुवाद - *परमेश्वर ने कुछ बस्तियों के निवासियों के धन में से अपने रसूल को जो बतौर ग़नीमत प्रदान किया है तो वह परमेश्वर के लिए और रसूल के लिए है और निकट संबंधियों, अनाथों, असहायों और यात्रियों के लिए ताकि ऐसा न हो कि यह (युद्ध के पश्चात पराजित शत्रु रण-भूमि में छोड़ा हुआ धन अर्थात ग़नीमत) तुम्हारे धनवान लोगों की परिधि में चक्कर लगाता रहे और रसूल जो तुम्हें दे तो उसे ले लो और जिससे तुम्हें रोके उस से रुक जाओ और परमेश्वर का संयम धारण करो। निश्चय ही परमेश्वर दण्ड देने में बहुत कठोर है।*

हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने एक हदीस में

भी यह सिद्धान्त का वर्णन किया है। इस हदीस का संबंधित भाग निम्नलिखित है :-

عَنْ حَكِيْمِ بْنِ حِزَامٍ رَضِىَ اللّٰهُ عَنْهُ، عَنِ النَّبِيِّ صَلَّى اللّٰهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ: اَلْيَدُ الْعليَا خَيْرٌ مِّنَ الْيَدِ السُّفْلٰى، وَابْدَأْ بِمَنْ تَعُوْلُ وَ خَيْرُ الصَّدَقَةِ عَنْ ظَهْرِ غِنىً - وَمَنْ يَسْتَعْفِفْ يُعِفَّهِ اللّٰهِ، وَمَنْ يَسْتَغْنِ يُغْنِهِ اللّٰهُ-

(सही बुख़ारी - किताबुज़्ज़कात - बाब ला सदक़ा इल्ला अन ज़हरे ग़िना)

अनुवाद - *हज़रत हकीम बिन हिज़ाम वर्णन करते हैं कि रसूल करीम*[स.अ.व.] *ने फ़रमाया - ऊपर वाला हाथ नीचे वाले हाथ से श्रेष्ठ है। मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वप्रथम अपने परिवार पर खर्च करे। श्रेष्ठ दान वह है जो एक धनवान मनुष्य अपने खर्चों के पश्चात बचे हुए धन में से देता है। जो कोई दूसरे के आगे हाथ फैलाने से बचता है परमेश्वर उसे देगा और दूसरों के आगे हाथ फैलाने से सुरक्षित रखेगा। जो कोई समृद्धि प्रकट करता है परमेश्वर उसे समृद्धशाली बना देगा।*

इस हदीस में हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] फ़रमा रहे हैं कि तुम ऊपर वाला हाथ बन जाओ अर्थात दान दिया करो और दूसरों की सेवा किया करो, न यह कि लोग तुम पर उपकार करें और तुम दान लेने वाले बन जाओ।

आर्थिक त्याग के लिए शुद्ध धन की शर्त

दान के नियमों के अतिरिक्त यह बात भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है कि आप क्या वस्तु खर्च कर रहे हैं। यदि आप कोई ऐसी वस्तु दान करते हैं जो यदि आप को दी जाए और आप उसे स्वीकार करते समय लज्जा महसूस करें तो आप का दान वास्तव में दान नहीं है। क़ुर्आन

करीम के निकट यह तो किसी वस्तु को कूड़े में फेंक देने के पर्याय है। अतः फ़रमाया -

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّاۤ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۗ وَلَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ وَلَسْتُمْ بِاٰخِذِيْهِ اِلَّاۤ اَنْ تُغْمِضُوْا فِيْهِ ؕ وَاعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ حَمِيْدٌ ○

(सूरह अलबक़रह - 268)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो ! जो कुछ तुम कमाते हो उसमें से और उसमें से भी जो हम ने तुम्हारे लिए पृथ्वी में से निकाला है पवित्र वस्तुएं ख़र्च करो और (परमेश्वर के मार्ग में) खर्च करते समय उसमें से ऐसी अपवित्र वस्तु का इरादा न किया करो कि तुम उसे कदापि स्वीकार न करो सिवाए इसके कि तुम (अपमान के विचार से) उसे अनदेखा करो और जान लो कि परमेश्वर निस्पृह (और) बहुत प्रशंसनीय है।*

لَنْ يَّنَالَ اللّٰهَ لُحُوْمُهَا وَلَا دِمَآؤُهَا وَلٰكِنْ يَّنَالُهُ التَّقْوٰى مِنْكُمْ ؕ

(सूरह अलहज्ज - 38)

अनुवाद - *परमेश्वर तक उनके मांस कदापि नहीं पहुंचेंगे और न उनके खून, परन्तु तुम्हारा संयम (पवित्र भावना) उस तक पहुंचेगा।*

परमेश्वर के मार्ग में प्रत्यक्ष एवं गुप्त दान

इस्लाम परमेश्वर के मार्ग में गुप्त और प्रत्यक्ष दोनों प्रकार से खर्च करने की अनुमति देता है। क़ुर्आन करीम फ़रमाता है।

وَمَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ نَّفَقَةٍ اَوْ نَذَرْتُمْ مِّنْ نَّذْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُهٗ ؕ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ○ اِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِيَ ۚ وَاِنْ تُخْفُوْهَا وَتُؤْتُوْهَا الْفُقَرَآءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ؕ وَيُكَفِّرُ عَنْكُمْ مِّنْ سَيِّاٰتِكُمْ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ○

(सूरह अलबक़रह - 271, 272)

अनुवाद - *और तुम जो भी खर्च करने योग्य वस्तुओं में से खर्च करो या मन्नतों (भेंटों) में से कोई मन्नत मानो तो निश्चय ही परमेश्वर उसे जानता है और अत्याचारियों के लिए कोई सहायक नहीं। तुम यदि दानों को प्रकट करो तो यह भी अच्छी बात है और यदि तुम उन्हें मुहताजों को दो तो यह तुम्हारे लिए उचित है। और वह (परमेश्वर) तुम्हारी बहुत सी बुराइयां तुम से दूर कर देगा और परमेश्वर को उस की सदैव जानकारी रहती है जो कुछ तुम करते हो।*

सामाजिक दायित्व

इस्लामी शिक्षा के अनुसार सत्तारूढ़ अधिकारियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि उन्हें सामान्य जनता की भलाई और कल्याण की इतनी अनुभूति हो कि मांगें मनवाने के लिए किसी प्रकार के दबाव डालने वाले दल (Pressure Groups) बनाने की आवश्यकता ही न रहे। क़ुर्आन करीम की शिक्षा के अनुसार शासक अपनी प्रजा की

परिस्थितियों का उत्तरदायी और परमेश्वर के समक्ष भी उत्तरदायी है। हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने एक हदीस में फ़रमाया है -

كُلُّكُمْ رَاعٍ وَ كُلُّكُمْ مَسْئُوْلٌ عَنْ رَّعِيَّتِهِ

(सही बुख़ारी, किताबुन्निकाह, बाबुल मरअते राइयतुन फ़ी बैते ज़ौजिहा)

अनुवाद - *तुम में से हर कोई एक चरवाहे के समान है (वह भेड़ों का मालिक तो नहीं परन्तु जो भेड़ें वह चरा रहा है उन की देखभाल का दायित्व उसे सौंपा गया है) और तुम सब अपने दायित्त्व के बारे में उत्तरदायी हो।*

इस हदीस में ऐसे कई प्रकार के संबंधों का वर्णन है जिनके कारण एक व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति का उत्तरदायी बन जाता है। उदाहरणतया स्वामी अपने सेवक के प्रति उत्तरदायी है। पति और पत्नी दोनों अपने ख़ानदान के प्रति उत्तरदायी हैं। पति खानदान के संरक्षक के तौर पर और पत्नी घर का प्रबन्ध चलाने की दृष्टि से इसी प्रकार एक मालिक अपने मज़दूर के प्रति उत्तरदायी है। (इसी प्रकार आगे भी) इन संबंधों का वर्णन करते हुए हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने बार-बार फ़रमाया कि - स्मरण रखो कि तुम उत्तरदायी बनाए गए हो और अपने इस दायित्व के प्रति उत्तरदायी हो।

इस्लामी इतिहास की एक घटना

एक रात हज़रत उमर[रज़ि.] मदीना की एक निकटवर्ती बस्ती की एक गली में से गुज़र रहे थे आप की यह दिनचर्या थी कि सीधे तौर पर अपनी प्रजा की परिस्थितियां जानने के लिए अपनी वेश-भूषा बदल कर गलियों में चक्कर लगाया करते थे। आप को एक घर से बच्चों के रोने की आवाज़ें आईं। ऐसा लगता था कि बच्चे किसी कष्ट में हैं। पूछने पर मालूम हुआ कि एक मां और उसके तीन चार बच्चे

चूल्हे के चारों ओर बैठे हुए हैं। चूल्हे पर हांडी रखी हुई है। जिसमें कोई वस्तु उबल रही है। हज़रत उमर[रज़ि.] ने मां से पूछा कि क्या बात है, बच्चे क्यों रो रहे हैं ? उसने उत्तर दिया कि बच्चे भूखे हैं और मेरे पास इन्हें खिलाने के लिए कुछ नहीं। मैंने इन्हें बहलाने के लिए हांडी में कुछ पानी और पत्थर डाल कर चूल्हे पर रखा हुआ है ताकि वे यह समझें कि खाना तैयार हो रहा है। यह सुन कर हज़रत उमर[रज़ि.] बड़ी बेचैनी और व्याकुलता की स्थिति में तुरन्त वापस ख़िलाफ़त के दरबार में आए। आपने कुछ आटा, मांस और खजूरें लीं। उन्हें एक बोरी में रखा और निकट खड़े हुए सेवक से कहा कि इसे मेरी कमर पर रख दो। सेवक ने आश्चर्य से कहा कि हे अमीरुल मोमिनीन ! आप क्यों कष्ट करते हैं यह बोझ मुझे उठाने दें। हज़रत उमर[रज़ि.] ने फ़रमाया - नि:सन्देह आज तो तुम मेरा बोझ उठा सकते हो परन्तु प्रलय के दिन मेरा बोझ कौन उठाएगा ? आपके कहने का तात्पर्य यह था कि प्रतिफल और दण्ड के दिन कोई अन्य इस बात का उत्तरदायी नहीं होगा कि उमर[रज़ि.] ने अपने दायित्वों को किस प्रकार अदा किया था। इसलिए उन्हें अपना बोझ स्वयं ही उठाना होगा। यह वास्तव में स्वयं के लिए एक प्रकार का दण्ड था जो हज़रत उमर[रज़ि.] ने अपने लिए प्रस्तावित किया। आपने महसूस किया कि उस ग़रीब और असहाय स्त्री और उसके बच्चों की जिस दुर्दशा को देख कर आए हैं उसका दायित्व आप पर आता है। वास्तव में आपको इस बात का बहुत अधिक अहसास था कि सारे शहर और उसकी समस्याओं के अन्तिम उत्तरदायी आप ही हैं और यह दायित्व आप ही को निभाना पड़ेगा। यद्यपि प्रत्येक शासक के लिए यह असंभव है कि वह हज़रत उमर[रज़ि.] की बराबरी कर सके परन्तु क्या विचार की दृष्टि से और क्या आचरण की दृष्टि से आप का आदर्श चरित्र हमेशा के लिए माडल और आदर्श का काम देता रहेगा। वास्तव में यही वह भावना है जिसे

वर्तमान युग के समस्त समाजों में जीवित करने की आवश्यकता है। यदि सरकारें लोगों के हित और कल्याण का ध्यान रखें और उनके कष्ट और दुख-दर्द का अहसास पैदा करें तो इससे पूर्व कि लोग अपने कष्ट और निराशाओं को प्रकट करने के लिए उठ खड़े हों, शासक वर्ग स्वयं अपने तौर पर उनके दुख-दर्द का उपचार करने पर विवश हो जाएंगे। वे परिस्थितियों के सुधार का प्रयास, लोगों की मांगों या किसी भय के कारण नहीं करेंगे अपितु स्वयं उनकी अपनी अन्तरात्मा की प्रतिध्वनि उन्हें ऐसा करने पर विवश कर देगी।

ईश्वर प्रदत्त
समस्त वदान्यताओं में से खर्च करना

क़ुर्आन करीम ने परमेश्वर के मार्ग में खर्च करने को केवल धन ख़र्च करने तक सीमित नहीं रखा अपितु उसमें निहित अन्तर्भावना को विस्तृत रूप दे दिया है। एक अनुपम आयत जिसे क़ुर्आन करीम ने बार-बार दोहराया है यह है -

وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ○

(सूरह अलबक़रह - 4)

अनुवाद :- *और जो कुछ हम उन्हें जीवनयापन के निमित देते हैं वे उस में से खर्च करते हैं।*

ईश्वरप्रदत्त ने'मतों में प्रत्येक प्रकार की भौतिक ने'मतों के अतिरिक्त समस्त योग्यताएं, शक्तियां, विशेषताएं एवं मानवीय संबंध आदि सम्मिलित हैं। इस संक्षिप्त से वाक्य में सम्मान, शान्ति और आराम इत्यादि जैसी ने'मतें भी आ जाती हैं। अत: हर वह वस्तु जो कल्पना में आ सकती है وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ में सम्मिलित है। 'मिन' का शब्द भी यहां बड़ी सुन्दरता के साथ प्रयोग हुआ है जिसके

शाब्दिक अर्थ "कुछ" के हैं। इस शब्द के प्रयोग से आयत में मौजूद नसीहत पर आचरण करना प्रत्येक के लिए संभव हो गया है। وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ के ये अर्थ नहीं है कि वह सब कुछ जो हम ने उन्हें दिया है परमेश्वर के मार्ग में खर्च करते हैं अपितु इसके अर्थ ये हैं कि जो कुछ भी परमेश्वर ने दिया है वे उसमें से कुछ ख़र्च करते हैं और शब्द "कुछ" में इतनी लचक और विशालता है कि जन-साधारण भी जो बड़ी-बड़ी क़ुरबानियों की सामर्थ्य नहीं रखते वे कम से कम अपनी प्रतिष्ठानुसार परमेश्वर के मार्ग में खर्च करने में भाग ले सकते हैं। जन-सेवा का यह वह वातावरण है जिसकी स्थापना और विकास के लिए इस्लाम प्रयास करता है। इस वातावरण का संबंध एक ओर तो व्यक्ति के सामाजिक व्यवहारों और जनजीवन की कार्य-प्रणाली से है और दूसरी ओर इसका संबंध उसकी आर्थिक और आजीविका संबंधी संघर्ष से है।

एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें सम्मिलित होकर व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वामित्व का ही शोक खाए जा रहा हो और वह दोनों हाथों से समेटने के प्रयासों में व्यस्त हो वहां सही और ग़लत, वैध और अवैध में अन्तर करना बहुत कठिन अपितु व्यावहारिक तौर पर असंभव हो जाता है। अधिक गुमान यह है कि ऐसा समाज अपनी सीमाओं में रहने की बजाए दूसरों के अधिकारों में अनुचित हस्तक्षेप करेगा परन्तु दूसरी ओर जिस समाज के लोगों को सदैव यह स्मरण कराया जाए और प्रशिक्षण भी दिया जाए कि वे दूसरों को उनके अधिकार से अधिक दिया करें उनसे कदापि यह आशा नहीं की जा सकती कि वे दूसरों के अधिकार छीनना आरंभ कर देंगे। ऐसे वातावरण में भला किसी के शोषण की क्या संभावना हो सकती है ?

जन-सेवा

जन सेवा की इस्लामी कल्पना को इस आयत में बड़ी सुन्दरता और पूर्णता के साथ वर्णन किया गया है -

كُنْتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُونَ بِالْمَعْرُوفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ ط

(सूरह आले इमरान - 111)

अनुवाद - *तुम श्रेष्ठ उम्मत हो जो मनुष्य के हित के लिए निकाली गई हो। तुम अच्छी बातों का आदेश देते हो और बुरी बातों से रोकते हो और परमेश्वर पर ईमान लाते हो।*

तुम्हारी श्रेष्ठता उस समय तक है जब तक तुम सेवा करने वाली भावना रखते हो। यदि तुम जन सेवा नहीं करते तो तुम्हें इस्लाम या मुसलमान उम्मत की ओर से श्रेष्ठता का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।

मदिरापान एवं द्युत-क्रीड़ा का निषेध

जब नशे की बात की जाए तो मस्तिष्क सामान्यतया हेरोइन और कोकीन की ओर चला जाता है परन्तु नशे के शब्द को विशालतम अर्थों में लिया जाए तो इसमें मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा दोनों सम्मिलित हो जाते हैं, क्योंकि वासना-तृप्ति के इन हर दो रूपों को समाज बुरी दृष्टि से नहीं देखता इसलिए इन्हें बहुत कम नशा का नाम दिया जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा (जुआ) समाज के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए कोई अच्छे लक्षण नहीं हैं। संसार के ऐसे देश जहां जुए का इतने विस्तृत रूप में रिवाज नहीं वहां भी लगभग प्रत्येक स्तर पर लोग छोटे-बड़े अड्डों के रूप में द्युत-क्रीड़ा के

कार्य में लिप्त हैं। दूसरा बड़ा नशा मदिरापान है। जिसका शिकार आज विश्व का अधिकांश क्षेत्र हो चुका है। क़ुर्आन करीम ने मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा दोनों का निषेध किया है। फ़रमाया -

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّمَا الْخَمْرُ وَالْمَيْسِرُ وَالْاَنْصَابُ وَالْاَزْلَامُ رِجْسٌ مِّنْ عَمَلِ الشَّيْطٰنِ فَاجْتَنِبُوْهُ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ○ اِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَالْبَغْضَآءَ فِى الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ وَيَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَعَنِ الصَّلٰوةِ ۚ فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ ○

(सूरह अलमाइदह - 91, 92)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो ! निश्चय ही बेहोश करने वाली वस्तु और जुआ तथा मूर्ति (पूजा) और तीरों द्वारा भाग्य-परीक्षा ये सब अपवित्र शैतानी कार्य हैं। अत: इनसे पूर्ण रूप से बचो ताकि तुम सफल हो जाओ। निश्चय ही शैतान चाहता है कि नशे और जुए के समय तुम्हारे मध्य ईर्ष्या और बैर उत्पन्न कर दे और तुम्हें परमेश्वर की स्तुति एवं नमाज से रोके तो क्या तुम रुक जाने वाले हो ?*

हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने मदिरापान को "उम्मुल ख़बाइस" अर्थात समस्त बुराइयों की जननी (मां) ठहरा दिया है। मदिरापान और जुए की आदत सारे विश्व को अपनी लपेट में ले चुकी है। इस दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रों और प्रदेशों में कोई अन्तर शेष नहीं रहा। राजनीतिक संसार में तो शायद पूरब और पश्चिम कभी सहमत न हो सकें परन्तु जहां तक मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा जैसी वृत्तियों का संबंध है क्या पूरब और क्या पश्चिम और क्या उत्तर और क्या दक्षिण सब इकट्ठे हो चुके हैं।

मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा दोनों ही सामाजिक बुराइयां हैं। बर्तानिया में मदिरापान पर एक दिन में जितना व्यय होता है उससे अफ्रीका के

लाखों अकाल पीड़ित लोगों का कई सप्ताह तक पेट भरा जा सकता है, परन्तु विडम्बना यह है कि अफ़्रीका और अन्य महाद्वीपों के अत्यन्त ग़रीब देशों में भी मदिरापान को एक ऐसी विलासिता नहीं समझा जाता कि लोग जिसके समर्थ न हों, जिसकी शक्ति न रख सकें। अफ़्रीका के लाखों लोग ऐसे हैं जो न तो जीवन की मूल आवश्यकताएं पूरी कर सकते हैं और न अपने बच्चों को शिक्षा दिला सकते हैं परन्तु पीने के लिए किसी न किसी प्रकार से मदिरा अवश्य प्राप्त कर लेते हैं। दक्षिणी भारत के पिछड़े क्षेत्रों में जहां फैक्ट्रियों की तैयार की हुई मदिरा खरीदना प्रत्येक के वश की बात नहीं वहां उसके स्थान पर स्वनिर्मित "टोडी" से काम चला लिया जाता है, यद्यपि ग़रीबी इस बुराइयों की जननी को फैलने से किसी सीमा तक रोकती अवश्य है, परन्तु ज्यों ही प्रति सदस्य आय (Per Capita Income) बढ़ती है मदिरा पर होने वाले व्यय में भी वृद्धि हो जाती है। विचित्र बात यह है कि जब तक कोई व्यक्ति सीमा से अधिक मदिरापान का अभ्यस्त न हो जाए और नशे में धुत नालियों में गिरा दिखाई न दे मदिरापान की आदत को बुरा नहीं समझा जाता।

यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि मदिरापान और जुए को वर्तमान युग की समस्याओं के तौर पर क्यों लिया जाए जबकि ये दोनों नशे तो हमेशा से प्रत्येक स्थान पर मानव इतिहास का अंग रहे हैं। निःसन्देह इस दृष्टि से यह केवल इस युग की समस्या ही नहीं है अपितु इसे विश्व-इतिहास के प्रत्येक युग की एक स्थायी समस्या कहा जाना चाहिए।

अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से मदिरापान की अपेक्षा जुआ अधिक आपत्तिजनक ठहरता है। जुए में आर्थिक दृष्टि से उत्पादन में किसी वृद्धि के बिना धन एक हाथ से निकल कर दूसरे हाथ में चला जाता है। यह बिल्कुल ऐसा ही है जैसे सट्टे के व्यवसाय में आजीविका

सामग्री के आदान प्रदान के बिना धन का धन से आदान-प्रदान होता है। जुए में पूंजी आर्थिक उन्नति और धन-उत्पादन की क्रिया में किसी प्रकार का भाग लिए बिना एक हाथ से दूसरे हाथ में चली जाती है। मनी मार्केट (Money Market) अर्थात बाज़ार के भाग तो फिर भी किसी न किसी सीमा तक आर्थिक आवश्यकताओं और उद्देश्यों को पूरा करते हैं परन्तु आर्थिक दृष्टि से जुआ एक बिल्कुल निरुद्देश्य क्रिया है जब कि स्वतन्त्र व्यापार और व्यावसायिक वातावरण में धन का आदान-प्रदान अर्थव्यवस्था को भौतिक लाभ पहुंचाता है।

मूल्य (Value) के परस्पर आदान-प्रदान में सामान्यत: दोनों सदस्यों को लाभ होता है। यह बात समझ से बाहर है कि अधिकांश व्यापारियों को हानि उठानी पड़े जबकि यह बात बहरहाल निश्चित है कि जुए में एक बहुत बड़ी संख्या को प्राय: हानि उठाना पड़ती है, किन्तु अनुभव साक्षी है कि द्युत-क्रीड़ा-गृह सामान्यतः विनाश का शिकार नहीं होते। जुए में केवल कुछ लोगों के लाभ के लिए लाखों लोग तबाह और बरबाद हो जाते हैं अपना धन लुटा कर उन्हें केवल एक अशान्ति और बेचैनी रूपी आनन्द प्राप्त होता है। बाज़ी जीतने की आशा या हारने के भय के मध्य अनिश्चितता की वह जोश और कोलाहल की अवस्था उस समय दम तोड़ देती है जब उन्हें पता चलता है कि वे हार गए हैं। अपनी हारी हुई धन राशि वापस लेने की हल्की सी आशा लिए हुए वे पुन: अपना धन दाव पर लगाते हैं जहां तक उनकी बेचैनी और मानसिक तनाव इस कोलाहलपूर्ण आनंद से बहुत बढ़ जाता है जो इस सारे व्यवसाय में उन्हें प्राप्त हुआ था। इस असफलता के परिणामस्वरूप वे अत्यन्त शोक और क्रोध एवं मानसिक तनाव का शिकार हो जाते हैं जो उनके अस्तित्व तक ही सीमित नहीं रहता अपितु उसका प्रदर्शन रिश्तेदारों पर भी होने लगता है। समाज के ग़रीब वर्गों में घर के सदस्यों की दैनिक आवश्यकताएं तक जुए की भेंट चढ़ जाती हैं। क़ुर्आन करीम

ने मदिरापान और जुए के निषेध का वर्णन करते हुए स्वीकार किया है कि निश्चय ही उन से कुछ आंशिक लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं, परन्तु यह बात निश्चित है कि उनकी हानियां उनके आंशिक लाभों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं -

يَسْئَلُوْنَكَ عَنِ الْخَمْرِ وَ الْمَيْسِرِ ؕ قُلْ فِيْهِمَآ اِثْمٌ كَبِيْرٌ وَّ مَنَافِعُ لِلنَّاسِ ۫ وَاِثْمُهُمَآ اَكْبَرُ مِنْ نَّفْعِهِمَا ؕ وَيَسْئَلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ۬ قُلِ الْعَفْوَ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ○

(सूरह अलबक़रह - 220)

अनुवाद - *वे तुझ से मदिरा और जुए के बारे में प्रश्न करते हैं। तू कह दे कि इन दोनों में बड़ा पाप (भी) है और लोगों के लिए लाभ भी और दोनों का पाप (का पहलू) उनके लाभ से बढ़कर है, और वे तुझ से (यह भी) पूछते हैं कि वे क्या ख़र्च करें ? उन से कह दे कि (आवश्यकताओं में से) जो भी बचता है। इसी प्रकार परमेश्वर तुम्हारे लिए (अपने) निशानों को खोल-खोल कर वर्णन करता है ताकि तुम विचार करो।*

यह बहस उठाई जा सकती है कि जिसने धन कमाया है वह जैसे चाहे उसके द्वारा आनन्द-प्राप्त करे, किसी अन्य व्यक्ति को उसमें हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है। जैसे कोई प्रसन्न होता है उसे होने दें। समाज को व्यक्ति की व्यक्तिगत आज़ादी में इस सीमा तक हस्तक्षेप का कोई अधिकार नहीं है कि वह उसे यह बताए कि वह अपनी कमाई हुई दौलत को कहां और कैसे खर्च करे, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि धार्मिक शिक्षा का अधिकांश भाग प्रवचन और उपदेश एवं चेतावनी के रूप में होता है। सांसारिक जीवन तक किसी धर्म की शिक्षा में भी कोई ज़बरदस्ती सम्मिलित नहीं है। इसके अतिरिक्त कि कोई दूसरे के विरुद्ध

आपराधिक कार्य करे, और अपराधों से अभिप्राय भी वे अपराध हैं जो अधार्मिक दृष्टिकोण से भी हस्तक्षेप के योग्य हैं। उदाहरणतया - वध, चोरी, धोखा देना, कानूनों का उल्लंघन, अधिकार-हनन इत्यादि, परन्तु धर्मों के अनुसार इन के अतिरिक्त भी ऐसे सामाजिक अपराध हैं जो सामूहिक तौर पर सारे समाज के लिए बहुत हानिप्रद हैं। इन अपराधों का दण्ड वास्तव में विशालतम सामाजिक नियमों के द्वारा मिलता है। यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि मदिरापान और जुए की बुरी आदतों में लिप्त लोग शीघ्र सारे समाज के लिए एक संकट बन जाते हैं, यहां तक कि फिर सारा समाज ही इस योग्य नहीं रहता कि वह अपने खर्च पूरे कर सके। राष्ट्रीय संपत्ति का एक बड़ा भाग निरन्तर नष्ट होता चला जाता है।

ऐसे वातावरण में लोगों की निराशाएं और असफलताएं भी बढ़ती चली जाती हैं। जुए और मदिरापान के साथ अपराधों में भी वृद्धि होती चली जाती है। पारिवारिक जीवन का सुख बरबाद हो जाता है। ऐसे घरों के दुख सीधे तौर पर मदिरापान का ही परिणाम हैं जो हमेशा बढ़ते चले जाते हैं और कितने ही वैवाहिक बंधन इन आदतों के कारण टूट जाते हैं।

आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से मदिरापान के दुष्परिणामों पर प्रसिद्ध पत्रिका साइंटिफ़िक अमेरिकन (Scientific American) ने भी प्रकाश डाला है। इन में घरेलू अत्याचार के अतिरिक्त बच्चों के साथ यौन अपराध, मांओं और बहनों के साथ दुराचार और व्यभिचार इत्यादि नीच कर्म सम्मिलित हैं। ये समस्त घृणित अपराध मदिरा के नशे में हर प्रकार की पहचान उठ जाने के कारण होते हैं। उपरोक्त पत्रिका ने मदिरापान की हानियों के प्रति कुछ ब्यौरा भी दिया है जो प्रस्तुत किया जा रहा है -

मदिरापान के कारण होने वाली मौतें

- मदिरापान करने वालों की आयु दस वर्ष कम हो जाती है।
- मदिरापान करने वाले पुरुषों में मौतों की दर सामान्य दर से दोगुनी और स्त्रियों में सामान्य दर से तीन गुना अधिक है।
- मदिरापान करने वालों में आत्महत्या की दर मौत की सामान्य दर से छः गुना अधिक है।
- बचपन से चवालीस वर्ष की आयु तक के पुरुषों में मृत्यु के चार बड़े कारणों में मदिरापान का सबसे बड़ा हाथ है।

  प्रथम - दुर्घटनाएं जिनमें पचास प्रतिशत दुर्घटनाएं मदिरापान के कारण होती हैं।

  द्वितीय - वध - जिनमें से साठ प्रतिशत वध मदिरापान के अन्तर्गत होते हैं।

  तृतीय - आत्महत्या

  चतुर्थ - यकृत (Liver) के रोग।

मदिरापान के कारण प्रतिवर्ष होने वाली आर्थिक हानियां

- उत्पादन संबंधी बरबादी - 114.9 बिलियन डालर
- स्वास्थ्य पर होने वाले व्यय - 18.3 बिलियन डालर
- दुर्घटना में आर्थिक हानियां - 14.7 बिलियन डालर
- आग लगने से होने वाली हानियां - 10.3 बिलियन डालर
- उपद्रव और अत्याचारपूर्ण अपराधों से होने वाली हानियां - 11.5 बिलियन डालर
- अपराधों के फलस्वरूप सामाजिक प्रतिक्रिया पर होने वाले खर्चे - 11.9 बिलियन डालर
- मदिरापान से **कुल होने वाली हानियां - 131.6 बिलियन डालर**

मदिरापान, द्युत-क्रीड़ा, संगीत और नृत्य जैसे भोग-विलास के साधनों को अधिकांश समाजों में हानिरहित समझा जाता है। इन्हें विभिन्न संस्कृतियों का अनिवार्य अंग समझा जाता है। यद्यपि विभिन्न समाजों में इनके विभिन्न रूप हैं परन्तु इन कार्य-कलापों की मूल रूप-रेखाएं एक समान ही हैं। चित्रकारी, मूर्तिकला और इस प्रकार के कुछ अन्य कार्य-कलापों को छोड़कर शेष कार्य-कलाप दीर्घ समय तक सभ्यता का हानिरहित अंग नहीं रहते अपितु एक ऐसा बोझ बन जाते हैं जिस से समाज की कमर टूट जाती है। समाज स्वयं अपने रुझानों की दिशा निर्धारित करने के योग्य नहीं रहता। मदिरापान द्युत-क्रीड़ा, संगीत एवं नृत्य आदि की ओर लोग आकृष्ट होते चले जाते हैं। युवा वर्ग बड़ी तीव्रगति से इन तत्परताओं का शिकार हो जाता है। एक भेड़चाल आरंभ हो जाती है और इन कार्यों में रुचि एक उन्माद का रूप धारण कर लेती है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे समाजों को देखे तो शायद वह यह समझे कि (ईश्वर से क्षमा चाहते हुए) मानव-उत्पत्ति का उद्देश्य ही ऐसे व्यर्थ आनंदों का पीछा करना और घृणित इच्छाओं का दास बन जाना है, परन्तु क़ुर्आन करीम ने मानव-उत्पत्ति का यह उद्देश्य नहीं ठहराया अपितु फ़रमाता है -

اِنَّ فِیۡ خَلۡقِ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ وَاخۡتِلَافِ الَّیۡلِ وَالنَّہَارِ لَاٰیٰتٍ لِّاُولِی الۡاَلۡبَابِ ۚۙ الَّذِیۡنَ یَذۡکُرُوۡنَ اللّٰہَ قِیٰمًا وَّقُعُوۡدًا وَّعَلٰی جُنُوۡبِہِمۡ وَیَتَفَکَّرُوۡنَ فِیۡ خَلۡقِ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ ۚ رَبَّنَا مَا خَلَقۡتَ ہٰذَا بَاطِلًا ۚ سُبۡحٰنَکَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ۝

(सूरह आले इमरान - 191, 192)

अनुवाद - *निश्चय ही आसमानों और पृथ्वी की उत्पत्ति में तथा रात-दिन के परिवर्तन में बुद्धिमान लोगों के लिए निशान हैं। वे लोग जो ईश्वर को स्मरण करते हैं खड़े हुए भी और बैठे हुए*

भी और अपने पहलुओं के बल भी तथा आसमानों और पृथ्वी की उत्पत्ति में सोच-विचार करते रहते हैं (और नि:संकोच कहते हैं) हे हमारे रब्ब ! तूने इस सृष्टि की रचना कदापि निरुद्देश्य नहीं की। पवित्र है तू। अत: हमें अग्नि के प्रकोप से बचा।

परमेश्वर के बुद्धिमान लोगों की विशेषताओं के संबंध में क़ुर्आन करीम यह घोषणा करता है कि वह जीवन-सृष्टि की आस्था पर भली भांति सोच-विचार के पश्चात नि:संकोच पुकार उठते हैं कि यह सम्पूर्ण सृष्टि और उसकी रचना निरुद्देश्य नहीं हो सकती। क़ुर्आन करीम की ये आयतें अरशमीदस (Archimedes) की उस प्रसन्नता के प्रदर्शन को स्मरण कराती हैं जब एक आविष्कार पर उसने Eureka अर्थात "मैंने पा लिया" का नारा लगाया था।

अत: इस्लाम के द्वारा प्रस्तुत सामाजिक वातावरण भौतिकवादी वातावरण से बिल्कुल भिन्न है। क़ुर्आन करीम फ़रमाता है - कि मानव-सृष्टि का महान उद्देश्य उस मार्ग पर अग्रसर होना है जो स्रष्टा तक पहुंचाता है। उपासना के इन्हीं विशाल अर्थों में क़ुर्आन करीम यह घोषण करता है कि -

وَمَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْاِنْسَ اِلَّا لِيَعْبُدُوْنِ○

(सूरह अज़्ज़ारियात - 57)

अनुवाद - *और मैंने जिन्न और इन्सान को उत्पन्न नहीं किया परन्तु इस उद्देश्य से कि वे मेरी उपासना करें।*

भोग-विलास के विभिन्न साधनों पर दृष्टिपात करें तो कदाचित किसी को उनमें देखने में कोई ऐसी हानि दिखाई न दे जिसे इन कार्यों पर पूर्णतया प्रतिबन्ध का औचित्य बनाया जा सके, विशेषतया सर्वथा अनियन्त्रित और उच्छृंखल लोगों के समाज में यह समझना अत्यन्त कठिन है कि इस्लाम इस संबंध में इस सीमा तक कठोर क्यों हैं ? यहां तक कि कुछ लोगों के अनुसार इस्लाम एक नीरस धर्म है। वास्तविकता

यह है कि इस्लाम कदापि एक नीरस (शुष्क) धर्म नहीं है, परन्तु यदि उसे दूर से देखा जाए और पूर्ण रूप से समझा न जाए तो संभव है कि कुछ लोगों को शुष्क और नीरस दिखाई दे। सर्वप्रथम बात यह है कि जिन लोगों में नेकी की रुचि पैदा हो जाए वे उन शुभ कर्मों के द्वारा भी उच्च श्रेणी का आनन्द पा लेते हैं जो बाहर से देखने वाले को नीरस दिखाई देते हैं। इन से भी अधिक भाग्यशाली वे लोग हैं जिन्होंने ईश्वर-प्रेम का स्वाद चख लिया हो। ये लोग आध्यात्मिकता के इतने उच्च स्थान पर आसीन होते हैं जहां से संसार के निम्नकोटि के आनंद नितान्त तुच्छ, सारहीन, निरर्थक और अस्थायी दिखाई देने लग जाते हैं। तीसरे यह कि विशाल दृष्टिकोण में देखा जाए तो वह समाज जिसने भोग-विलास को अपना आराध्य न बनाया हो कभी रिक्त-हस्त नहीं होता।

मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा का अन्तिम और संक्षिप्त परिणाम यह निकलता है कि यह वास्तव में एक मूल्य (Value) का दूसरे मूल्य से आदान-प्रदान है मदिरा के नशे की मादक अवस्था और चरम श्रेणी का शारीरिक आनंद और मादकता के परिणाम स्वरूप वास्तविक शान्ति और सन्तोष, हार्दिक सन्तुष्टि, सुरक्षा की भावना, शालीनता, भाग्यतुष्टि सभी कुछ हाथ से जाता रहता है, हालांकि ये वस्तुएं स्वयं में उच्चतम और श्रेष्ठतम मूल्य हैं जिनसे बढ़कर कोई पुरस्कार नहीं हो सकता।

यदि इस्लाम द्वारा प्रस्तुत सामाजिक वातावरण की आज के समाजवादी और सामाजिक वातावरण में समवेत रूप से तुलना की जाए तो यह बात बड़ी आसानी से समझ में आ जाती है कि ईश्वर-प्रेम का वृक्ष भौतिकवाद की भूमि में दृढ़ता नहीं पकड़ सकता। जो लोग भौतिक जीवन के आनन्दों और रंगीनियों में डूब जाएं वे ईश्वर-प्रेम में कैसे लीन हो सकते हैं यद्यपि कुछ अपवाद स्वरूप भी हैं परन्तु उनसे कानून तो नहीं बना करते। अत: सारांश यही है कि इस्लाम जिस सामाजिक वातावरण को प्रस्तुत करता है वह भौतिकवादी वातावरण से सर्वथा भिन्न है।

अध्याय - 4

आर्थिक शान्ति

- पूंजीवादी व्यवस्था, साम्यवाद और इस्लाम की अर्थव्यवस्था संबंधी विचारधारा
- पूंजीवादी व्यवस्था
- साइंटिफ़िक समाजवाद
- विश्व की बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था
- इस्लाम की आर्थिक व्यवस्था
- ज़कात
- ब्याज की निषिद्धता
- ब्रिटेन में ब्याज दर की समस्या
- ब्याज की अन्य हानियां
- ब्याज : शान्ति के लिए खतरा
- धन के भण्डारण की निषिद्धता
- सादा जीवन-पद्धति
- शादी-विवाह के व्यय
- गरीबों का निमंत्रण स्वीकार करना
- खान-पान में संतुलन
- क़र्ज़ का लेन-देन
- आजीविका में वर्गीय अन्तर
- इस्लाम का विरासत का कानून
- रिश्वत की निषिद्धता
- व्यापारिक आचार-संहिता
- जीवन की मूल आवश्यकताएं
- उपासना - सामाजिक एकता का एक माध्यम
- अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व

يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَيُرْبِي الصَّدَقٰتِ ؕ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ اَثِيْمٍ ○

(सूरह अलबक़रह - 277)

अनुवाद - *परमेश्वर ब्याज को मिटाता है तथा दान को बढ़ाता है और परमेश्वर प्रत्येक कृतघ्न (और) महापापी को पसन्द नहीं करता।*

كَلَّا بَلْ لَّا تُكْرِمُوْنَ الْيَتِيْمَ ○ۙ وَلَا تَحٰٓضُّوْنَ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ ○ۙ

وَتَاْكُلُوْنَ التُّرَاثَ اَكْلًا لَّمًّا ○ۙ وَّتُحِبُّوْنَ الْمَالَ حُبًّا جَمًّا ○

(सूरह अलफ़ज्र - 18 से 21)

अनुवाद - *सावधान ! वास्तव में तुम अनाथ का सम्मान नहीं करते और न ही असहाय को खाना खिलाने की एक दूसरे को प्रेरणा देते हो और तुम सारे का सारा विरसा हड़प कर जाते हो और दौलत से अत्यधिक प्रेम करते हो।*

पूंजीवादी व्यवस्था, साम्यवाद और इस्लाम की आर्थिक विचारधारा

इस्लाम की आर्थिक व्यवस्था का पूंजीवादी या वैज्ञानिक समाजवादी व्यवस्था से कोई संबंध नहीं है। यह व्यवस्था वैज्ञानिक तो है परन्तु अनुचित प्रतिबंधों से आज़ाद है, व्यक्तिगत स्वामित्व और निजी व्यवसाय की अनुमति तो देती है परन्तु लालच और लालसा के हाथों होने वाली लूट-मार को भी रोकती है इस प्रकार दौलत कुछ लोगों के हाथ में एकत्र होने को निरुत्साहित करती है जिस के परिणामस्वरूप समाज का एक बड़ा भाग एक अत्याचारी और अनीतिकारी एवं चेतनाहीन शोषण व्यवस्था के जाल में फंस कर रह जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था, साम्यवाद और इस्लाम की आर्थिक विचारधारा में तीन मूल अन्तर हैं।

पूंजीवादी व्यवस्था

इस व्यवस्था में पूंजी की वृद्धि ब्याज द्वारा होती है। इसमें सैद्धान्तिक तौर पर स्वीकार कर लिया गया है कि पूंजी को यह अधिकार प्राप्त है कि उसे बढ़ने का अवसर दिया जाए। ब्याज ही के कारण पूंजी कुछ हाथों में एकत्र हो जाती है फिर उसी पूंजी की शक्ति से उत्पादन क्रिया जारी रहती है। संक्षेप में यह कि पूंजी को चक्कर में रखने का मूल प्रेरक ब्याज ही होता है।

वैज्ञानिक समाजवाद

इस व्यवस्था में यद्यपि ब्याज बतौर प्रेरक तो विद्यमान नहीं है जिससे उत्पादन व्यवस्था में पूंजी घूमती रहे परन्तु यहां वास्तव में पूंजी-निवेश के लिए किसी प्रेरणा की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि पूंजी पर किसी अन्य की भागीदारी के बिना सरकार का एकाधिकार

होता है।

आज़ाद व्यक्तिगत व्यवसाय में ब्याज हो या न हो व्यक्तिगत स्वामित्व का अहसास ही पूंजी में तीव्रता से वृद्धि करने की इच्छा को उभारने के लिए पर्याप्त है। ब्याज पर क़र्ज़ लेने की अवस्था में ब्याज-दर ही वह कसौटी है जिसके द्वारा हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि कुल राष्ट्रीय पूंजी में कमी हुई है या वृद्धि हुई है, परन्तु समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में **प्रथम** तो पूंजी में वृद्धि की कोई इच्छा ही नहीं होती ; क्योंकि इसमें किसी की व्यक्तिगत पूंजी नहीं होती। **द्वितीय** - इसमें कोई ऐसा उपाय मौजूद नहीं है जिसके द्वारा यह मालूम किया जा सके कि पूंजी में वृद्धि की दर आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त भी है या नहीं। समाजवाद में चूंकि सरकार सम्पूर्ण राष्ट्रीय पूंजी को ज़बरदस्ती अपने अधिकार में ले लेती है। इसलिए वहां ब्याज-व्यवस्था की बात बिल्कुल निरर्थक तथा असंबंधित होकर रह जाती है। कठिनाई यह है कि जब किसी पर दबाव न हो कि उसने ब्याज में अदा की जाने वाली राशि से अधिक कमाना है तो फिर कोई प्रेरणा शेष नहीं रहती तथा ज़िम्मेदारी का अहसास समाप्त हो जाता है।

यदि एक साम्यवादी शासन में चक्कर लगा रही सम्पूर्ण पूंजी का इस दृष्टि से मूल्य लगाया जाए कि इस पूंजी को बैंक में रखने से कितना ब्याज प्राप्त हो सकता है तो हमें इस प्रकार चित्र का एक पहलू दिखाई देगा। दूसरे पहलू को समझने के लिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लाभ-हानि के आधार पर अनुमान लगाना पड़ेगा। यह हिसाब करना यद्यपि इतना आसान नहीं है ; क्योंकि इसमें कई जटिलताएं हैं। उदाहरणतया कर्मचारियों के वेतन का अनुमान लगाना इत्यादि, परन्तु यदि अर्थशास्त्री विद्वान मिलकर विचार करें तो यह जटिलताएं दूर हो सकती हैं। चित्र के दोनों पहलू देखने से और उनकी परस्पर तुलना

से कुछ बड़ी रुचिकर संभावनाएं हमारे समक्ष आएंगी।

बहुत संभव है कि इस प्रकार हम गिरते हुए जीवन-स्तर के वास्तविक कारणों को निश्चित कर सकें तथा उनके बारे में प्रकाश डाल सकें। यद्यपि इस प्रकार आर्थिक अवनति के कारणों का निश्चय किसी लम्बे-चौड़े गणित के बिना भी सरलतापूर्वक किया जा सकता है। समाजवाद में चूंकि सरकार पूंजीपति बन जाती है और उस पर कोई आर्थिक दबाव या प्रतिबंध नहीं होते इसलिए वह किसी हिसाबी जांच-पड़ताल के भय के बिना राष्ट्रीय पूंजी प्रयोग कर सकती है। उसके पास निरीक्षण और जांच-पड़ताल का कोई ऐसा प्रबन्ध भी नहीं होता जो उसे उसकी असफलताओं, ग़लतियों तथा आर्थिक घाटे के संबंध में सतर्क कर सके। इस अवस्था में सदैव बहुत से खतरे मंडलाते रहते हैं।

प्रथम - यह कि व्यक्तिगत रुचि का अभाव होता है।

द्वितीय - यह कि पूंजी निवेश से प्राप्त होने वाली लाभ-हानि से अवगत करने वाली कोई व्यवस्था मौजूद नहीं होती। इस का परिणाम यह होता है कि पूंजी-निवेश और उत्पादन का पारस्परिक अनुपात बिगड़ जाता है तथा आर्थिक घाटा बढ़ता चला जाता है और यह कि साम्यवादी व्यवस्था में पूंजी का विभाजन और उपलब्धता की नीति पर कोई संरक्षण नहीं होता। एक समाजवादी सरकार के पास अपने आर्थिक विकास की वास्तविक दर का बाहर के संसार की खुली मंडी वाली आर्थिक विकास दर से तुलना करके निरीक्षण करने का कोई पैमाना नहीं होता। समाजवादी समाज की एक और समस्या यह है कि इसमें प्रतिरक्षण, संरक्षण विभागों तथा कानून लागू करने वाली एजेन्सियों पर अपेक्षाकृत बहुत अधिक खर्चे वहन करने पड़ते हैं। दूसरे खर्च यदि समान भी हों तो भी प्रतिरक्षण, तथा शान्ति बनाए रखने के

लिए ख़र्चों का अनुपात दूसरे समाजों से बहुत अधिक होता है। ये और ऐसे दूसरे कारण अर्थव्यवस्था के लिए हानिप्रद सिद्ध होते हैं। इस अवस्था में निश्चित आर्थिक विनाश में विलम्ब तो डाला जा सकता है परन्तु उसे पूर्णतया और हमेशा के लिए टाला नहीं जा सकता।

इस्लामी विचारधारा

साम्यवादी व्यवस्था में लोग आर्थिक विकास की क्रिया में सीधे तौर पर और पूरी तन्मयता के साथ भागीदारी की ओर प्रवृत्त नहीं होते, परन्तु इस्लाम में ब्याज की निषिद्धता के बावजूद आर्थिक-विकास की प्रक्रिया में भागीदारी के लिए प्रेरणा मौजूद है। इस्लामी आर्थिक व्यवस्था में ब्याज का लालच न होने के कारण जो पूंजी उत्पादन -प्रक्रिया में नहीं लगाई जाती और बेकार पड़ी रहती है। इस्लाम ने उसका समाधान एक टैक्स के रूप में प्रस्तुत किया है जिसे 'ज़कात' कहा जाता है। यह वह टैक्स है जो किसी आय या लाभ पर नहीं अपितु स्वयं पूंजी पर लगाया जाता है। अतः इस प्रकार इस्लाम ब्याज से भी मुक्ति दिलाता है और साम्यवादी संसार की विशिष्ट समस्याओं से भी उसका दामन पवित्र रहता है।

इस्लामी अर्थव्यवस्था और पूंजीवादी व्यवस्था में स्पष्ट अन्तर है। पूंजीवादी व्यवस्था से संलग्न समाजों में पूंजी कुछ हाथों में एकत्र हो जाती है। इसका कारण ब्याज द्वारा पूंजी में वृद्धि करने का लालच है। पूंजी बार-बार व्यवसाय में लगाई जाती है ताकि ब्याज-दर से अधिक लाभ अर्जित किया जाए। ब्याज-दर से बढ़कर लाभ प्राप्त नहीं होगा तो अनिवार्य परिणाम आर्थिक अवनति के रूप में निकलेगा। इस्लामी अर्थ-व्यवस्था में एक व्यक्ति इस भय से कि कहीं ज़कात के कारण इस की पूंजी धीरे-धीरे समाप्त न हो जाए अनिवार्य रूप से अपनी अतिरिक्त पूंजी अथवा बचत को किसी लाभप्रद व्यवसाय में लगाएगा

ताकि ज़कात देने से पूंजी में कमी हुई है वह पूरी हो सके।

इस्लाम के निकट विश्व की आर्थिक समस्याओं का समाधान न तो समाजवाद में है और न पूंजीवादी व्यवस्था में। यहां इस विषय पर विस्तृत बहस तो संभव नहीं तथापि हम पूंजीवादी व्यवस्था के फलस्वरूप पैदा होने वाले आर्थिक संतुलन के अभाव पर एक दृष्टि डालेंगे ताकि भविष्य के लिए कुछ शिक्षा प्राप्त की जा सके।

पूंजीवादी समाज की चार विशेषताएं

क़ुर्आन करीम की निम्नलिखित आयतों में बड़ी स्पष्टता के साथ वे लक्षण वर्णन हुए हैं जिन से विदित होता है कि समाज आर्थिक असंतुलन का शिकार हो चुका है।

كَلَّا بَلْ لَّا تُكْرِمُوْنَ الْيَتِيْمَ ۝ۙ وَلَا تَحٰٓضُّوْنَ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ ۝ۙ

وَتَاْكُلُوْنَ التُّرَاثَ اَكْلًا لَّمًّا ۝ۙ وَّتُحِبُّوْنَ الْمَالَ حُبًّا جَمًّا ۝

(सूरह अलफ़ज्र - 18 से 21)

अनुवाद - *सावधान ! वास्तव में तुम अनाथ का सम्मान नहीं करते और न ही असहाय को खाना खिलाने की परस्पर प्रेरणा देते हो और तुम समस्त विरसे को हड़प लेते हो तथा धन से बहुत अधिक प्रेम करते हो।*

संक्षिप्त तौर पर ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं -

(1) अनाथों के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार

(2) ग़रीबों को खाना-खिलाने की ओर ध्यान का अभाव

(3) दूसरों की विरासत पर अवैध अधिकार

(4) कुछ हाथों में अकूत धन का एकत्र होना

पूंजीवादी व्यवस्था अन्ततः विनाश की ओर ले जाती है। इस्लाम

साइंटिफिक समाजवादी विचारधारा का समर्थन न करते हुए पूंजीवादी व्यवस्था के कुछ रूपों का भी खण्डन कर देता है। क़ुर्आन करीम में परमेश्वर फ़रमाता है -

اَلْهٰىكُمُ التَّكَاثُرُ ۙ حَتّٰى زُرْتُمُ الْمَقَابِرَ ۗ كَلَّا سَوْفَ تَعْلَمُوْنَ

(सूरह अत्तकासुर 3 से 4)

अनुवाद - *तुम्हें असावधान कर दिया एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा की दौड़ ने। यहां तक कि तुमने मक़बरों (मृत्यु) के भी दर्शन कर लिए। सावधान ! तुम अवश्य जान लोगे।*

विश्व की बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था

यद्यपि यह फ़ारमूला कि ब्याज-व्यवस्था के हाथों ग़रीबों का शोषण अंततः समाजवादी विद्रोह पर समाप्त होता है प्रत्यक्षतः एक पुराना किस्सा बन चुका है परन्तु यदि गहरी दृष्टि से देखा जाए तो मालूम होगा कि यह मात्र दृष्टि का धोखा है। इस समय समस्त विश्व ही अमीरी और ग़रीबी के आधार पर विभाजित हो चुका है। इसका श्रेय पर्याप्त सीमा तक उस शोषण के सर है जो विकसित पूंजीवादी देशों ने पिछड़े देशों का किया है। पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों का लज्जित होकर पूंजीवादी व्यवस्था की ओर लौटना एक ऐसी घटना है जिससे शोषण की यह परिस्थिति और भी गंभीर हो गई है। तीसरे विश्व की ग़रीब और कंगाल जातियों का अभी और कितना रक्त चूसा जाएगा, इस कल्पना से मनुष्य कांप जाता है। प्रत्यक्ष तौर पर यही दिखाई देता है कि पूंजीवादी व्यवस्था के रक्तपान करने वाले भेड़ियों की प्यास अभी बुझी नहीं।

पूंजीवादी व्यवस्था और समाजवाद ने विश्व को दो बड़ी आर्थिक विचारधाराएं दी हैं। यह बात स्पष्ट है कि दोनों के मध्य जारी प्रतिद्वन्दिता

का युग अब समाप्त हो चुका है। वह आर्थिक व्यवस्था जिन की नींव मार्क्सवाद और लेनिनवाद पर थी अब विश्व की समस्याओं में कोई विशेष भूमिका अदा नहीं कर रहे। दूसरी ओर पश्चिम का नाममात्र आज़ाद जीवन अपनी बाह्य दिखाई देने वाली सफलता पर फूला नहीं समा रहा। पूर्वी ब्लाक के समस्त देश अपनी नई स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात इस प्रयास में व्यस्त हैं कि किसी प्रकार ग़रीबी के सताए हुए अपनी लाखों-करोड़ों लोगों की दुर्दशा को ठीक कर सकें। इन पूर्वी देशों में ले देकर केवल चीन ही एक अपवाद है।

पूरब और पश्चिम के मध्य इतनी दूरी नहीं है जितनी उत्तर और दक्षिण के देशों के मध्य। उत्तर में प्रथम विश्व के देश अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के तृतीय विश्व के देशों से केवल भौगोलिक तौर पर ही पृथक नहीं अपितु आर्थिक तौर पर भी उनके बीच लम्बी दूरियां हैं। उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के मध्य पाया जाने वाला आर्थिक अन्तर निश्चय ही कष्टप्रद है, परन्तु इस से कहीं अधिक अन्तर यूरोप और अफ्रीका के मध्य विद्यमान है। अफ्रीका की पृथ्वी भौगोलिक दृष्टि से यूरोप के सर्वाधिक निकट है परन्तु आर्थिक अन्तर के कारण सर्वाधिक दूर भी है।

एक समय था कि सुपर शक्तियों के मध्य पाई जाने वाली प्रतिद्वंद्विता के कारण विश्व के कमज़ोर देशों को एक प्रकार की सुरक्षा का अहसास प्राप्त था परन्तु अब परिस्थिति परिवर्तित हो चुकी है। शीत युद्ध के कारण ग़रीब जातियां जो लाभ प्राप्त कर रही थीं बर्फ़ पिघलने के साथ-साथ उनकी संभावनाएं कम से कम होती चली जाएंगी। तृतीय विश्व के देशों की व्यापारिक मंडियों पर अधिकार करने और उन पर अपना एकाधिकार स्थापित करने और उन्हें अपने अधिकार में रखने के लिए अमरीका, रूस और यूरोप के देशों के मध्य पहले से कहीं

बढ़कर मुकाबला होने वाला है। भविष्य में केवल जापान ही अमरीका का एक प्रमुख मुकाबला करने वाला और प्रतिद्वन्द्वी नहीं होगा अपितु यूरोपियन समुदाय (European Community) की तीव्र गति से होने वाली प्रगति के कारण एक नवीन यूरोप भी प्रदर्शन-मंच पर आ रहा है।

पूर्वी यूरोप की इस विशालतम संयुक्त मार्किट में संभावित भागीदारी से अमरीका के लिए उनका मुक़ाबला करना यूरोप के दूसरे प्रतिद्वन्दी देशों से मुकाबले की अपेक्षा कहीं अधिक कठिन होगा।

पूर्वी यूरोप और रूस के करोड़ों लोग अपने जीवन-स्तर को ऊंचा करने की नितान्त आवश्यकता महसूस कर रहे हैं और बड़ी बेचैनी से उसके परिवर्तन के प्रतीक्षक हैं। उनकी सीमित आन्तरिक मार्किट इन समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अपर्याप्त होगी और समय व्यतीत होने के साथ-साथ और भी अधिक अपर्याप्त होती चली जाएगी। पूर्वी यूरोप और रूस के बढ़ते हुए जीवन-स्तर को सहारा देने के लिए अन्तर्देशीय मंडियों की नितान्त आवश्यकता होगी जिसे यूरोपियन समुदाय, अमरीका और जापान पूरा कर सकते हैं। इस स्थिति में तृतीय विश्व के देशों के लिए वास्तव में आशा की कोई किरण दिखाई नहीं देती और फिर अफ्रीका के दुर्भाग्यशाली लोगों के लिए तो निराशाओं के अंधेरे और भी गहरे होते जा रहे हैं।

आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से विश्व भर की विकसित जातियों के राजनीतिज्ञ सुदूर पूर्व से प्रकट होने वाली पूंजीवादी आर्थिक क्रान्ति की ओर कुछ अधिक ही आकृष्ट हैं। सुदूर पूर्व के इन देशों में जापान, दक्षिणी कोरिया, ताईवान, हांगकांग और सिंगापुर सम्मिलित हैं। और ऐसा दृष्टिगोचर होता है जैसे सुदूर पूर्व और पश्चिम एक दूसरे के निकट आ रहे हों, परन्तु जहां तक इण्डोनेशिया, मलेशिया, कम्बोडिया,

थाईलैंड, बर्मा, बंगलादेश, भारत, श्रीलंका और पाकिस्तान जैसे ग़रीब और उन्नतिशील देशों का प्रश्न है उनकी तो पश्चिमी देशों से दूरी और भी बढ़ गई है। ऐसा लगता है जैसे इन उन्नतिशील देशों के सरों पर एक पुल का निर्माण किया जा रहा है जो पश्चिम और सुदूर पूर्व के देशों की परस्पर दूरियों को और भी कम कर देगा।

जापान की महान आर्थिक चुनौती का मुक़ाबला करने और तीव्रगति से हो रहे आर्थिक विकास को रोकने के लिए एक ओर जहां भय है कि सुदूर पूर्व के अन्य देश अब अमेरिकी पूंजी या प्रौद्योगिकी आदि से और अधिक लाभान्वित न हो सकेंगे वहां यह भी संभव है कि अमरीका सुदूर पूर्व के अपने उन परस्पर मैत्री रखने वाले देशों पर अपनी निर्भरता और भी बढ़ा देगा ताकि जापान और आर्थिक दृष्टि से विशालतम संयुक्त यूरोप की आर्थिक चुनौतियों का मुकाबला किया जा सके। यह सम्पूर्ण परिस्थिति पृथ्वी पर बसने वाले मनुष्य के भविष्य के लिए कोई अच्छा लक्षण नहीं है। इससे विश्व शान्ति की सम्पूर्ण आशाओं पर पानी फिर सकता है और इस बार शान्ति के ये स्वप्न पूंजीवादी व्यवस्था और साम्यवाद दोनों की विचारधाराओं के परस्पर संघर्ष और प्रतिद्वन्द्विताओं के कारण चकनाचूर नहीं होंगे अपितु इसके प्रेरक कुछ और होंगे।

पूर्वी यूरोप और रूस में होने वाले परिवर्तन विश्व के आर्थिक संतुलन पर किस प्रकार प्रभावी होंगे इसके संबंध में कोई भविष्यवाणी करना समय से पूर्व होगा। अभी तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन देशों की पूंजीवादी व्यवस्था की ओर कभी वापसी होगी भी या नहीं। इसके अतिरिक्त इन परिवर्तनों की गति का निर्धारण भी समय से पूर्व होगा। भावी संभावनाएं जो भी हों यह बात निश्चित है कि यह परिवर्तन तृतीय विश्व के देशों की अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव

डालेंगे परन्तु यह भी एक वास्तविकता है कि यह परिस्थिति ऐसी नहीं रहेगी अपितु क्रूर से क्रूरतम होती चली जाएगी। इस वास्तविकता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि विश्व एक अन्तर्राष्ट्रीय विनाश की ओर अग्रसर है।

इस्लाम ब्याज की खोखली नींवों पर स्थापित पूंजीवादी देशों को जो आज खुशी से फूले नहीं समाते सतर्क करता है कि वे अन्तत: अनिवार्य रूप से तबाह और बरबाद हो जाएंगे। पूंजीवादी व्यवस्था की समाजवाद पर वर्तमान नाममात्र विजय उन्हें एक सामयिक और अस्थायी शान्ति ही दे सकती है। पूंजीवादी व्यवस्था संबंधी विचारधारा से ऐसी विकट और भयंकर विपत्तियां जन्म लेंगी जो समाजवाद को अपने मुक़ाबले पर न पाकर बढ़ते-बढ़ते अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेंगी। पूंजीवादी व्यवस्था का ज्वालामुखी पर्वत अन्तत: इतनी शक्ति के साथ फटेगा कि सम्पूर्ण विश्व उसके भूकम्प से अस्त-व्यस्त होकर रह जाएगा।

इस्लाम की आर्थिक व्यवस्था

इस्लाम द्वारा प्रस्तुत सामाजिक व्यवस्था के समान इस्लाम की आर्थिक व्यवस्था का प्रारंभ भी उसी मूल वास्तविकता से होता है कि पृथ्वी और आकाश में जो कुछ भी है वह परमेश्वर का पैदा किया हुआ है तथा परमेश्वर ने मानव जाति को जो बहुत सी ने'मतें प्रदान की हैं वे बतौर अमानत के हैं। मनुष्य न्यासधारी होने के नाते इस बात का उत्तरदायी है कि क्या उसने अमानत का हक़ अदा किया है ? एक व्यक्ति का धनवान होना या धन से वंचित होना, ये दोनों अवस्थाएं वास्तव में उसकी परीक्षा के भिन्न-भिन्न रूप हैं ताकि यह ज्ञात हो सके कि कौन समृद्धि और दरिद्रता में अपने हिसाब-किताब की चिन्ता करता है और कौन है जो मानवजाति के कष्टों के अहसास से खाली

हो जाता है और उसे विचार तक नहीं आता कि मानवता किन संकटों से दो चार है। क़ुर्आन करीम हमें बार-बार स्मरण कराता है कि -

وَلِلّٰهِ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِیْرٌ ○

(सूरह आले इमरान - 190)

अनुवाद - *और परमेश्वर ही के लिए है आसमानों और पृथ्वी की बादशाहत और परमेश्वर प्रत्येक वस्तु पर जिसे वह चाहे स्थायी क़ुदरत रखता है।*

फिर क़ुर्आन करीम हमें यह भी शिक्षा देता है कि जब परमेश्वर ने सब कुछ सृष्टि के लिए पैदा किया है तो चाहिए कि उसमें दूसरों के हिस्से को भी स्वीकार किया जाए।

اَمْ لَهُمْ نَصِیْبٌ مِّنَ الْمُلْكِ فَاِذًا لَّا یُؤْتُوْنَ النَّاسَ نَقِیْرًا ○

(सूरह अन्निसा - 54)

अनुवाद - *क्या उनका बादशाहत में से कोई भाग है तब तो वे लोगों को (उसमें से कदापि) खजूर की गुठली (के बीच की) रेखा के बराबर भी नहीं देंगे।*

وَاللّٰهُ فَضَّلَ بَعْضَكُمْ عَلٰى بَعْضٍ فِی الرِّزْقِ ۚ فَمَا الَّذِیْنَ فُضِّلُوْا بِرَآدِّیْ رِزْقِهِمْ عَلٰى مَا مَلَكَتْ اَیْمَانُهُمْ فَهُمْ فِیْهِ سَوَآءٌ ؕ اَفَبِنِعْمَةِ اللّٰهِ یَجْحَدُوْنَ ○

(सूरह अन्नहल आयत - 72)

अनुवाद - *और परमेश्वर ने तुम में से कुछ को कुछ अन्य पर आजीविका में श्रेष्ठता प्रदान की है। अतः वे लोग जिन्हें श्रेष्ठता प्रदान की गई वे कभी अपनी आजीविका को उनकी ओर जो उनके अधीन हैं इस प्रकार लौटाने वाले नहीं कि वे*

इसमें उनके बराबर हो जाएं। फिर क्या वह परमेश्वर की ने'मत के बारे में झगड़ते हैं ?

मनुष्य का यह दायित्व है कि वह अमानत का हक़ पूरी ईमानदारी और न्याय के साथ अदा करे। अतः क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰٓى اَهْلِهَا ۙ وَ اِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ بِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ سَمِيْعًا بَصِيْرًا ○

(सूरह अन्निसा - 59)

अनुवाद - *निश्चय ही परमेश्वर तुम्हें आदेश देता है कि तुम अमानतें उन के हक़दारों के सुपुर्द किया करो और जब तुम लोगों के बीच न्याय करो तो निश्चय ही परमेश्वर बहुत सुनने वाला (और) गहरी दृष्टि रखने वाला है।*

اِنَّمَآ اَمْوَالُكُمْ وَاَوْلَادُكُمْ فِتْنَةٌ ؕ وَاللّٰهُ عِنْدَهٗٓ اَجْرٌ عَظِيْمٌ ○

(सूरह अत्तग़ाबुन - 16)

अनुवाद - *तुम्हारे धन और तुम्हारी सन्तान मात्र परीक्षा हैं और वह परमेश्वर ही है जिस के पास बहुत बड़ा प्रतिफल है।*

इस्लाम में स्वामित्व के सन्दर्भ में एक मुख्य बात यह है कि कुछ उत्पादन के साधनों को व्यक्ति का व्यक्तिगत स्वामित्व ठहराने के स्थान पर सामूहिक तौर पर मानवजाति का स्वामित्व ठहराया गया है। अतः इस्लामी शिक्षा के अनुसार खान-सम्पदा संबंधी माध्यम तथा सामुद्रिक उत्पादन किसी एकमात्र व्यक्ति अथवा कुछ व्यक्तियों का स्वामित्व नहीं हो सकता।

ज़कात

ज़कात इस्लाम के पांच मूल स्तंभों में से एक स्तंभ है। शेष स्तंभ कलिमा

لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ

(ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह)

नमाज़, रमज़ान माह के रोज़े (उपवास) रखना और मक्का जाकर काबा का हज करना है। क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ وَاَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ○

(सूरह अन्नूर - 57)

अनुवाद - *और नमाज़ को क़ायम करो और ज़कात अदा करो और रसूल की आज्ञा का पालन करो ताकि तुम पर दया की जाए।*

अरबी शब्द 'ज़कात' का शाब्दिक अर्थ किसी वस्तु को पवित्र करने के हैं। इस दृष्टि से धन पर अनिवार्य रूप से टैक्स अर्थात ज़कात की अदायगी के अर्थ ये होंगे कि बचा हुआ शेष धन मोमिनों के लिए पवित्र और वैध हो गया है। ज़कात की दर प्रयोग किए जा रहे सामानों (सम्पत्तियों) पर ढाई प्रतिशत है जब कि ये सम्पत्तियां एक निर्धारित सीमा से अधिक हों और एक ही व्यक्ति के स्वामित्व में हों उन पर एक वर्ष से अधिक समय गुज़र जाए।

इस टैक्स की दर पर यद्यपि बहुत कुछ कहा जा चुका है परन्तु क़ुर्आन करीम में किसी निश्चित दर का हवाला नहीं मिलता मैं इस सन्दर्भ में मध्यकालीन[1] इस्लामी विद्वानों की कट्टर विचारधारा से मतभेद करता हूं और विश्वास रखता हूं कि ज़कात की दर में

1 इस्लाम का मध्यकालीन युग (अनुवादक)

लचक रखी गई है। इसलिए इसका निर्धारण प्रत्येक देश की आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिए । ज़कात एक विशेष सीमा से अधिक धन पर लगने वाला टैक्स है और केवल कुछ प्रकार के खर्चों के लिए प्रयोग हो सकता है। ज़कात के ये खर्चे क़ुर्आन करीम की निम्नलिखित आयत में वर्णन हुए हैं -

اِنَّمَا الصَّدَقٰتُ لِلْفُقَرَآءِ وَالْمَسٰكِيْنِ وَالْعٰمِلِيْنَ عَلَيْهَا وَالْمُؤَلَّفَةِ قُلُوْبُهُمْ وَ فِى الرِّقَابِ وَالْغٰرِمِيْنَ وَ فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ؕ فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ○

(सूरह अत्तौब: आयत 60)

अनुवाद - *दान तो मात्र मुहताजों असहायों और उन (दान) का प्रबंध करने वालों और जिन के हृदयों को आकर्षित किया जा रहा हो (कि उनमें श्रद्धा और कृतज्ञता का भाव पैदा हो) और गर्दनों को आज़ाद कराने और चट्टीग्रस्त (वह कर्ज़दार जो अपने क़र्ज़ की अदायगी की सामर्थ्य न रखता हो) लोगों तथा परमेश्वर के मार्ग में सार्वजनिक तौर पर खर्च करने तथा यात्रियों के लिए हैं। यह परमेश्वर की ओर से एक अनिवार्य कर्त्तव्य है और परमेश्वर स्थायी ज्ञान रखने वाला (और) बहुत नीतिवान है।*

इस आदेश को क्रियान्वयन करने का प्रबंध बैतुल माल (इस्लामी सरकारी बैंक) के सुपुर्द है। ख़िलाफ़ते राशिदा में प्रथम दो खलीफ़े अर्थात हज़रत अबू बकर सिद्दीक़[रज़ि.] और हज़रत उमर[रज़ि.] दान-खैरात को शीघ्र से शीघ्र हक़दार लोगों में बांटने में बहुत ख्याति रखते थे। आप दोनों व्यक्तिगत दिलचस्पी लेकर ज़कात के त्वरित वितरण को सुनिश्चित करते थे। यह वह सरकार थी जो प्रथम कल्याणकारी सरकार के नाम से प्रसिद्ध हुई। दान-ख़ैरात के वितरण की यह व्यवस्था अब्बासी शासन काल में सदियों तक बड़ी सफलतापूर्वक चलती रही।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है। इस्लामी अर्थव्यवस्था को चलाने वाली शक्ति ब्याज नहीं अपितु ज़कात है। जब हम इस व्यवस्था को व्यावहारिक रूप में देखते हैं तो इसमें तथा अन्य अर्थव्यवस्थाओं में बहुत से और भी अन्तर दिखाई देने लगते हैं और एक बिल्कुल भिन्न आर्थिक चित्र उभरता है।

पूंजी पर जिस दर से टैक्स अदा किया जाता है उससे अधिक तीव्र गति के साथ पूंजी में वृद्धि होना आवश्यक है अन्यथा बेकार पड़ी हुई पूंजी चाहे अधिक हो या कम लम्बे समय तक नहीं रह सकती। बिल्कुल इसी सिद्धान्त पर ज़कात एक वास्तविक इस्लामी सरकार की आर्थिक स्थिति का विकास करती है।

एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करें जिसके पास थोड़ी पूंजी है। वह न तो इस योग्य है कि सीधे तौर पर व्यापार में भाग ले सके और न बैंक मौजूद है जो उसकी राशि पर ब्याज अदा कर सके। यदि वह साहिबे निसाब है अर्थात उसकी पूंजी इतनी है कि उस पर ज़कात लागू होती है तो ज़कात लेने वाले प्रति वर्ष उसके द्वार को खटखटाएंगे। ऐसे लोगों के पास दो ही मार्ग हैं या तो वे स्वयं अपने धन को किसी लाभदायक कार्य में लगा दें या फिर सब मिलकर कोई छोटा-बड़ा व्यवसाय आरंभ करें। इस प्रकार लाभ-हानि में भागीदारी के आधार पर संयुक्त व्यवसाय आरंभ हो जाएंगे। छोटी-छोटी व्यावसायिक कम्पनियां अस्तित्व में आएंगी या बड़ी कम्पनियों में पब्लिक शेयर्स (Public Shares) रखे जाएंगे इन कम्पनियों पर किसी आर्थिक विभाग का कोई ऐसा क़र्ज़ नहीं होगा जिसे उन्होंने ब्याज के साथ वापस लौटाना हो। ऐसी कम्पनियों की पूंजीवादी व्यवस्था के अधीन स्थापित कम्पनियों से तुलना की जाए तो मालूम होगा कि प्रथम कथित कम्पनियों को आर्थिक संघर्षों और अन्य कठिन परिस्थितियों में एक

बिल्कुल भिन्न परिस्थिति का सामना होगा। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में यदि व्यापारिक या व्यावसायिक उत्पादन मांग कम होने के कारण शिथिल हो जाए तो दीवालिया होने तक नौबत पहुंच सकती है। जो ब्याज उन्हें अपने क़र्ज़ों पर अदा करना पड़ता है वह निरन्तर बढ़ता ही चला जाता है यहां तक कि ऐसी कम्पनियों का स्थापित रखना ही असंभव हो जाता है परन्तु यदि दूसरी ओर कोई आर्थिक व्यवस्था इस्लामी सिद्धान्त के अनुसार चल रही है तो व्यवसाय में मंदी के कारण व्यवसाय और व्यापार नष्ट नहीं होगा अपितु अस्थायी तौर पर उस पर शीतल नींद की सी अवस्था व्याप्त हो जाएगी। प्रकृति की व्यवस्था में भी हम देखते हैं कि अत्यन्त कठिनाइयों और तंगी के समय में उत्तम वस्तु को उस ढंग से बचाया जाता है। जब ऊर्जा कम हो जाए तो काम का बोझ भी कम पड़ता है ताकि कहीं ऐसा न हो कि जीवित रहने के लिए कम से कम ऊर्जा भी न मिल सके। अत: इस्लामी अर्थव्यवस्था में ब्याज की अदायगी का निरन्तर बढ़ने वाला दबाव नहीं होता। इसलिए उसमें व्यावसायिक मंदी को सहन करने की योग्यता अधिक होती है और यह बुरे समय में भी बड़ी से बड़ी चुनौतियों को सामना कर सकती है।

ब्याज की निषिद्धता

इस्लामी अर्थव्यवस्था में ब्याज का बिल्कुल हस्तक्षेप नहीं है। कोई ऐतिहासिक अथवा वर्तमान साक्ष्य नहीं मिलती कि ब्याज के न होने के परिणामस्वरूप धन की प्रचुरता का संकट भयावह सीमा तक बढ़ गया हो और मूल्य आसमान से बातें करने लगे हों। ब्याज का होना न होना धन की प्रचुरता को किस प्रकार प्रभावित करता है इसकी तुलना का एक दिलचस्प अवसर वर्तमान युग में पैदा हुआ। माउज़ेतुंग के नेतृत्व में चीन की सरकार ने बहुत से आर्थिक अनुभव किए। उनमें से कुछ

तो सफल न हो सके परन्तु कुछ के बहुत शानदार परिणाम निकले। माउज़ेतुंग के समस्त शासन काल में धन-वृद्धि में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई अपितु वास्तविकता यह है कि अंतत: कुल उत्पादन में वृद्धि का रुझान पैदा हुआ और मूल्य गिरने आरंभ हो गए। चीन के विपरीत इस्राईल में (जो शायद विश्व भर में पूंजीवादी व्यवस्था का सब से बड़ा प्रतिनिधि देश है) मुद्रास्फीति की दर विश्व में सबसे अधिक रिकार्ड की गई है। यद्यपि लातीनी अमरीका के देश निश्चय ही एक अपवाद हैं। इसी प्रकार यूरोप विशेषकर जर्मनी में द्वितीय विश्वयुद्ध के तुरन्त बाद मुद्रास्फीति में अत्यधिक वृद्धि अवश्य हुई परन्तु युद्ध के पश्चात समस्त यूरोप को एक असाधारण परिस्थिति का सामना था और यह वृद्धि भी उसी का परिणाम थी। अत: सामान्य परिस्थितियों में किसी भी अर्थव्यवस्था में ब्याज की भूमिका के संबंध में विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि धन-वृद्धि और ब्याज दोनों परस्पर समवाय हैं।

ब्रिटेन में ब्याज दर की समस्या

ब्रिटेन में ब्याज की ऊंची दर के लाभप्रद पहलुओं पर वर्तमान गर्मागर्म बहस इस विषय पर अध्ययन के लिए एक रोचक उदाहरण है। टोरी अर्थात रूढ़िवादी सरकार ने एक लम्बे समय तक ब्याज-दर को ख़तरनाक सीमा तक ऊंचा किए रखा। इनके कथनानुसार इसका एकमात्र उद्देश्य व्यक्तिगत स्तर पर धन के अपव्यय को रोकना था ताकि मुद्रास्फीति (Inflation) पर काबू पाया जा सके। सरकार की इस नीति से जो कठिनाइयां पैदा हुई हैं उनके कारण अर्थव्यवस्था अत्यन्त दुर्दशा का शिकार हो चुकी है। इस वस्तु-स्थिति के अध्ययन से कई पाठ सीखे जा सकते हैं। अन्य बातों के अतिरिक्त यह बात स्पष्ट तौर पर सामने आ जाती है कि किस प्रकार कुछ महत्त्वपूर्ण

आर्थिक निर्णय एक ऐसी विचारधारा के आधार पर कर लिए जाते हैं जो स्वयं अभी सिद्ध नहीं हो सकी है। सरकार ने ब्याज दर को इतने लम्बे समय से जो कृत्रिम तौर पर बढ़ा रखा है उसकी यही व्याख्या की जा सकती है कि सरकार का विचार है कि ब्याज-दर जितनी बढ़ेगी मुद्रा-सफीति उतनी ही कम होगी। ब्रिटेन की वर्तमान परिस्थितियों में मुद्रा-स्फीति की बढ़ती हुई दर के संबंध में हमारा अध्ययन हमें बताता है कि इसका दायित्व केवल ब्याज दर पर नहीं डाला जा सकता अपितु उसके अन्य भी कई कारण हो सकते हैं। उदाहरणतया आर्थिक व्यवस्था में कुप्रबंधन या सामूहिक तौर पर दोषपूर्ण नीति। ब्याज-दर बढ़ाने से तो केवल यह हुआ है कि मूल कारणों की ओर से ध्यान हट गया है और दोषी किसी अन्य को ठहरा दिया गया है। इस कूटनीति से संभव है कि बिल्कुल आरंभ में मुद्रा-स्फीति का मुकाबला करते समय यों लगे जैसे सफलता मिल रही है परन्तु अन्ततः इस नीति से अन्य प्रभाव भी समाहृत होंगे अपितु वास्तविकता यह है कि अभी से ऐसे शक्तिशाली प्रेरक कार्यरत हो चुके हैं जो उन प्रभावों को जन्म देंगे। देश में एक ऐसी आर्थिक अवनति पैदा होगी जिसे संभालना बहुत कठिन होगा और बेकारी में वृद्धि हो जाएगी। यह कैसे स्वीकार कर लिया जाए कि कन्ज़रवेटिव सरकार (अनुदार विचारधारा रखने वाली कट्टरपंथी सरकार जो सरकार-तंत्र में परिवर्तन की विरोधी है) को बड़े-बड़े अर्थशास्त्री, अनुभवी आर्थिक योजना बनाने वालों, बैंकों तथा विद्वानों के मशवरे और निर्देशन प्राप्त नहीं हैं। ब्याज की इस ऊंची दर को कम करने में जान बूझ कर विलम्ब किया जा रहा है इसका कोई न कोई कारण अवश्य है। सरकार से कहा जा रहा है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए मुद्रास्फीति के रुझान को ऊंची ब्याज दर के द्वारा कम करना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में ये मात्र बहाना है। कहीं ऐसा तो नहीं कि यदि ब्याज-दर में इस

समय कमी की गई तो वर्तमान सरकार के हित को हानि पहुंचेगी ? लगता है ब्याज-दर में कमी इस समय विलम्ब में डालकर अगले चुनाव से तनिक पहले इसकी घोषणा कर दी जाएगी। इस प्रकार लोगों को जो सुख का सांस आएगा निश्चय ही उससे कंज़रवेटिव सरकार को राजनीतिक लाभ प्राप्त होगा परन्तु यदि यही कमी समय से पूर्व कर दी गई तो भय है कि वे दूसरे प्रभाव प्रकट होना आरंभ हो जाएंगे जिनकी ओर पहले संकेत किया जा चुका है। इस स्थिति में ब्याज दर में कमी से प्राप्त होने वाली सामयिक शान्ति राजनैतिक लाभ को नष्ट करने का कारण बन सकती है।

कुछ प्रेरक जिनके कारण यह हानिप्रद परिस्थिति पैदा हो चुकी है निम्नलिखित हैं -

(अ) ऊंची ब्याज दर ने न केवल सामान्य जनता की क्रय-शक्ति को अत्यन्त कमज़ोर कर दिया है अपितु उद्यम एवं व्यवसाय का गला घोंट कर रख दिया है।

(ब) ऊंची ब्याज दर ने जीवन की मूल आवश्यकताओं की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश लोगों की बड़ी संख्या को बुरी तरह प्रभावित किया है। सर छुपाने के लिए छत का निर्माण करना हो तो लोग भली भांति सोच-विचार करके क़र्ज़ लेते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि क़र्ज़ की क़िस्तें अदा करने के लिए उन्हें अपनी दैनिक आवश्यकताओं की बलि देनी पड़ेगी। ये लोग तो अनावश्यक और व्यर्थ ख़र्चों को पहले ही नहीं उठा सकते थे। ब्रिटिश समाज का यह वर्ग निश्चय ही मुद्रा-स्फीति के रुझान का उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

दुर्भाग्यवश ये वे लोग हैं जिन्हें मुद्रास्फीति को रोकने के लिए की जाने वाली नाममात्र कार्यवाहियों का कठोर दण्ड भुगतना पड़ता है। स्मरण रहे कि इन कार्यवाहियों का उद्देश्य यह बताया गया था कि

इन से मूल्यों में कमी होगी और सामान्य व्यक्ति को लाभ पहुंचेगा, परन्तु हुआ यह कि क़र्ज़ लेकर जो मकान निर्मित किए गए थे उनके मूल्य तीव्रता से गिरना आरंभ हो गए। अब लोगों की स्थिति यह है कि न आगे जा सकते हैं न पीछे लौट सकते हैं। न तो वे क़र्ज़ की बड़ी-बड़ी क़िस्तें अदा कर सकते हैं और न ही उन्हें उस सम्पत्ति का कोई उचित खरीदार मिल रहा है।

(ज) मुद्रास्फीति की समस्या बहुत जटिल है यद्यपि मेरे भाषण का यह उद्देश्य तो नहीं कि इस विषय पर कोई लम्बी और अनावश्यक बहस में उलझा जाए तथापि कुछ कारणों के आधार पर जिनका वर्णन बाद में होगा आप की अनुमति से इस विषय पर कुछ कहना चाहूंगा।

मुद्रास्फीति के अन्य कारणों में से एक कारण यह भी है कि क्रेता की जेब में अत्यधिक राशि होने के कारण मांग तो कृत्रिम तौर पर बढ़ जाती है परन्तु आवश्यक वस्तुओं में कोई बढ़ोतरी नहीं होती। लोगों के पास पैसा तो होता है परन्तु मार्किट में खरीदी जाने वाली वस्तुओं में कमी आ जाती है। क्रय-शक्ति (Purchasing Power) तो बढ़ जाती है परन्तु क्रय की जा सकने वाली वस्तुओं की उपलब्धता घट जाती है किन्तु ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था में कदाचित वर्तमान स्थिति यह नहीं है। यहां घूमने वाली पूंजी की अधिकता से राष्ट्रीय मार्किट में व्यावसायिक उत्पादन (Production) की खपत में वृद्धि हुई है और यह बात पर्याप्त सीमा तक ब्रिटेन के उद्योग के लिए दृढ़ता का कारण है। इस बारे में टैक्सों में कमी और अन्तर्राष्ट्रीय मंडी में पौन्ड स्टर्लिंग की उचित विनिमय दर ने भी ठोस भूमिका अदा की है ब्रिटिश पाउण्ड की इस संतुलित विनिमय दर के कारण ब्रिटिश उत्पादों के विदेशी क्रेता पैदा हुए हैं जिसका लाभ ब्रिटिश उद्योग को हुआ है जिसे पहले ही अपने उत्पादन की स्थानीय तौर पर बढ़ती हुई मांग और

खपत से सहायता मिल रही थी।

इस अवस्था में तार्किक परिणाम तो यह निकलना चाहिए था कि उत्पादों के मूल्यों में कमी हो जाती। स्पष्ट है कि उत्पादन में वृद्धि से जो लाभ प्राप्त होता है उसी में से उत्पादों की तैयारी पर होने वाले सामान्य खर्चे उदाहरणतया इमारत के किराए, बिजली के बिल आदि आसानी से अदा होने चाहिएं और मूल लागत बहुत कम हो जानी चाहिए। उद्योगपति अधिक लाभ अर्जित करना चाहता है तो भी उसके पास मूल्यों में कमी की पर्याप्त गुंजाइश मौजूद थी परन्तु ब्रिटिश आर्थिक स्थिति अपनी स्वाभाविक दृढ़ता और प्रगति की बजाए उलटी अवनति का शिकार है जिसका कारण लम्बे समय से जारी ब्याज की ऊंची दर है। आशंका है कि भविष्य में इसके और भी अधिक भयंकर परिणाम निकलेंगे। इसके साथ-साथ जो विदेशी मंडियां एक-एक करके इनके हाथ से निकल जाएंगी, उनकी नए सिरे से प्राप्ति भी कठिन हो जाएगी। यूरोप में परिवर्तनों के कारण वहां की आर्थिक शक्ति का गुरुत्व-केन्द्र पश्चिमी जर्मनी (जिसे अब जर्मनी कहना चाहिए) स्थानांतरित हो रहा है। इसके फलस्वरूप उसकी आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ हो रही है। स्पष्ट है कि ब्रिटिश आर्थिक स्थिति के लिए यह कोई उत्तम बात नहीं है। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति पर ब्याज की ऊंची दर के कुछ दूसरे प्रभाव भी पड़े हैं जो बिल्कुल नकारात्मक हैं और जिनकी ओर पहले संकेत किया जा चुका है। ब्याज-दर में कमी की घोषणा अब आवश्यक हो चुकी है। वर्तमान सरकार इस घोषणा का समय आगे-पीछे करने का असफल प्रयास तो कर सकती है, परन्तु भविष्य में यदि कन्ज़रवेटिव सरकार ही आई तो उसे अपनी ही पार्टी की पिछली सरकार की ओर से बड़ी भारी समस्याएं विरसे में मिलेंगी। इस बहस का निचोड़ और सम्पूर्ण विश्व के नीति-निर्माताओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा यह

है कि राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति नियंत्रित करने के लिए ब्याज को कार्य-सिद्धि का माध्यम बनाना फ्री मार्किट अर्थव्यवस्था की विचारधारा की जड़ों पर तलवार रखने के समान है। ब्याजी पूंजी की विचारधारा पर स्थापित अर्थव्यवस्था को वास्तव में आज़ाद नहीं कहा जा सकता जिसमें सरकार को ब्याज दर को बढ़ाने या घटाने के पूर्ण अधिकार प्राप्त हों। इस्लामी अर्थव्यवस्था में ऐसे कदम उठाने की गुंजाइश ही नहीं है जिन्हें सरकार शोषण का माध्यम बना सके।

ब्याज की अन्य हानियां

ब्याज के कुछ अन्य पहलुओं का वर्णन यहां अनुचित न होगा। बैंक परस्पर लेन-देन में जिस दर से ब्याज अदा करते हैं वह उच्च स्तर पर जमा करवाई गई पूंजी पर लागू होती है। सामान्य बचत खातों (Saving Accounts) पर इस ब्याज-दर से ब्याज अदा नहीं किया जाता। इसके बावजूद कि मूलधन और ब्याज से प्राप्त होने वाली राशियों पर ब्याज मिलता है फिर भी छोटे खातों पर मिलने वाला ब्याज पैसे की वास्तविक क्रय-शक्ति से बहुत कम होता है। यद्यपि ब्याज की अल्पकालीन दर कम और अधिक होती रहती है, परन्तु देखा जाए तो अन्ततः छोटी राशि जमा (Deposit) करने के द्वारा अर्जित किया जाने वाला ब्याज मुद्रास्फीति की दर से कम होता है। दूसरी ओर यदि इतनी ही पूंजी व्यवसाय में लगाई जाए तो उसमें पूंजी बढ़ने की वास्तव में बड़ी गुंजायश होती है।

ब्याज वाले समाज में पूंजिपति क़र्ज़ देने के लिए सदैव तैयार रहता है। इस से दृष्टि हटाते हुए कि क़र्ज़ लेने वाला राशि लौटा भी सकेगा या नहीं। जहां तक क़र्ज़ लेने वालों का संबंध है उनमें से बहुत थोड़े ही हैं जो गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं कि उनमें क़र्ज़ को लौटाने की शक्ति है या नहीं। वे नहीं जानते कि शाईलाक (Shylock) जैसे

अन्यायी साहूकारों और बड़े-बड़े आर्थिक संस्थानों और बैंकों से क़र्ज़ लेना वास्तव में भविष्य की अपनी ही आय में से क़र्ज़ लेने के समान है। ब्याज वाले क़र्ज़ के यों आसानी से मिल जाने से अपनी चादर देखे बिना पांव फैलाने की आदत और अधिक बढ़ती चली जाती है। लोग अधिक ख़र्च करने लग जाते हैं और उनकी क़र्ज़ लौटाने की शक्ति कम होती जाती है। ऐसे समाज में खर्च करने वालों (Consumers) की मांग को पूरा करने के लिए उत्पादन (Production) में वृद्धि तो हो जाती है परन्तु यह एक कृत्रिम वृद्धि होती है। एक ऐसा समाज जहां जीवन-स्तर को उच्च से उच्चतर करने की होड़ एक उन्माद का रूप धारण कर चुकी हो वहां खपत होने वाले उत्पाद नित-नए माडल्स की प्रसिद्धि ये उन्माद बढ़ता ही चला जाता है। इन विज्ञापनों द्वारा जनता धनवानों की विलासिता और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन-पद्धति से परिचित होती है। नवीन से नवीन डिज़ायन के फ़र्नीचर को देख कर उनकी आंखें फटी की फटी रह जाती हैं। मनोरंजन स्थलों पर निर्मित छोटे-छोटे विलासितायुक्त घर और उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार के इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों से सुसज्जित नवीन पद्धति के रसोई घर (Kitchens) और बाथरूम उनके ध्यान का केन्द्र बन जाते हैं यहां तक कि कम सामर्थ्य रखने वाले लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए न चाहते हुए भी इस झूठी चकाचौंध का पीछा करने लग जाते हैं जो उन्हें ब्याज पर आसानी से मिल जाती है। परिणाम स्पष्ट है कि खर्च आय से बढ़ जाता है। यदि वह अपना क़र्ज़ बिना ब्याज भी वापस करें तो फिर भी क़र्ज़ यद्यपि वर्तमान क्रय-शक्ति को तो देखने में बढ़ाता है परन्तु वास्तव में भविष्य क्रय-शक्ति का गला घोंट कर रख देता है। उदाहरणतया एक व्यक्ति एक हज़ार डालर प्रति माह कमाता है और मान लें कि वह चालीस हज़ार डालर क़र्ज़ लेकर महंगी वस्तुएं खरीदता है। अब उस व्यक्ति की क़र्ज़ वापस करने की शक्ति का निर्धारण उसकी मासिक

बचत से ही होगा। मान लें कि वह अपना पेट काट कर बड़ी कठिनाई से छ: सौ डालर मासिक में निर्वाह करने का प्रयास करता है। इस स्थिति में उसकी मासिक बचत चार सौ डालर होगी। इस थोड़े बजट में उसे एक सौ माह गुज़ारा करना होगा ताकि वह उस क़र्ज़ को उतार सके जो चालीस हज़ार डालर के राजाओं जैसे खर्च के कारण उसे लेना पड़ा था। जबकि अभी यह क़र्ज़ ब्याज रहित था। हुआ यह है कि उसने अपने भविष्य के एक सौ माह अर्थात आठ वर्ष चार माह से यह राशि उधार ली है ताकि उसे इस सारे समय में प्रारंभ में ही खर्च किया जा सके। इसका लाभ उसे केवल यह हुआ कि आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करने की बजाए उसकी इच्छा की तुरन्त पूर्ति हो गई तथा उसकी अधीरता को चैन आ गया, परन्तु यदि उसे चालीस हज़ार के क़र्ज़ पर ब्याज भी अदा करना है तो फिर वह इस से कहीं अधिक निकृष्ट स्थिति का शिकार हो जाएगा तथा अदायगी की अवधि बहुत लम्बी हो जाएगी। ऐसे व्यक्ति का लगभग बीस वर्ष तक धैर्य के साथ अपनी अधीरता का दण्ड भुगतना पड़ेगा। उसे पांच सौ डालर प्रति माह के हिसाब से क़र्ज़ वापस करना पड़ेगा और ब्याज पर ब्याज के कारण लगभग एक लाख बीस हज़ार डालर की अदायगी करना होगी। अब देखिए हानि निश्चित तौर पर क़र्ज़ देने वाले को नहीं अपितु क़र्ज़ लेने वाले को उठाना पड़ेगी। क़र्ज़ देने वाला तो एक बहुत बड़ी शक्तिशाली शोषण व्यवस्था का अंग है जो मुद्रास्फीति और क़र्ज़ के नष्ट हो जाने की संभावनाओं का निरीक्षण करने के पश्चात ही इस प्रतिभूति (ज़मानत) पर क़र्ज़ देता है कि अन्तत: उसकी तिजौरी और अधिक भर जाएगी परन्तु मुद्रा स्फीति के परिणामस्वरूप क़र्ज़ लेने वालों की स्थिति पहले से भी अधिक ख़राब हो जाएगी और उसकी क्रय-शक्ति में निरन्तर कमी होती जाएगी। यदि पहले छ: सौ डालर मासिक में बड़ी कठिनाई से गुज़ारा होता था तो अब इतनी राशि में गुज़ारा करना बिल्कुल असंभव हो जाएगा और इतने भाग्यशाली तो

कम लोग ही होंगे जिनकी वार्षिक आय में इतनी ही वृद्धि भी हो जाए जितनी मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि हुई है।

एक ऐसे समाज में जहां लोग भौतिक आनन्दों के अत्यधिक अभ्यस्त हो चुके हों वहां स्थिति और भी बिगड़ जाती है। कुछ क्षणों का राजाओं की तरह खर्च करना तथा भली प्रकार भोग-विलास के बाद दरिद्रता का एक लम्बा और नीरस समय व्यतीत करना पड़ता है। हालांकि यह उनका अपना निर्णय था और वे समझते थे कि किसी न किसी प्रकार निर्धनता और कंगाली में गुज़ारा कर लेंगे। परिणामस्वरूप पहले से भी अधिक असावधानी से, परिणामों की परवाह किए बिना अतिरिक्त क़र्ज़ ले लिया जाता है और इस प्रकार व्यय आय से अधिक बढ़ जाती है। वास्तव में आगामी कई वर्षों की कमाई क़र्ज़ देने वाले बैंकों और इसी प्रकार के अन्य आर्थिक संस्थानों के पास गिरवी रख दी जाती है। ब्याज की किश्तों का बोझ बढ़ता चला जाता है और इस से जन्म लेने वाली समस्याएं क़र्ज़दार को अपनी पकड़ में ले लेती हैं। ऐसी परिस्थितियों में आर्थिक स्थिति बड़ी तीव्रता के साथ भयानक संघर्ष की ओर बढ़ने लगती है। आखिर आप कब तक अपने भविष्य को वर्तमान के पास गिरवी रख सकते हैं। दायित्वहीन और नि:संकोच प्रकार के व्यर्थ खर्च एक दिन अवश्य रंग लाएंगे और आप एक बहुत बड़े आर्थिक संकट का शिकार हो जाएंगे। मुद्रास्फीति में अत्यधिक वृद्धि हो जाएगी। मुद्रास्फीति का मुकाबला करने के लिए ब्याज-दर में वृद्धि होगी और लोगों के पास व्यय करने के लिए पैसे कम रह जाएंगे, जिसका परिणाम आर्थिक विनाश के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकता। यदि वर्तमान स्थिति एक देश तक सीमित रहे तो भी स्वीकार नहीं होनी चाहिए, परन्तु जब इन्हीं कारणों के आधार पर सम्पूर्ण विश्व के देश आर्थिक अवनति का शिकार हो जाएं तो फिर विश्व की अव्यवस्थित आर्थिक दुर्दशा की भयावह छाया मानवजाति को घेरे में ले लेती है। यही आर्थिक दुर्दशा विश्व-युद्धों और महाविनाशों का मार्ग

प्रशस्त किया करती है। लोग दिवालिया हो जाते हैं, व्यवसाय नष्ट हो जाते हैं, व्यापारिक संघर्ष और प्रयास शिथिल पड़ जाते हैं, बेकारी की दर में वृद्धि होने लगती है और प्रापर्टी अर्थात सम्पत्ति का व्यवसाय नष्ट होने लगता है। इस समस्त वर्तमान स्थिति के फलस्वरूप चारों ओर जो निराशाएं और असफलताएं जन्म लेती हैं वह बेघर लोगों की संख्या में वृद्धि कर देती हैं। नाकामियां बढ़ जाती हैं, छल-कपट और अपराधों में वृद्धि हो जाती है। यदि ये सब कुछ वास्तव में विश्व में घटित हो जाता है तो किसी को आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। विशेष तौर पर पूंजीवादी व्यवस्था के समर्थकों के लिए तो इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में यह वर्तमान परिस्थिति उन लोगों तक ही सीमित नहीं रहती जिन्हें इतना क़र्ज़ दिया गया हो कि वापस करना उनकी सामर्थ्य से बाहर हो जाए अपितु वास्तविकता यह है कि इस प्रक्रिया से समस्त औद्योगिक भविष्य को एक सीमा तक लाभ भी होता है। अपने देश में तैयार किए जाने वाले उत्पादों का मूल्य कम करने में सहायता मिलती है और खर्च करने वालों के हाथों में धन आ जाने से उनकी क्रय-शक्ति में वृद्धि हो जाती है। इसका प्रभाव राष्ट्रीय उद्योग की उत्पादनीय योग्यता पर पड़ता है। मांग में वृद्धि के परिणाम स्वरूप उत्पादन में भी वृद्धि हो जाती है और इस प्रकार यह वृद्धि मूल्यों में कमी का कारण बनती है और राष्ट्रीय उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय मंडी में उत्तम तौर पर मुकाबला करने के योग्य हो जाता है। प्रत्यक्षत: यह दृश्य बड़ा ही मनोहर और आशाजनक दिखाई देता है परन्तु शीघ्र ही यह सुन्दर दृश्य एक अस्त-व्यस्त स्वप्न का रूप धारण कर लेता है। एक समय आता है कि सारा समाज अपनी अधीरता और आय से अधिक ख़र्च करने के कारण बैंकों के क़र्ज़ में जकड़ा जाता है। समाज की क्रय-शक्ति कम होते-होते अपनी चरम-सीमा को पहुंच जाती है। इस स्थिति में राष्ट्रीय उद्योग के पास अपने स्थायित्व के लिए

इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता कि वह विदेशी मंडियों की खोज करें। अन्यथा गुणवत्ता (Quality) और मूल्यों की दृष्टि से दूसरों का मुकाबला नहीं कर सकता। देश की आर्थिक नींव जितनी छोटी होगी उतनी ही शीघ्रता के साथ औद्योगिक विकास की यात्रा ऐसे स्थान पर आकर रुक जाएगी जहां से आगे कोई मार्ग दिखाई नहीं देगा, परन्तु यदि आर्थिक नींव विशालतर होगी तो उससे केवल यह अन्तर पड़ेगा कि भावी आर्थिक संघर्ष का वास्तविक अहसास थोड़ा ऊपर से होगा।

आइए एक दृष्टि संयुक्त राज्य अमरीका (U.S.A) पर डालते हैं कि वहां क्या संभावित परिस्थिति हो सकती है। नि:सन्देह अमरीका की अपनी मार्किट ही इतनी बड़ी है जो उसके उद्योग को सहारा दे सकती है यहां तक कि कुछ अर्थशास्त्र में पारंगत विद्वानों का विचार है कि यदि अमरीका शेष सारी विश्व-बिरादरी से कट कर पृथक भी हो जाए तो भी उसकी अपनी मार्किट की विशाल नींव उस उद्योग को बचाने के लिए पर्याप्त सिद्ध होगी, परन्तु ऐसे पारंगत विद्वान कुछ अन्य संबंधित प्रेरकों को अनदेखा कर देते हैं। यदि आप एक व्यक्ति के उपरोक्त उदाहरण को अमरीका की वर्तमान परिस्थिति पर चरितार्थ करें तो आपको स्पष्ट दिखाई देने लगेगा कि यहां भी तर्कसंगत परिणाम वही होगा जिसका वर्णन हम पहले एक व्यक्ति के उदाहरण में कर चुके हैं। अन्तर केवल यह है कि यहां आर्थिक विनाश में कुछ समय लगेगा।

अमरीकी बजट का भारी घाटा और खरबों डालर के क़र्ज़ को देखा जाए तो ज्ञात हो जाता है कि अमरीका सामूहिक तौर पर पहले ही अपनी कुल आय से अधिक व्यय कर चुका है। अमरीकी जनता अपने भविष्य से लिए हुए भारी क़र्ज़ के बोझ के नीचे दबी हुई है। अब दो ही उपाय हैं - या तो सामूहिक तौर पर राष्ट्रीय क्रय-शक्ति कम हो जाएगी या फिर क़र्ज़ देने वाले संस्थान दिवालिया हो जाएंगे। व्यक्ति के उदाहरण में एक सीमित आर्थिक स्थिति का प्रश्न

था और यहां एक विशालतर आर्थिक स्थिति हमारे सामने है। जहां तक प्रकृति के नियमों का संबंध है तो स्मरण रहे कि उन नियमों से किसी को पलायन नहीं। कुछ भी हो ये तो अपना कार्य करते रहते हैं। अत: ये परिस्थितियां जहां भी होंगी प्रकृति के नियम अपनी भूमिका अवश्य निभाएंगे।

गर्मियों की तीव्रता में तालाबों का पानी अपने वातावरण के साथ-साथ अति शीघ्र गर्म हो जाता है परन्तु झीलों का पानी गर्म होने में कुछ समय लगता है। इसी प्रकार छोटे समुद्र बड़े समुद्रों की अपेक्षा शीघ्र गर्म हो जाते हैं। सूर्य की गर्मी से पानी का तापमान बहरहाल बढ़ता है। यह एक अनिवार्य और अटल नियम है, अन्तर केवल समय का है। अन्धमहासागर के जल को गर्म होने में इतना अधिक समय लगता है कि जब तक यह पूर्ण रूप से गर्म होते हैं उसके तटों पर बसे अधिकांश देशों पर शरद ऋतु का प्रारंभ हो चुका होता है। यही कारण है कि उन देशों की जलवायु उन देशों की अपेक्षा समशीतोष्ण है जो छोटे समुद्रों के निकट बसे हुए हैं। देशों की आर्थिक स्थिति का मामला भी समुद्रों की भांति है। क़र्ज़ लेकर खर्च करने की विचारधारा मूल रूप से इतनी टेढ़ी और ग़लत है कि उससे सही और उचित परिणामों की आशा रखना मूर्खता है।

एक और महत्त्वपूर्ण और विचारणीय बात यह है कि उन्नति प्राप्त और औद्योगिक देशों की आर्थिक स्थिति और उद्योग की अवनति का प्रभाव निर्धन और अपेक्षाकृत कम उन्नति प्राप्त देशों की आर्थिक स्थिति पर भी पड़ता है और ये देश भी एक निरन्तर बढ़ते हुए भयावह ख़तरे का शिकार हो जाते हैं। औद्योगिक देशों के राजनैतिक नेता एक तो अपने उद्योग को अवनति से बचाने के लिए अपने निर्यात को बढ़ाना चाहते हैं दूसरे वे अपनी जनता का जीवन-स्तर भी स्थापित रखना चाहते हैं। इन उन्नति प्राप्त औद्योगिक देशों के राजनीतिज्ञों की

अपनी विवशताएं हैं। एक तो उनकी जनता आधुनिक सुविधाओं की अभ्यस्त हो चुकी है तथा उनका जीवन-स्तर इतना उच्च हो गया है कि उसे यथावत रखने के लिए बहुत से पापड़ बेलने पड़ते है। दूसरे ये उद्योग अपने स्थायित्व के लिए जीवन की भोग-विलास संबंधी वस्तुओं एवं नवीन से नवीन आविष्कारों की प्रसिद्धि करते रहते हैं जिससे जनता के शौक़ की अग्नि और भी भड़कती है। परिणाम यह होता है कि उच्च से उच्च जीवन स्तर की मांग बढ़ती चली जाती है। इस मांग के निरन्तर दबाव के सामने कोई राजनीतिक सरकार ठहर नहीं सकती।

एक ओर राजनैतिक नेताओं ने जनता के उच्च जीवन-स्तर को स्थापित रखना होता है और दूसरी ओर उन्हें यह चिन्ता लगी रहती है कि औद्योगिक अवनति न हो तथा अर्थव्यवस्था चलती रहे। अत: राष्ट्रीय उत्पादों के विक्रय के लिए अधिक से अधिक विदेशी मंडियों की खोज की जाती है। उन्नति प्राप्त देशों के उच्च जीवन-स्तर को स्थापित रखने के लिए तृतीय विश्व के देशों का पहले से बढ़कर शोषण किया जाता है। रूस और पूर्वी यूरोप के देशों को अपनी अर्थव्यवस्था के नवनिर्माण के लिए जिन चुनौतियों का सामना है वे और क्या हैं ? पिछले साम्यवादी विश्व से उभरने वाले नवीन पूंजीवादी देशों को विदेशी मंडियों की बढ़ती हुई आवश्यकता क्यों है ? और फिर पश्चिमी मीडिया ने अपने उत्पादों की प्रसिद्धि के द्वारा जिस प्रकार तृतीय विश्व और समाजवादी देशों की निर्धन और कंगाल जनता की इच्छाओं और मनोकामनाओं को बेचैन और व्याकुल कर रखा है क्या इसका यही उद्देश्य तो नहीं है ? इन समस्त प्रेरकों को इकट्ठा करके देखें तो ज्ञात हो जाएगा कि ये परिस्थितियां भूमंडल पर किसी ठोस परिवर्तन की द्योतक कदापि नहीं हैं।

ब्याज - शान्ति के लिए एक ख़तरा

क़ुर्आन करीम आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व उस महाविनाश के संबंध में सतर्क कर चुका है जो ब्याज पर आधारित अर्थव्यवस्था के कारण अन्ततः मानवजाति का भाग्य बन चुकी है। यह चेतावनी बड़ी स्पष्टता के साथ पूर्ण रूप से इन आयतों में विद्यमान है -

اَلَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ الرِّبٰوا لَا يَقُوْمُوْنَ اِلَّا كَمَا يَقُوْمُ الَّذِىْ يَتَخَبَّطُهُ الشَّيْطٰنُ مِنَ الْمَسِّ ؕ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْٓا اِنَّمَا الْبَيْعُ مِثْلُ الرِّبٰوا ۘ وَاَحَلَّ اللّٰهُ الْبَيْعَ وَحَرَّمَ الرِّبٰوا ؕ فَمَنْ جَآءَهٗ مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا سَلَفَ ؕ وَاَمْرُهٗۤ اِلَى اللّٰهِ ؕ وَمَنْ عَادَ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ○ يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَيُرْبِى الصَّدَقٰتِ ؕ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ اَثِيْمٍ ○ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ○ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَذَرُوْا مَا بَقِىَ مِنَ الرِّبٰٓوا اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ○ فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ۚ وَاِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ ۚ لَا تَظْلِمُوْنَ وَلَا تُظْلَمُوْنَ ○ وَاِنْ كَانَ ذُوْ عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ اِلٰى مَيْسَرَةٍ ؕ وَاَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ○

(सूरह अलबक़रह - 276 से 281)

अनुवाद - *वे लोग जो ब्याज खाते हैं वे खड़े नहीं होते परन्तु*

ऐसे, जैसे वह व्यक्ति खड़ा होता है जिसे शैतान ने (अपने) स्पर्श से हतसंज्ञ कर दिया हो। यह इसलिए है कि उन्होंने कहा कि निश्चय ही व्यापार ब्याज ही के समान है। जब कि परमेश्वर ने व्यापार को वैध और ब्याज को अवैध ठहरा दिया है। अत: जिसके पास उसके रब्ब की ओर से नसीहत आ जाए और वह रुक जाए तो जो पहले हो चुका वह उसी का रहेगा और उसका मामला परमेश्वर के सुपुर्द है और जो कोई पुन: ऐसा करे तो यही लोग हैं जो आग वाले हैं वे उसमें लम्बे समय तक रहने वाले हैं। परमेश्वर ब्याज को मिटाता है और दान-पुण्यों को बढ़ाता है और परमेश्वर प्रत्येक महाकृतघ्न (और) महापापी को पसन्द नहीं करता। निश्चय ही वे लोग जो ईमान लाए और शुभ कर्म किए और उन्होंने नमाज़ को क़ायम किया और ज़कात दी उनके लिए उनका प्रतिफल उनके प्रतिपालक के पास है और उन पर कोई भय नहीं होगा और न वे शोकाकुल होंगे। हे वे लोगो जो ईमान लाए हो ! परमेश्वर से डरो और छोड़ दो जो ब्याज में से शेष रह गया है। यदि तुम (वास्तव में) मोमिन हो और यदि तुम ने ऐसा न किया तो परमेश्वर और उसके रसूल की ओर से युद्ध की घोषणा सुन लो और यदि तुम तौबा (पश्चात्ताप) करो तो तुम्हारे मूलधन तुम्हारे ही रहेंगे। न तुम अन्याय करोगे और न तुम पर अन्याय किया जाएगा और यदि कोई दरिद्र हो तो (उसे उसकी) सुविधा तक छूट देनी चाहिए और यदि तुम दान कर दो तो यह तुम्हारे लिए अति उत्तम है यदि तुम कुछ ज्ञान रखते हो।

उपरोक्त आयतों में परमेश्वर की ओर से जो चेतावनी दी गई है उसका तात्पर्य यह है कि पूंजीवादी समाज को उन प्रकृति के नियमों द्वारा निश्चय ही दण्ड मिलेगा जो परमेश्वर के जारी किए हुए हैं और

ऐसा उस समय होगा जब वे समस्त प्रेरक जिनकी बहस ऊपर गुज़र चुकी है अन्ततः मनुष्य को आर्थिक असंतुलन और युद्ध की ओर ले जाएंगे। स्मरण रहे कि कुप्रबंधन, उपद्रव और युद्ध सदैव निर्धनों के शोषण और उनके अधिकारों को छीनने के परिणामस्वरूप खड़े होते हैं।

परमेश्वर और उसके रसूल के साथ युद्ध के बारे में सावधान करने के अर्थ ये हैं कि ऐसी सरकार जिसकी निर्भरता ब्याज पर हो अन्ततः निश्चय ही एक ऐसी स्थिति से दोचार होकर रहेगी, जब लोग एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध के लिए उठ खड़े होंगे। ब्याज के इस पहलू को विस्तार से वर्णन करने की इस समय गुंजाइश नहीं परन्तु यह बताना आवश्यक है कि क़ुर्आन करीम ने जहां भी ब्याज के निषेध का वर्णन किया उसके बाद की आयतों में सदैव युद्ध की चर्चा है। इससे ब्याज और युद्ध के मध्य संबंध का पता चलता है। जो लोग प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध की परिस्थितियों से परिचित हैं उन्हें स्मरण होगा कि उन युद्धों के आरंभ होने का एक कारण पूंजीवादी व्यवस्था थी और फिर उन्हें लम्बा करने में भी उस व्यवस्था ने विनाशकारी भूमिका निभाई थी।

दौलत के भण्डारण का निषेध

इस्लाम शोषण के प्रत्येक रूप और प्रत्येक प्रकार के अवैध और अनुचित माध्यम अपनाने का खण्डन करता है। उदाहरणतया अकूत धन का एक स्थान पर भण्डारण करना एवं वस्तुओं और खाद्य पदार्थों (अनाज आदि) का भण्डारण करना जिससे मूल्य धीरे-धीरे बढ़ते चले जाते हैं और उसका अन्तिम परिणाम सामान्य मुद्रा-स्फीति हुआ करता है। क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّ كَثِيْرًا مِّنَ الْاَحْبَارِ وَ الرُّهْبَانِ لَيَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ النَّاسِ بِالْبَاطِلِ وَ يَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ؕ وَ الَّذِيْنَ يَكْنِزُوْنَ الذَّهَبَ وَ الْفِضَّةَ وَلَا يُنْفِقُوْنَهَا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۙ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ ۙ۝ يَّوْمَ يُحْمٰى عَلَيْهَا فِيْ نَارِ جَهَنَّمَ فَتُكْوٰى بِهَا جِبَاهُهُمْ وَ جُنُوْبُهُمْ وَظُهُوْرُهُمْ ؕ هٰذَا مَا كَنَزْتُمْ لِاَنْفُسِكُمْ فَذُوْقُوْا مَا كُنْتُمْ تَكْنِزُوْنَ ۝

(सूरह अत्तौबः आयत 34, 35)

अनुवाद - हे लोगो जो ईमान लाए हो निश्चय ही यहूदी विद्वानों और ईसाई सन्यासियों में से बहुत हैं जो लोगों के धन अवैध ढंग से खाते हैं और परमेश्वर के मार्ग से रोकते हैं और जो लोग सोना और चांदी को संचित करते हैं और उन्हें परमेश्वर के मार्ग में खर्च नहीं करते तो उन्हें कष्टदायक प्रकोप की खुशखबरी दे दे, जिस दिन नर्काग्नि उस (सोना-चांदी) पर भड़काई जाएगी फिर उस से उनके मस्तक और उनके पहलू और उनकी पीठों पर निशान लगाए जाएंगे (और कहा जाएगा) यह है जो तुम ने अपने प्राणों के लिए एकत्र किया था अतः इसे चखो जो तुम एकत्र किया करते थे।

इसके बावजूद इस्लाम ने व्यक्ति को हर वैध ढंग पर धन कमाने की अनुमति दी है इस शर्त पर कि यह ढंग इस्लाम की आर्थिक आचार संहिता से अनुकूलता रखता हो। संक्षेप में यह कि इस्लाम ने व्यक्ति को निजी स्वामित्व और निजी व्यवसाय की अनुमति दी है और उसके इस मूल अधिकार को मान्यता दी है। सरकारें आर्थिक निर्माण के समय पूरा ध्यान इस बात की ओर केन्द्रित रखती हैं कि समाज का एक सदस्य अपनी आजीविका किस प्रकार कमाता है

उसकी आय कितनी है, व्यवसाय में लाभ की दर क्या है, विक्रय कितना होता है, वेतन कितना मिलता है। इन आंकड़ों के अनुसार आय पर टैक्सों का निर्धारण किया जाता है। यह सब कुछ करने के पश्चात व्यक्ति के आर्थिक मामलों में बहुत कुछ अतिरिक्त हस्तक्षेप किया जाता है। सामान्यता सरकारों की दिलचस्पी केवल व्यक्ति की आय तक सीमित होती है। सरकार को इससे कोई मतलब नहीं होता कि व्यक्ति अपनी आय या संचित की हुई दौलत को किस प्रकार व्यय करता है। वह चाहे तो अपने धन-दौलत को समुद्र में बहा दे और भोग-विलास को अपनी दिनचर्या बना ले और चाहे तो आर्थिक समृद्धि के बावजूद तंगी और कष्ट में जीवन व्यतीत करे। अपनी पूंजी को यह जहां चाहे और जिस प्रकार चाहे काम में लाए सरकार उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करती।

तथापि धर्म व्यक्ति के जीवन के उस क्षेत्र में भी नसीहत और परामर्श के रंग में हस्तक्षेप करता है। धर्म केवल यही नहीं बताता कि आजीविका किस प्रकार अर्जित करनी चाहिए अपितु यह मार्ग-दर्शन भी करता है कि अपनी कमाई को किस प्रकार व्यय करना चाहिए और किस प्रकार व्यय नहीं करना चाहिए परन्तु स्मरण रहे कि धन को व्यय करने के संबंध में धर्म के अधिकांश आदेश मूल रूप से नैतिक और आध्यात्मिक हित एवं कल्याण के निर्देशक सिद्धान्त हैं। उदाहरणतया जब इस्लाम मदिरापान, जुआ या आनन्द-प्राप्ति के अन्य अवैध माध्यमों पर व्यय करने से रोकता है तो चाहे उसका सीधा संबंध बजट से न भी हो, फिर भी किसी माध्यम से ऐसे आदेश धर्म की नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षाओं का भाग हैं। पूंजीवादी व्यवस्था में ऐसे आदेशों को व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन और उसकी अपनी इच्छा से व्यय करने के पक्ष में हस्तक्षेप समझा जाता है परन्तु स्मरण रहे कि यह सोच और यह कार्य-प्रणाली मनुष्य के लिए कोई नई बात

नहीं है। क़ुर्आन करीम से हमें यह ज्ञात होता है कि पिछली सभ्यताओं और जातियों ने भी धर्म के संबंध में इस प्रकार की कार्य-प्रणाली का प्रदर्शन किया था। यह बहस बार-बार उठाई गई कि धर्म को लोगों के व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है। प्राचीन युग में परमेश्वर के भेजे हुए एक नबी हज़रत शुऐब अलैहिस्सलाम ने जब मदयन (नगर का नाम) के लोगों को यह शिक्षा देने का प्रयास किया कि वह किस प्रकार अपने धन का समुचित उपयोग कर सकते हैं और उन्हें किन-किन ढंगों से बचना चाहिए तो उनकी जाति ने उनकी भर्त्सना की।

قَالُوْا يٰشُعَيْبُ اَصَلٰوتُكَ تَاْمُرُكَ اَنْ نَّتْرُكَ مَا يَعْبُدُ اٰبَآؤُنَآ اَوْ اَنْ نَّفْعَلَ فِيْٓ اَمْوَالِنَا مَا نَشٰٓؤُا ؕ اِنَّكَ لَاَنْتَ الْحَلِيْمُ الرَّشِيْدُ○

(सूरह हूद - 88)

अनुवाद - *उन्होंने कहा - हे शुऐब ! क्या तेरी नमाज़ तुझे आदेश देती है कि हम उसे त्याग दें जिसकी हमारे पूर्वज उपासना किया करते थे या हम अपने धन-सम्पत्ति का उस प्रकार प्रयोग न करें जैसे हम चाहें। निश्चय ही तू बड़ा सहनशील और बुद्धिमान (बना फिरता) है।*

सादा जीवन - पद्धति

इस्लाम एक सरल जीवन पद्धति को प्रस्तुत करता है। अपव्यय से रोकता है परन्तु धन के व्यय करने को प्रोत्साहन देता है।

وَلَا تَجْعَلْ يَدَكَ مَغْلُوْلَةً اِلٰى عُنُقِكَ وَلَا تَبْسُطْهَا كُلَّ الْبَسْطِ فَتَقْعُدَ مَلُوْمًا مَّحْسُوْرًا○

(सूरह बनी इस्राईल - 30)

अनुवाद - *और अपनी मुट्ठी (कृपणता के साथ) बन्द करते हुए गर्दन से न लगा ले और न ही उसे पूर्णतया खोल दे कि इसके परिणामस्वरूप तू निन्दित (और) निराश होकर बैठ रहे।*

وَاٰتِ ذَاالْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَالْمِسْكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ وَلَاتُبَذِّرْ تَبْذِيْرًا ○ اِنَّ الْمُبَذِّرِيْنَ كَانُوْٓا اِخْوَانَ الشَّيٰطِيْنِ ؕ وَكَانَ الشَّيْطٰنُ لِرَبِّهٖ كَفُوْرًا ○

(सूरह बनी इस्राईल - 27, 28)

अनुवाद - *और निकटवर्ती सम्बन्धी को उसका हक़ दे और असहाय को भी और यात्री को भी परन्तु अपव्यय न कर। निश्चय ही अपव्ययी लोग शैतानों के भाई हैं और शैतान अपने रब्ब का बहुत कृतघ्न (ना शुकरा) है।*

शादी-विवाह के खर्चे

शादी-विवाह के समारोह जिस ढंग से आयोजित किए जाते हैं वह गरीब और अमीर खानदानों के मध्य एक संवेदनशील समस्या बन जाती है। धनवानों के यहां होने वाले ठाट-बाट देख कर गरीब माता-पिता गहरे शोक और संताप में डूब जाते हैं। विशेष तौर पर जिन की बेटियां विवाह की आयु को पहुंच चुकी हों। उनके अन्दर दीर्घ निश्वास और निराशा की अग्नि भड़कने लगती है। इस्लाम ने शादी-विवाह के निमंत्रणों पर अत्यधिक व्यय करने और अपने धनैश्वर्य और बाह्य साज-सज्जा एवं ठाट-बाट के प्रदर्शन की कड़ी निन्दा की है। इस्लाम के प्रारंभिक इतिहास से पता चलता है कि विवाह के आयोजन इतने सादा हुआ करते थे कि अधिकांश लोगों को बिल्कुल बेरंग और शोभारहित दिखाई देते थे। यद्यपि अन्य समाजों के रीति-रिवाज के अनुसार मुसलमानों के यहां भी विशेषकर धनवानों के विवाहों में कई अधार्मिक रीति-रिवाज और कुरीतियां धीरे-धीरे समाविष्ट हो

गईं हैं तथापि अब भी मूल रूप से विवाह का परम्परागत आयोजन बिल्कुल सादा और आडम्बर रहित अमीर-गरीब सब के लिए एक समान तौर पर कम खर्च का प्रावधान है। विवाह की घोषणा जो कि निकाह कहलाता है - प्राय: मस्जिदों में ही की जाती है ; जहां प्रत्येक उपस्थित होता है। अमीर-गरीब सब बिना किसी भेदभाव के एकत्र होते हैं। मस्जिद किसी के वैभव-प्रदर्शन का स्थान नहीं है अपितु परमेश्वर का घर है जहां उसकी उपासना (इबादत) की जाती है। जहां तक प्रीतिभोज का निमंत्रण और विवाह के अवसर पर ख़ुशी और प्रसन्नता के प्रकट करने का संबंध है धनवानों को कड़ी चेतावनी दी गई है कि कोई ऐसा निमंत्रण जिसमें ग़रीबों को नहीं बुलाया जाता परमेश्वर की दृष्टि में बहुत बुरा निमंत्रण है। यही कारण है कि एक इस्लामी समाज में ऐसे समारोह में बहुमूल्य वस्त्रों वाले धनवानों के मध्य और सादा कपड़ों में गरीब लोग भी दिखाई देंगे जो स्वतंत्र रूप से सब से मिल रहे होंगे। गरीबों को इस प्रकार निकट से देखकर एक तो धनवानों की आंखें खुल जाती हैं, दूसरे निर्धनों को यह अवसर प्राप्त हो जाता है कि वे धनवानों के उत्तम व्यंजनों का कुछ आनंद ले सकें।

गरीबों का निमंत्रण स्वीकार करना

धनवान तथा सामाजिक दृष्टि से उच्च स्तरीय और सम्माननीय लोगों को यह विशेष तौर पर कहा गया है कि यदि कोई अत्यन्त गरीब और असहाय व्यक्ति भी उन्हें अपने घर खाने का निमंत्रण दे तो उन्हें वह निमंत्रण स्वीकार करना चाहिए। इसके बावजूद इसे अनिवार्य नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि उनके अपने पूर्व नियोजित कार्यक्रम, व्यस्तताएं और अन्य कई कठिनाइयां इसमें बाधक हो सकती हैं फिर भी हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] का यह स्थायी नियम था कि आप अत्यन्त ग़रीब व्यक्ति के निमंत्रण को स्वीकार कर लिया करते थे। आप से

प्रेम रखने वाले, आपके सब सेवक जो अमीर हों या गरीब आपके इस उपदेश का पालन करके नितान्त प्रसन्नता और गर्व महसूस करते हैं। यद्यपि वर्तमान समाज में ऐसे निमंत्रणों को इस प्रकार स्वीकार करने से यह धारणा भी उभर सकती है कि जैसे अमीरों के आमन्त्रण पर उनके पास जाकर भोजन करने के अतिरिक्त कोई कार्य ही न हो तथापि आवश्यक है कि गरीबों के प्रीतिभोज को भी कभी-कभी स्वीकार करके इस आदेश की भावना को जीवित रखा जाए।

पहले वर्णन किया जा चुका है कि मदिरापान और द्युत-क्रीड़ा को क़ुर्आन करीम ने निषिद्ध ठहरा दिया है। ख़ुशी के समारोहों पर धन लुटाने से रोका गया है। अंधाधुंध व्यय और आडम्बर के साथ जीवन व्यतीत करने की जो निन्दा की गई है वह केवल शादी-विवाह के अवसरों से ही संबंध नहीं रखती अपितु उसका क्षेत्र सम्पूर्ण मानव-जीवन पर व्याप्त है। इस शिक्षा की सुन्दरता यह है कि उसे बलात लागू नहीं किया जाता अपितु लोगों को प्रेम और सद्भाव के साथ समझा कर उसका पालन करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

खान-पान में संतुलन

يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ خُذُوْا زِيْنَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ مَسْجِدٍ وَّكُلُوْا وَاشْرَبُوْا وَلَا تُسْرِفُوْا ۚ اِنَّهٗ لَا يُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ ۝

(सूरह अलआराफ़ - 32)

अनुवाद - *हे आदम के बेटो ! प्रत्येक मस्जिद के निकट सौन्दर्य के साधनों के साथ जाया करो (अर्थात मस्जिद जाने से पहले ही अपने हृदयों को पवित्र तथा बाह्य स्वच्छता वस्त्रों तथा शरीर की भी कर लिया करो) तथा खाओ-पियो परन्तु सीमा से अधिक नहीं। निश्चय ही वह (परमेश्वर) सीमा का उल्लंघन*

करने वालों को पसन्द नहीं करता।

संसार में भूख के विरुद्ध एक संघर्ष की आवश्यकता है। समय की कमी के कारण इस विषय पर यहां विस्तार से बात नहीं की जा सकती तथापि इस सन्दर्भ में प्रथम चरण तो यह है कि भोजन को नष्ट होने से बचाया जाए। इस विषय पर मैं संक्षिप्त रूप से आगे चलकर कुछ प्रकाश डालूंगा।

क़र्ज़ का लेन-देन

इस्लाम इस बात पर बार-बार बल देता है कि जीवन की मूल आवश्यकताओं के लिए और आपातकालीन परिस्थितियों में क़र्ज़ लेना पड़ जाए तो वह ब्याज रहित अर्थात ऐसा ऋण बिना ब्याज के होना चाहिए। सामर्थ्यवान तथा धनवान लोगों का कर्त्तव्य है कि वे आर्थिक कठिनाइयों में घिरे लोगों की सहायता करें। यह बात भी स्पष्ट कर दी गई है कि यदि कोई ऋणी प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण निर्धारित समय पर ऋण अदा करने के योग्य न हो तो उसे छूट अवश्य दी जानी चाहिए। निकट संबंधी भी यदि चाहें तो ऋण की अदायगी में हाथ बटा सकते हैं। यदि ऋणी की मृत्यु हो जाए तो ऋण की अदायगी उसके पीछे छोड़ी सम्पत्ति से की जा सकती है। ऋणी के बोझ को कम करने के लिए 'ज़कात' की राशि भी प्रयोग में लाई जा सकती है और यदि एक समृद्धशाली मनुष्य किसी का ऋण माफ कर देता है तो परमेश्वर की दृष्टि में और भी अच्छा कर्म ठहरेगा। तथापि ऐसा ऋणी जो ऋण को अदा करने की सामर्थ्य रखता है उसे बहरहाल निर्धारित समय सीमा के अन्दर-अन्दर ऋण वापस करके अपने वचन को पूरा करना चाहिए अपितु उसे चाहिए कि ऋण वापस करते समय बतौर उपकार कुछ अतिरिक्त राशि भी अदा कर दे तथापि यह अतिरिक्त राशि देना अनिवार्य नहीं है और न ही पहले से उसका निर्धारण करना

चाहिए अन्यथा ऐसी अदायगी ब्याज की विशाल परिभाषा की श्रेणी में सम्मिलित हो जाएगी। ऋण के बारे में क़ुर्आन करीम की शिक्षा निम्नलिखित आयतों में वर्णन की गई है -

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اِذَا تَدَايَنۡتُمۡ بِدَيۡنٍ اِلٰۤى اَجَلٍ مُّسَمًّى
فَاكۡتُبُوۡهُ ؕ وَلۡيَكۡتُبْ بَّيۡنَكُمۡ كَاتِبٌۢ بِالۡعَدۡلِ ۖ وَلَا يَاۡبَ كَاتِبٌ
اَنۡ يَّكۡتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ اللّٰهُ فَلۡيَكۡتُبۡ ۚ وَلۡيُمۡلِلِ الَّذِىۡ عَلَيۡهِ الۡحَقُّ
وَلۡيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ وَلَا يَبۡخَسۡ مِنۡهُ شَيۡـًٔا ؕ فَاِنۡ كَانَ الَّذِىۡ عَلَيۡهِ
الۡحَقُّ سَفِيۡهًا اَوۡ ضَعِيۡفًا اَوۡ لَا يَسۡتَطِيۡعُ اَنۡ يُّمِلَّ هُوَ فَلۡيُمۡلِلۡ وَلِيُّهٗ بِالۡعَدۡلِ ؕ
وَاسۡتَشۡهِدُوۡا شَهِيۡدَيۡنِ مِنۡ رِّجَالِكُمۡ ۚ فَاِنۡ لَّمۡ يَكُوۡنَا رَجُلَيۡنِ
فَرَجُلٌ وَّامۡرَاَتٰنِ مِمَّنۡ تَرۡضَوۡنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنۡ تَضِلَّ اِحۡدٰهُمَا
فَتُذَكِّرَ اِحۡدٰهُمَا الۡاُخۡرٰى ؕ وَلَا يَاۡبَ الشُّهَدَآءُ اِذَا مَا دُعُوۡا ؕ وَلَا تَسۡـَٔمُوۡۤا
اَنۡ تَكۡتُبُوۡهُ صَغِيۡرًا اَوۡ كَبِيۡرًا اِلٰۤى اَجَلِهٖ ؕ ذٰلِكُمۡ اَقۡسَطُ عِنۡدَ اللّٰهِ
وَاَقۡوَمُ لِلشَّهَادَةِ وَاَدۡنٰۤى اَلَّا تَرۡتَابُوۡۤا اِلَّاۤ اَنۡ تَكُوۡنَ تِجَارَةً حَاضِرَةً
تُدِيۡرُوۡنَهَا بَيۡنَكُمۡ فَلَيۡسَ عَلَيۡكُمۡ جُنَاحٌ اَلَّا تَكۡتُبُوۡهَا ؕ وَاَشۡهِدُوۡۤا اِذَا
تَبَايَعۡتُمۡ ۖ وَلَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ وَّلَا شَهِيۡدٌ ؕ وَاِنۡ تَفۡعَلُوۡا فَاِنَّهٗ فُسُوۡقٌ
بِكُمۡ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ؕ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَىۡءٍ عَلِيۡمٌ ○

(सूरह अलबक़रह - 283, 284)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो ! जब तुम एक निश्चित अवधि के लिए ऋण का लेन-देन करो तो उसे लिख*

लिया करो और चाहिए कि तुम्हारे मध्य लिखने वाला न्यायपूर्वक लिखे और लिखने वाला इस से इन्कार न करे क्योंकि अल्लाह ने उसे लिखना सिखाया है। अत: चाहिए कि वह अवश्य लिखे। और वह लिखवाए जिसके ज़िम्मा (दूसरे का) हक़ है। वह लिखवाते समय परमेश्वर का जो उसका प्रतिपालक है का संयम धारण करे और उसमें से कुछ भी कम न करे। अत: यदि वह जिसके ज़िम्मा (दूसरे का) हक़ है मन्दबुद्धि हो या कमज़ोर हो या सामर्थ्य न रखता हो तो चाहिए कि उसके स्थान पर उसका प्रबन्धक न्याययुक्त तहरीर लिखवाए। और तुम अपने पुरुषों में से दो को साक्षी बना लिया करो और यदि दो पुरुष उपलब्ध न हों तो एक पुरुष और दो स्त्रियां जिन पर तुम सहमत हो, गवाह बना लिया करो। (यह) इसलिए (है) कि उन दो स्त्रियों में से यदि एक भूल जाए तो दूसरी उसे स्मरण करा दे और जब गवाहों को बुलाया जाए तो वे इन्कार न करें। तथा (लेन-देन) चाहे छोटा हो या बड़ा उसे उसकी निर्धारित समय-सीमा तक (अर्थात पूर्ण समझौता) लिखने से उकताओ नहीं। तुम्हारा यह ढंग परमेश्वर के निकट बहुत न्यायसंगत ठहरेगा और साक्ष्य को अधिक पुष्ट करने के लिए सुदृढ़ कदम होगा तथा इस बात के अधिक निकट होगा कि तुम संदेहों में न पड़ो। (लिखना अनिवार्य है) सिवाए इसके कि वह हाथों-हाथ व्यापार हो जिसे तुम (उसी समय) आपस में लेन-देन कर लेते हो। इस स्थिति में तुम पर कोई आपत्ति नहीं कि तुम उसे न लिखो और जब तुम कोई (लम्बा) क्रय-विक्रय करो तो गवाह बना लिया करो और लिखने वाले को और गवाह को (किसी प्रकार का कोई) कष्ट न पहुंचाया जाए। यदि तुम ने ऐसा किया तो निश्चय ही यह तुम्हारे लिए बड़े पाप की बात होगी। और परमेश्वर से डरो

जबकि परमेश्वर ही तुम्हें शिक्षा देता है और परमेश्वर प्रत्येक वस्तु का खूब ज्ञान रखता है और यदि तुम यात्रा पर हो और तुम्हें लिखने वाला न मिले तो कोई वस्तु गिरवी के तौर पर अधिकार में ही सही। अत: यदि तुम में से कोई किसी दूसरे के पास धरोहर रखे तो जिसके पास धरोहर रखवाई गई है उसे चाहिए कि वह उसकी धरोहर अवश्य वापस करे और अपने प्रतिपालक परमेश्वर का संयम धारण करे। और तुम गवाही को न छुपाओ और जो कोई भी उसे छुपाएगा तो निश्चय ही उसका हृदय पापी हो जाएगा और परमेश्वर उसे जो कुछ तुम करते हो भलीभांति जानता है।

यहां इस बात का वर्णन करना अत्यावश्यक है कि मध्यकालीन विचार रखने वाले विद्वानों ने इन आयतों को उनके परिप्रेक्ष्य से हटकर सर्वथा ग़लत अर्थों में प्रयोग किया है। वे इस बात पर अड़े हैं कि इस्लामी शिक्षानुसार एक स्त्री की गवाही पर्याप्त नहीं है। उनका मत है कि एक पुरुष की गवाही के सामने प्रत्येक कानूनी आवश्यकता के लिए दो स्त्रियों की गवाही आवश्यक है। उन्होंने आयतों के बिल्कुल ग़लत अर्थ करते हुए इस्लामी फ़िक़्ह में पुरुष और स्त्री की गवाही के बारे में ग़लत विचारधारा प्रस्तुत की है। उनका विचार यह है कि जब क़ुर्आन करीम एक पुरुष को बतौर गवाह बुलाता है तो उसके बदले में दो स्त्रियों की गवाही होगी। यह चित्रांकन अवास्तविक और क़ुर्आनी शिक्षाओं से बहुत दूर है। न्याय-व्यवस्था की इस समस्या पर मध्य युगों की सी संकीर्ण विचारधारा देख कर तो मनुष्य बेचैन होकर रह जाता है। इसलिए इन आयतों के संबंध में निम्नलिखित तथ्यों को अवश्य दृष्टिगत रखना चाहिए -

(1) इन आयतों में उपरोक्त दोनों स्त्रियों को गवाही देने के लिए

नहीं कहा गया।

(2) दूसरी स्त्री की भूमिका स्पष्ट तौर पर निश्चित और सीमित कर दी गई है उसकी भूमिका मात्र एक सहायक की है।

(3) यदि दूसरी स्त्री जो गवाही नहीं दे रही पहली स्त्री की गवाही में कोई ऐसी बात देखती है जिससे यह पता चलता हो कि गवाही देने वाली स्त्री ने सौदे और समझौते की भावना को पूर्ण रूप से नहीं समझा तो वह उस पर पुन: विचार करने में उसकी सहायता कर सकती है अथवा उसे कोई भूली हुई बात स्मरण करा सकती है।

(4) गवाही देने वाली स्त्री को पूर्ण अधिकार दिया गया है कि उसकी अपनी गवाही बहरहाल एक अलग स्वतन्त्र रूप रखेगी और यदि वह अपनी साथी स्त्री से सहमत न हो तो फिर उसका अपना बयान ही अन्तिम और विश्वसनीय समझा जाएगा। इस प्रसंग में आई बहस के पश्चात अब हम पुन: अपने मूल विषय की ओर वापस आते हैं। समझौतों के संबंध में इस्लाम कुछ पाबंदियां लगाता है। उदाहरणतया आर्थिक लेन-देन के बारे में समझौतों के लिए आवश्यक है कि निर्धारित शर्तें ऋणी या खरीदार लिखवाए और दोनों पक्ष परमेश्वर को उपस्थित और दृष्टा समझ कर समझौते को पूर्ण रूप से ईमानदारी और पूरी शर्तों के साथ निभाने का प्रयास करें। स्पष्ट है कि ऐसी अर्थ-व्यवस्था में जहां ब्याजरहित क़र्ज़े का रिवाज हो वहां ब्याज पर लिए गए अनावश्यक क़र्ज़ों तथा उधार की भरमार नहीं होगी और ऋणदाता अकारण लोगों को उधार नहीं देगा। इसके परिणामस्वरूप बची हुई पूंजी की बाढ़ नहीं आएगी और समाज की क्रय-शक्ति अपनी वास्तविक सामर्थ्य एवं मूल सीमाओं के अन्दर रहेगी और भविष्य में मिलने वाले प्रत्याशित धन को आज ही खर्च करने का रुझान स्वयं ही समाप्त हो जाएगा। जो उद्योग ऐसे आर्थिक आधारों पर स्थापित

होगा वह अवश्य ही ठोस और सुदृढ़ होगा तथा उसमें हर प्रकार के आर्थिक उतार-चढ़ाव में से सुरक्षित बच निकलने की योग्यता भी मौजूद होगी। संक्षेप में यह कि जनता की पूंजी अमीरों के यहां घूमती नहीं रहनी चाहिए अपितु बहाव गरीबों की ओर होना चाहिए। इस्लाम एक सादा जीवन-पद्धति को बढ़ावा देता है, मितव्ययता और परिश्रम सिखाता है न कि नीरसता और जीवन के आनंदों से उदासीनता। तथापि रहन-सहन की यह पद्धति किसी भी प्रकार से विलासिता, अपव्यय और बाह्य चमक-दमक को प्रोत्साहन नहीं देती, न ही उसमें उस सीमा तक अनुमति है जिस से गरीबों के हृदय को कष्ट पहुंचे और वे ईर्ष्या का शिकार हो जाएं और उन के हृदय निराशाओं के घर बन जाएं और इस प्रकार अमीरों तथा ग़रीबों के मध्य और भी दूरी बढ़ जाए।

आर्थिक वर्गीय अन्तर

यह बात भली भांति समझ लेना चाहिए कि धन के केवल कुछ हाथों में एकत्र हो जाने से समाज में विभिन्न वर्ग पैदा नहीं हो जाते। वर्ग पूंजी के इस वितरण के कारण अस्तित्व में आते हैं जो मालिक और मज़दूर, जागीरदार और खेतिहर के मध्य होती है। इसके अतिरिक्त भी बहुत से प्रेरक हैं जो वर्गीय ऊंच-नीच पैदा करते हैं। इन सब का यहां वर्णन करना और यह बताना तो संभव नहीं कि किस प्रकार ये सब प्रेरक पृथक-पृथक और संयुक्त तौर पर वर्ग पैदा करने में अपनी भूमिका निभाते हैं तथापि भारत के विशिष्ट रिवायती समाज का अध्ययन किया जाए तो यह बात स्पष्ट तौर पर सामने आ जाएगी कि हज़ारों वर्षों में पोषित होने वाली वर्गीय व्यवस्था किस प्रकार अस्तित्व में आती है। विकास की इस लम्बी यात्रा में केवल धन का वितरण ही प्रभावी नहीं हुआ अपितु कई सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक प्रेरक बिन्दु भी कार्य कर रहे थे। विदेशी आक्रमणकारियों

का एक लम्बा क्रम आन्तरिक संघर्ष, जीवन के परिश्रम तथा अपना आधिपत्य स्थापित करने के प्रयास, भारत में पाई जाने वाली इस जातिवादी व्यवस्था के इस परिदृश्य में आज भी स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं और वास्तव में यही वे प्रेरक हैं जिन्होंने भारत में इतने वर्गों को जन्म दिया है। कार्ल-मार्क्स ने इस परिस्थिति को गहरी दृष्टि से देखा है। न्यूयार्क के समाचार-पत्र हेरल्ड ट्रिब्यून (Herald Tribune) में प्रकाशित होने वाले पत्रों में वह हिन्दुस्तान की सामाजिक परिस्थिति को साइंटिफिक समाजवादी विचारधारा से जुड़ा हुआ नहीं समझता उसने अन्ततः यह परिणाम निकाला है कि इस जातिवादी व्यवस्था की उपस्थिति में हिन्दुस्तान के संबंध में अधिक संभावना यही है कि वह साम्यवाद की ओर कभी मुख नहीं फेर सकेगा।

इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार समाज में वर्गों की मौजूदगी उस समय कष्टदायक स्थिति पैदा कर देती है जब धन के व्यय के बारे में कोई नैतिक नियमावली मौजूद न हो। एक ऐसे समाज की कल्पना कीजिए जहां लोगों का सादा रहन-सहन है। वस्त्र, खान-पान या निवास आदि पर अनुचित अपव्यय से काम नहीं लिया जाता और विभिन्न लोगों की जीवन-पद्धति में कोई विशेष अन्तर नहीं होता वहां कुछ हाथों में कितना भी धन एकत्र क्यों न हो जाए, उस से कुछ अन्तर नहीं पड़ता। यद्यपि धन के निःसंकोच व्यय और उसके आडम्बर और दिखावे से दूसरों की भावनाएं निश्चय ही घायल होती हैं। धन बिना सोचे-समझे लुटाया जा रहा हो, जहां व्यय करना चाहिए वहां व्यय न हो और जहां आवश्यकता नहीं वहां धन को नष्ट किया जा रहा हो, इस परिदृश्य में शरीर और आत्मा का संबंध यथावत रखने के प्रयास में व्यस्त संकटों के मारे हुए दुर्दशाग्रस्त निर्धन जब अमीरों के ठाट-बाट तथा उनकी राजाओं के समान जीवन-पद्धति को देखते हैं तो धन का यह असमान वितरण उनके मध्य एक ऐसी खाई पैदा कर

देता है जिसे पाटा नहीं जा सकता।

अस्तु इस्लाम व्यक्ति की उस आज़ादी में अनावश्यक तौर पर हस्तक्षेप नहीं करता कि वह धन कमाए और बचाए। इस्लाम तो पब्लिक सेक्टर से अधिक प्राइवेट सेक्टर को प्रोत्साहन देता है और उसका विकास करता है परन्तु इसके साथ-साथ इस्लाम जीवन-पद्धति से सम्बद्ध एक निश्चित नैतिक नियमावली भी प्रदान करता है और यदि उसे पूर्ण रूप से उसकी वास्तविक भावना के साथ अपनाया जाए तो सामूहिक तौर पर जीवन सब के लिए सादा और मनोरम बन जाए। इस्लामी अर्थ-व्यवस्था की विचारधारा का यह पहलू चूंकि पहले वर्णन हो चुका है इसलिए इस पर अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

इस्लाम का विरासत का क़ानून

इस्लाम का विरासत का कानून भी एक व्यक्ति के मृत्योपरान्त उसकी छोड़ी हुई सम्पत्ति का पीछे रहने वाले वारिसों में वितरण के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आवश्यक है कि विरासत की सम्पत्ति का शरीअत द्वारा निर्धारित भागों के अनुसार माता-पिता, पत्नियों, सन्तान, रिश्तेदारों तथा अन्य स्वजनों और परिजनों में वितरण किया जाए। किसी वारिस को परमेश्वर की ओर से दिए गए विरासत के अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता, सिवाए इसके कि कोई उचित कारण हो। कारण के उचित या ग़लत होने का निर्णय कोई एक सदस्य नहीं अपितु (इस्लामी शासन में) अदालत करेगी। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे के पक्ष में वसीयत करना चाहे तो वह अपनी सम्पत्ति का अधिक से अधिक 1/3 भाग (तिहाई भाग) अपनी इच्छा से दूसरे सदस्यों अथवा संस्था इत्यादि को दे सकता है। (देखें सूरह अन्निसा आयत 8 से 13)

धन के कुछेक हाथों में एकत्र होने से रोकने के लिए ये कदम उठाने बहुत लाभप्रद और प्रभावी हैं। केवल बेटे का वारिस होना, जायदाद की किसी के पक्ष में भी वसीयत न करना अथवा वसीयतकर्ता के अधिकारों का असीमित होना कि वह अपनी इच्छा से जो चाहे करे, इन सब बातों का इस्लामी विरासत के कानून में निषेध कर दिया गया है। इसी प्रकार चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति का पीढ़ी के बाद पीढ़ी में वितरण होता चला जाता है यहां तक कि केवल तीन चार पीढ़ियों ही में बहुत बड़ी-बड़ी सम्पत्तियां भी वितरण के पश्चात सिकुड़ कर रह जाती हैं। परिणाम यह होता है कि भूमि का स्वामित्व बट जाने से हर प्रकार का एकाधिकार समाप्त हो जाता है और समाज स्थायी वर्गीय विभाजन का शिकार नहीं होने पाता।

रिश्वत का निषेध

وَلَا تَأْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَتُدْلُوْا بِهَآ اِلَى الْحُكَّامِ

لِتَأْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ○

(सूरह अलबक़रह - 189)

अनुवाद - *और अपनी ही धन-सम्पत्तियों का अपने मध्य छल-कपट द्वारा न खाया करो और न तुम उन्हें अधिकारियों के सामने (इस उद्देश्य से) प्रस्तुत करो कि तुम पाप द्वारा लोगों के (अर्थात राष्ट्रीय) धन-सम्पत्तियों में से कुछ खा सको, जबकि तुम (भली भांति) जानते हो।*

विषय के इस पहलू को अभी मुझे छोड़ना पड़ेगा तथापि यह पहलू जो अनीति और रिश्वत आदि के रूप में विशेष तौर पर तृतीय विश्व के देशों में दिखाई देता है। व्यक्तिगत शान्ति के वर्णन में पुनः बहस के अन्तर्गत आएगा।

व्यापार संबंधी आचार-संहिता

इस्लाम न तो पूंजीवादी व्यवस्था का पूर्णतया खण्डन करता है और न साइंटिफिक समाजवाद को बिल्कुल रद्द करता है। इस्लामी अर्थ व्यवस्था में दोनों की विशेषताएं सम्मिलित हैं। इस्लाम ने आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व व्यापार और लेन-देन के बारे में जो आचार-संहिता प्रस्तुत की थी उसके कुछ सैद्धान्तिक पहलू निम्नलिखित हैं। आज आधुनिक युग का मनुष्य अन्ततः बड़े कटु अनुभवों और कठिनाइयों के पश्चात उन सिद्धान्तों की खोज कर सका है -

(1) इस्लाम में व्यापारिक संबंध पूर्ण विश्वास और ईमानदारी पर आधारित हैं।
(सूरह अल बक़रह - 283, 284)

(2) इस्लाम ग़लत तराज़ू रखने और कम नाप-तोल से मना करता है।
(सूरह अलमुतफ़्फ़िफ़ीन आयत 2 से 4)

(3) दूषित माल और ख़राब वस्तुओं का विक्रय करने से व्यापारियों को मना किया गया है अर्थात ऐसी वस्तुएं जो सड़-गल चुकी हों अथवा बेकार हो चुकी हों। व्यापारी को कोई वस्तु बेचते हुए उसका दोष छुपाने का कदापि प्रयास नहीं करना चाहिए (सही मुस्लिम) यदि कोई ऐसी ख़राब वस्तु बेची जाती है जिसकी ख़राबी का व्यापारी को पहले से ज्ञान नहीं था वह ज्ञान होने पर उस वस्तु को वापस करने और अपनी राशि वापस लेने का अधिकार रखता है।

(4) व्यापारी को एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न ग्राहकों से भिन्न-भिन्न मूल्य वसूल करने से मना किया गया है तथापि अपने हित को देखते हुए किसी भी ग्राहक को कम मूल्य पर कोई वस्तु विक्रय कर सकता है। इस संदर्भ में वह कोई भी मूल्य निर्धारित करने का अधिकार रखता है।
(सही बुख़ारी व मुस्लिम)

(5) इस्लाम व्यापार में कृत्रिम मुक़ाबला करने से रोकता है। विभिन्न व्यावसायिक कम्पनियां परस्पर गठजोड़ करके उत्पादन और मार्किट पर अधिकार जमाने का प्रयास करती हैं और परस्पर प्रतियोगिता करने का निर्णय कर लेती हैं। इस्लाम ऐसी गिरोहबन्दी को सख्ती से रोकता है। नीलामी में कृत्रिम बोलियां लगाकर संभावित क्रेता को धोखा देने से भी मना किया गया है।

(सही बुख़ारी व सही मुस्लिम)

(6) इसी प्रकार इस्लाम निर्देश देता है कि वस्तुओं का विक्रय सार्वजनिक तौर पर और मुख्य रूप से गवाहों की उपस्थिति में किया जाए, क्रेता को धोखे में न रखा जाए। उसे पूर्ण रूप से बता दिया जाए कि वह क्या खरीद रहा है। (सही मुस्लिम)

संक्षेप में यह कि इस्लाम का प्रयास और नीति यह है कि अमीर और गरीब के मध्य दूरी को कम किया जाए। अत: इसके लिए वह निम्नलिखित उपाय करता है -

(1) कुछ वस्तुओं को सिरे से ही मना कर दिया गया है। उदाहरणतया मदिरापान और जुआ आदि जिसकी चर्चा पहले हो चुकी है।

(2) ब्याज द्वारा धन के ढेर लगाने से मना कर दिया गया है।

(3) व्यक्तिगत व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया गया है।

(4) धन के घूमते रहने को तीव्र कर दिया गया है।

(5) ग़रीबों के समान और सादा जीवन-पद्धति अपनाने की शिक्षा दी गई है और इसके लिए बार-बार उपदेश और नसीहत दी गई है। मनुष्य की स्वाभाविक सुशीलता से यह आशा रखी गई है कि वह धनी होने के बावजूद अपनी जीवन-पद्धति को इतना सादा और स्तर को इस प्रकार रखे कि जो ग़रीबों की पहुंच से इतना दूर न हो कि वे उसका स्वप्न भी न देख सकें।

इस सम्पूर्ण शिक्षा का उद्देश्य यह है कि हृदय में दूसरों की भावनाओं का अहसास और आदर पैदा हो और यदि कहीं अमानुषिकता और दूसरों पर अत्याचार करने का रुझान पाया जाए तो उसका गला घोंट दिया जाए। इस शिक्षा में झूठे अभिमान, छल-कपट, अधमता, भौतिकवाद, गर्व एवं अभिमान, दूसरों को तुच्छ समझने तथा इस प्रकार की अन्य बुराइयों के विरुद्ध वास्तविक अर्थों में एक पवित्र युद्ध और जिहाद की घोषणा की गई है और मनुष्य के अन्दर जो सदाचार, सभ्यता और सुशीलता है उसे जागृत किया गया है तथा दूसरों के कष्टों का अहसास दिलाया गया है। दु:ख दारिद्रय के मारे हुए इन लोगों को देखकर जो बड़ी कठिनाई के साथ अपना पेट भर सकते हैं मनुष्य को प्राय: ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते हुए अपराध का सा बोध होने लगता है। माना कि इस प्रकार के महान मान-मूल्यों के अधिष्ठाता और ऐसे उच्च श्रेणी के सभ्य लोग बहुत कम हुआ करते हैं परन्तु इस शिक्षा के जारी करने से समाज में दूसरों की भलाई का विवेक और अहसास इतना बढ़ जाता है कि यह संभव ही नहीं होता कि मनुष्य को केवल अपनी आवश्यकताओं और ऐश्वर्य की पड़ी रहे और समाज के वंचित लोगों की दुर्दशा की ओर ध्यान ही न दिया जाए। इस्लाम की शिक्षा मांग करती है कि जीवन से लोगों का संबंध मात्र अपने अस्तित्व की सीमा तक ही सीमित न रहे अपितु उन्हें अपने आस-पास की परिस्थितियों से अवगत रहते हुए जीवन-यापन का ढंग भी आ जाए और वे उस समय तक चैन से न बैठ सकें जब तक लोगों के दु:ख-दर्द कम करने और उनके जीवन-स्तर को एक सीमा तक ऊपर उठाने के लिए कुछ काम न कर लें।

मोमिनों के ऐसे समाज की विशेषताएं क़ुर्आन करीम की एक प्रारंभिक आयत में वर्णन हुई हैं जिसका इस भाषण में पूर्व भी उल्लेख किया जा चुका है परमेश्वर फ़रमाता है -

وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۝

(सूरह अल बक़रह - 4)

अनुवाद - *और जो कुछ हम उन्हें जीवनयापन के साधन देते हैं वे उसमें से खर्च करते हैं।*

जीवन की मूल आवश्यकताएं

सामाजिक एवं आर्थिक शान्ति के सन्दर्भ में प्रकाश डाला जा चुका है कि ग़रीबों और मुहताजों को दान देने की कल्पना को इस्लाम ने किस प्रकार बिल्कुल परिवर्तित कर दिया है। राष्ट्रीय धन-सम्पत्ति में जहां तक लोगों के अधिकारों का प्रश्न है क़ुर्आन करीम ने इस बारे में एक मापदण्ड का वर्णन किया है जिसके द्वारा हम यह परख सकते हैं कि कितना धन एक सामान्य व्यक्ति को मिलना चाहिए था जो कुछ गिनती के पूंजीपतियों के हाथों में एकत्र हो गया है।

وَالَّذِيْنَ فِيْٓ اَمْوَالِهِمْ حَقٌّ مَّعْلُوْمٌ ۝ لِّلسَّآئِلِ وَالْمَحْرُوْمِ ۝

(सूरह अलमआरिज - 25, 26)

अनुवाद - *और वे लोग जिन की धन-सम्पत्तियों में मांगने वालों तथा वंचित रहने वालों के लिए निश्चित हक़ है।*

इन आयतों में अमीरों को सम्बोधित किया गया है। उन्हें स्मरण कराया गया है कि उनके धन का निश्चय ही एक भाग ऐसा है जो वास्तव में भिक्षुओं और ग़रीबों का है और वही उस के अधिकारी हैं। यह अनुमान कैसे किया जाए कि गिनती के कुछ अमीर लोगों ने ग़रीबों के अधिकारों पर कब्ज़ा कर लिया है जिसके परिणामस्वरूप समाज असंतुलन का शिकार हो चुका है। इस स्थिति को परखने का मापदण्ड वे अधिकार हैं जिन का इस्लाम आश्वासन देता है इस्लामी

शिक्षा के अनुसार मनुष्य की चार मूल आवश्यकताएं हैं जो बहरहाल पूरी होनी चाहिएं।

اِنَّ لَكَ اَلَّا تَجُوْعَ فِيْهَا وَلَا تَعْرٰى ۝ وَاَنَّكَ لَا تَظْمَؤُا فِيْهَا وَلَا تَضْحٰى ۝

(सूरह 'ताहा' आयत - 119-120)

अनुवाद - *तेरे लिए निश्चित रूप से लिखा हुआ है कि न तू उसमें भूखा रहेगा और न नंगा और यह (भी) कि न तू उसमें प्यासा रहेगा और न धूप में जलेगा।*

अतः इस्लाम ने इन चार तथ्यों पर आधारित एक ऐसा घोषणा-पत्र (Charter) दिया है जिसमें जीवन की मूल आवश्यकताओं का निश्चयीकरण और उसकी परिभाषा के पश्चात उनको कम से कम अधिकारों के तौर पर शरीअत के अनुसार क़ायम कर दिया गया है और यह वे अधिकार हैं जिन्हें पूरा करना सरकार का कर्त्तव्य ठहराया गया है। अर्थात -

(1) भोजन (2) वस्त्र (3) जल (4) निवास

अन्य देशों की तो क्या कहें स्वयं ब्रिटेन (U.K.) और संयुक्त राज्य अमरीका (USA) में भी लाखों लोग ऐसे हैं जिनके पास सर छुपाने के लिए भी स्थान नहीं है अपितु ऐसे भी हैं जिन्हें अपनी भूख मिटाने के लिए कूड़े के ढेरों पर से बचा हुआ भोजन तलाश करना पड़ता है। इन घृणित और निकृष्ट दृश्यों को देखकर पूंजीवादी समाज के स्वाभाविक दोषों का अनावरण हो जाता है और उस गम्भीर गुप्त रोग का पता चलता है जो उसे अन्दर ही अन्दर खाए जा रहा है।

भौतिकवाद अपने अन्तिम रूप में स्वार्थपरता का पोषण करता है और दूसरों के दुख के अहसास से खाली कर देता है। निःसन्देह द्वितीय विश्व के अधिकांश देशों में अत्यंत ग़रीबी के कारण इससे भी अधिक

हृदयविदारक दृश्य दिखाई देते हैं, परन्तु प्रथम तो वहां सम्पूर्ण समाज ग़रीबी का शिकार है और दूसरे यह कि ये देश भी पूंजीवादी व्यवस्था की पद्धति पर चलाए जा रहे हैं। ऐसे देशों की अधिकतर प्रजा ईसाई हो या यहूदी, हिन्दू हो या मुसलमान या जिनका कोई धर्म नहीं सब की अर्थ-व्यवस्था मूल रूप से पूंजीवादी व्यवस्था से भिन्न नहीं है।

विश्व के नाममात्र उन्नति प्राप्त देशों में विद्यमान अन्धकारमय जीवनयापन करने वाली आबादियां मानवता के मुख पर अपमानयुक्त काले धब्बे हैं। इन आबादियों में बुराई का पोषण होता है और अपराध बढ़ते चले जाते हैं। अफ्रीका महाद्वीप के देशों तथा अन्य देशों में ऐसे क्षेत्र भी हैं जहां लोगों की एक बड़ी संख्या को दूर-दूर तक पीने का शुद्ध पानी तक उपलब्ध नहीं है। उन क्षेत्रों में आपको यदि एक समय भी पेट भर भोजन मिल जाता है तो आप स्वयं को सौभाग्यशाली समझते हैं। पानी की दुर्लभता एक दैनिक समस्या है। दूसरी ओर विश्व में ऐसे देश भी हैं जिनके पास वे समस्त संसाधन और माध्यम मौजूद हैं जिनसे मात्र कुछ वर्षों में उन गरीब देशों का भाग्य बदला जा सकता है और इसके साथ-साथ अमीर देशों के ख़ज़ानों में भी कोई कमी नहीं होगी, परन्तु खेद तो यह है कि उन्हें विचार तक नहीं आता कि वे अपने इन ख़ज़ानों में से कुछ भाग उन गरीब देशों के लिए भी आरक्षित कर दें जिससे उन लाखों करोड़ों लोगों के दुख-दर्द का उपचार किया जा सके। इस्लामी दृष्टिकोण से यह विषय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इस्लाम के अनुसार व्यक्ति के संकट के समय में उसकी सहायतार्थ उस देश का समाज ही उत्तरदायी नहीं अपितु किसी भी समाज के संकटग्रस्त व्यक्ति के कष्ट-निवारण का दायित्व पूर्ण मानवजाति पर आता है और उस दायित्व को पूरा करने के लिए प्रत्येक मनुष्य परमेश्वर के समक्ष उत्तरदायी है। मानवता का पद भौगोलिक सीमाओं, रंग और नस्ल तथा धार्मिक एवं राजनीतिक आस्थाओं से ऊंचा है। लोग जब भी और जहां भी अकाल, भूख या

अन्य प्राकृतिक आपदाओं का शिकार हों तो उसे एक मानवीय समस्या समझना चाहिए और प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज को न दुखों को कम करने के लिए सहायता देनी चाहिए। यह एक लज्जाजनक बात है कि विज्ञान और टैक्नॉलोजी की भरपूर उन्नति के बावजूद विश्व से भूख और प्यास समाप्त नहीं की जा सकी। कारण यह है कि इस ओर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए था नहीं दिया गया। फिर ऐसी व्यवस्था का निर्माण अवश्य होना चाहिए जिसके द्वारा समस्त देशों से एकत्र किया हुआ धन त्वरित उन क्षेत्रों में वितरित किया जा सके जहां भूख ने डेरे डाल रखे हों और अकाल के हाथों मनुष्य मौत के घाट उतर रहे हों अथवा जहां लोग बिल्कुल धनहीन और बेघर हो चुके हों।

सरकार के दायित्व राष्ट्रीय भी हैं और अन्तर्राष्ट्रीय भी। राष्ट्रीय स्तर पर सरकार का दायित्व तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की मूल आवश्यकताएं पूर्ण की जाएं और इस बात को सुनिश्चित किया जाए कि बिना अपवाद सब को भोजन, शरीर ढकने के लिए कपड़ा, पीने के लिए पानी और सर छुपाने के लिए घर उपलब्ध हो। अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व (जिनका वर्णन आगे आएगा) ये हैं कि मानवता पर आने वाली आपदाओं का मुकाबला करने के लिए केन्द्रीय फण्ड की स्थापना तथा अन्य संसाधनों को एकत्र करने में भरपूर भाग लिया जाए। प्राकृतिक आपदाएं हों अथवा मानव द्वारा आए हुए संकट। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व है कि उन देशों की सहायता की जाए जो ऐसे संघर्षों से भली भांति जूझने की शक्ति न रखते हों। परिस्थितियों के सुधार हेतु सरकार का यह कर्त्तव्य है कि जो कुछ वास्तव में गरीबों और भिक्षुकों की सम्पत्ति है वह उनको वापस हस्तांतरित हो ताकि वे भी उचित रूप से जीवन व्यतीत कर सकें। इस सन्दर्भ में चार मूल आवश्यकताएं अर्थात भोजन, कपड़ा, पानी और निवास को अन्य समस्त वस्तुओं पर प्रमुखता प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में एक वास्तविक इस्लामी शासन में कोई निर्धन और मुहताज ऐसा नहीं हो सकता जिसे भीख मांगने का

अपमान सहन करना पड़े और जिसकी ये चार मूल आवश्यकताएं पूरी न हों, यदि इन आवश्यकताओं के पूरा होने का आश्वासन मिल जाए तो सरकार अपने कम से कम दायित्व को निभाकर दायित्व को पूर्ण करने वाली हो जाएगी। यद्यपि सामूहिक तौर पर समाज के अन्य दायित्व इससे कहीं अधिक हैं।

यह कथन कि - "मनुष्य केवल रोटी से जीवित नहीं रहता" अपने अन्दर बड़े गहरे अर्थ रखता है। इसके अनुसार कथित मूल आवश्यकताएं साफ और स्वास्थ्यप्रद पानी, उचित लिबास और उचित निवास स्थान में परिवर्तित हो जाती हैं तथापि ये समस्त पूरी होने से भी जीवन पूर्ण नहीं होता। मनुष्य सदैव इन मूल आवश्यकताओं से बढ़कर किसी अन्य वस्तु की खोज में रहता है। अत: आवश्यक है कि समाज गरीबों के नीरस जीवन में रंग भरने के लिए कोई उचित एवं प्रभावी पग उठाए और अमीरों की खुशियों में उन्हें भी भागीदार बनाए। फिर केवल यही पर्याप्त नहीं कि समाज के सौभाग्यशाली और अमीर लोग अपने धन में से गरीबों को उनका भाग लौटा दें अपितु आवश्यक है कि वे गरीबी के इन दुखों में भी उनके भागीदार हों जिन में लोगों की एक बहुत बड़ी संख्या ग्रसित है तथा सिसक-सिसक कर जीवन के दिन पूरे कर रही है। अनिवार्य तौर पर ऐसा प्रबंध होना चाहिए जिसके द्वारा अमीर और गरीब परस्पर घुल मिल सकें। उच्च वर्ग से संबंध रखने वाले अमीर लोग प्रसन्नतापूर्वक निम्न स्तर के लोगों से मिलें, ताकि वे स्वयं अपनी आंखों से देख सकें कि ग़रीबी में जीवन व्यतीत करने के क्या अर्थ होते हैं। इस्लाम कई ऐसे उपाय करता है जिन से यह असंभव हो जाता है कि समाज अलग-अलग वर्गों में इस प्रकार विभाजित हो जाए कि उनका कोई परस्पर संबंध ही न रहे और वे एक-दूसरे से कट कर रह जाएं। इन उपायों में से कुछ का संक्षेप में वर्णन पहले किया जा चुका है। कुछ का वर्णन अब किया जाएगा।

इबादत (उपासना) सामाजिक एकता का एक माध्यम

(1) प्रारंभ में ही यह इक़रार कि परमेश्वर एक है और उसके अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं है। स्रष्टा और सृष्टि में एकता के रिश्ते को स्थापित करता है और स्रष्टा का एक होना सृष्टि में एकता पैदा करने का माध्यम है।

(2) प्रतिदिन पांच समय की जमाअत के साथ नमाज़ एकता पैदा करने का कदाचित बहुत प्रभावी माध्यम है। अमीर और ग़रीब, छोटे और बड़े बिना अपवाद सब को मस्जिद में नमाज़ अदा करने का आदेश है यद्यपि सब के लिए मस्जिदों तक पहुंचना संभव नहीं होता तथापि मुस्लिम समाज में लोगों की एक बड़ी संख्या जो मस्जिद तक पहुंच सकती है उन पर इस आदेश की पाबंदी करना अनिवार्य है। प्रतिदिन नियमित रूप से पांच समय की नमाज़ों को जमाअत के साथ अदा करने वालों की संख्या भिन्न-भिन्न देशों कम या अधिक हो सकती है तथापि मुसलमानों की बहुसंख्या को मस्जिदों में आकर नमाज़ें अदा करने का अवसर अवश्य मिलता है। नमाज़ की यह व्यवस्था स्वयं में मानव-समानता का एक महान सन्देश है। मस्जिद में पहले पहुंचने वाला जहां चाहे बैठे और बाद में आने वाला कोई व्यक्ति चाहे वह समाज में कितना भी ऊंचा पद क्यों न रखता हो पहले आने वाले को उसके स्थान से उठाने की कल्पना तक नहीं कर सकता। नमाज़ के समय समस्त लोग कंधे से कंधा मिलाकर इस प्रकार पंक्तिबद्ध हो जाते हैं कि उनके मध्य कोई खाली स्थान नहीं रहता। उत्तम लिबास पहने व्यक्ति के पहलू में एक अन्य नमाज़ पढ़ने वाला फटे-पुराने कपड़े पहने हुए नमाज़ अदा कर रहा होता है।

पीले चेहरों वाले अत्यन्त निर्बल और कमज़ोर लोग तथा स्वस्थ और शक्तिशाली लोग प्रतिदिन पांच बार एक ऐसे स्थान पर एक-दूसरे से मिलते हैं जहां सब समान होते हैं और जहां से सदैव और बार-बार अल्लाहो अकबर (परमेश्वर सब से महान है) का सन्देश दिया जाता है। अपने क्षेत्र के लोगों से बार-बार मिल कर तथा लोगों के दुख-दर्द को अपनी आंखों से देखकर अपेक्षाकृत आराम और ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करने वाले हृदय प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। इस प्रकार उन्हें यह अहसास होता है कि लोगों के कष्टों को कम करने और उनकी जीवन पद्धति को उत्तम बनाने के लिए अवश्य कुछ करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं करते तो परमेश्वर के निकट आपका सम्मान कम हो जाएगा अपितु आप स्वयं अपनी दृष्टि में गिर जाएंगे।

इस परस्पर सम्पर्क और मेल-जोल में प्रत्येक जुमा के दिन और भी बढ़ोतरी हो जाती है। उस दिन समस्त मुसलमान एक केन्द्रीय मस्जिद में एकत्र होते हैं और इस प्रकार गरीब आबादियों के रहने वालों और अमीर क्षेत्रों के लोगों में संपर्क पैदा होता है। वर्ष में दो ईदों के अवसर पर सम्पर्क विशालतम हो जाता है। ईदुल-फित्र से पूर्व ग़रीबों की सहायता के लिए फितराना दिया जाता है जो एक ऐच्छिक चन्दा है।

(3) रमज़ान का महीना अमीरों और ग़रीबों को एक बार फिर एक ही पंक्ति में ला खड़ा करता है। उस महीने में अमीर लोग भी भूख और प्यास की तीव्रता सहन करते हैं। इस प्रकार उन्हें उन असंख्य लोगों को स्मरण कराया जाता है भूख और प्यास जिनकी जीवन की दिनचर्या है।

(4) ज़कात के द्वारा अमीरों को धन में से गरीबों का हक़ उन्हें

हस्तांतरित हो जाता है।

(5) इस्लाम का पांचवां स्तंभ हज है। सामान्यतया हज के संबंध में कहा जाता है कि यह मानव-एकता का महानतम प्रकटन है। हज में स्त्रियों को बिल्कुल सादा सफेद रंग के सिले हुए कपड़े पहनने की अनुमति होती है जबकि पुरुष केवल दो बिन सिली हुई चादरें ओढ़ते हैं। अमीर और ग़रीब सब के लिए यही एक लिबास निर्धारित है। यही पर्याप्त नहीं उपरोक्त इबादतों (उपासनाओं) के अतिरिक्त मुसलमान समाज में और भी ऐसे बहुत से प्रभावी कदम उठाए गए हैं जिनके द्वारा विभिन्न वर्गों के मध्य दूरी कम से कम होती चली जाती है। इस प्रकार एक स्वस्थ वातावरण के लिए परस्पर सम्पर्क और मेल-मिलाप की एक बड़ी आवश्यकता पूरी होती रहती है और समाज घुटन का शिकार नहीं होने पाता। इस स्वस्थ समाज में अमीरों को यह अनुमति तो है कि वे उचित सीमाओं में रहते हुए अपनी अमीरी से लाभान्वित हों परन्तु साथ ही उन्हें गरीबों की देखभाल का आदेश भी दिया गया है।

हज़रत मसीह अलैहिस्सलाम के इस कथन में कि - "**कमज़ोर और विनीत लोग पृथ्वी के वारिस होंगे।**"

इस सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। यह एक खेदजनक परिस्थिति है कि इस नैतिक शिक्षा के बावजूद पूंजीवादी व्यवस्था समाज के कमज़ोर और गरीब लोगों की देखभाल में असफल रही है।

वैश्विक दायित्व

यदि कोई समाज किसी प्राकृतिक आपदा या विपत्ति का शिकार हो जाए तो इस स्थिति में उसकी किस प्रकार और क्या-क्या सहायता की जा सकती है (देखें जीवन की मूल आवश्यकताओं की उपरोक्त कथित

बहस) क़ुर्आन करीम निम्नलिखित क्रम से इस का वर्णन करता है :-

فَكُّ رَقَبَةٍ ۙ اَوْ اِطْعٰمٌ فِیْ یَوْمٍ ذِیْ مَسْغَبَةٍ ۙ یَّتِیْمًا ذَا مَقْرَبَةٍ ۙ اَوْ مِسْكِیْنًا ذَا مَتْرَبَةٍ ؕ

(सूरह अलबलद 14 से 17)

अनुवाद - *"गर्दन का आज़ाद करना या एक सामान्य निराहार दिन में भोजन कराना, ऐसे अनाथ को जो निकट संबंध वाला हो या ऐसे असहाय को जो धूल में अटा हुआ हो।"*

दूसरे शब्दों में उचित प्रमुखताएं ये होंगी :-

(1) इन आयतों में मानव जाति की उस वास्तविक और सच्ची सेवा का वर्णन है जो परमेश्वर के समक्ष स्वीकार की जाती है। सब से अधिक तो वे लोग सहायता के पात्र हैं जो दासों के समान जीवन यापन करने पर विवश हैं अर्थात क़ैद और प्रतिबंध का शिकार या उनकी आज़ादी किसी अन्य ढंग से छीनी जा चुकी है। उन लोगों की किसी भी प्रकार की सेवा जो इस विचारधारा की भावना के विपरीत हो परमेश्वर के निकट कोई महत्त्व नहीं रखती। इस दृष्टि से अल्प उन्नति प्राप्त देशों की आर्थिक सहायता की वर्तमान व्यवस्था जिसमें सहायता के साथ बहुत सी शर्तें और प्रतिबंध लगा दिए जाते हैं पूर्णरूप से रद्द किए जाने योग्य है।

(2) तत्पश्चात प्रथम अधिकार अनाथ का है। अनाथ का कोई अभिभावक हो या न हो आवश्यक है कि उसके लिए उचित भोजन की व्यवस्था की जाए।

(3) इस के पश्चात ऐसे निर्धन और असहाय का अधिकार है जो निर्धनता के कारण मिट्टी में मिल चुका हो। उसके लिए भी खाने-पीने का सन्तोषजनक प्रबंध किया जाना आवश्यक है।

यद्यपि प्रत्यक्षतया इन आयतों में सम्बोधन तो एकवचन में है परन्तु बिल्कुल स्पष्ट है कि यहां चर्चा एक बहुत बड़ी और विशालतम आपदा की हो रही है। शब्द "यौम" के अर्थ 'दिन' के हैं। आयतों का अर्थ और सामान्य वर्णन शैली स्पष्ट तौर पर बता रही है कि अमीर, शक्तिशाली और बड़े-बड़े देश गरीब की प्रतिकूल परिस्थितियों में सहायता तो करते हैं परन्तु उसके साथ ही कई प्रकार के प्रतिबंध और शर्तें भी लगा देते हैं। इस प्रकार सहायता की वास्तविक भावना समाप्त हो जाती है और मूल उद्देश्य का मरण हो जाता है। प्रत्यक्षतया एक कष्ट से मुक्ति पाते ही जाति एक और कष्ट का शिकार हो जाती है। इन आयतों में अन्तर्राष्ट्रीय सहायता की इस वर्तमान व्यवस्था का संक्षिप्त और दो टूक शब्दों में वर्णन कर दिया गया है। मोमिनों से कहा गया है कि गरीब और असहाय लोगों या जाति के कष्टों और दुखों का निवारण तो करें परन्तु उनकी विवशता से अनुचित लाभ उठाते हुए उनकी आज़ादी न छीनें। 'यतीम' का शब्द व्यापक अर्थों में प्रयोग हुआ है इसे उन लोगों या जातियों पर भी बोला जाता है जिन की सम्पूर्ण निर्भरता दूसरों की सहायता पर है। ऐसी जातियों का उदाहरण उन 'यतीमों' की भांति है जिन के अमीर रिश्तेदारों ने उन से सबंध-विच्छेद कर लिया हो। अत: उन्हें इस आशा पर दयनीय अवस्था में नहीं छोड़ देना चाहिए कि कदाचित उन के रिश्तेदार जिन पर उनकी सहायता का मूल दायित्व आता है उनकी सहायता के लिए आगे आएं। तेल सम्पदा से सम्पन्न देश इसका उत्तम उदाहरण हैं। यदि केवल अरबियन गल्फ (Arabian Gulf) की ही कुछ सरकारें मिलकर मानव जाति के कष्टों को कम करने के प्रयास करतीं तो वे अफ्रीका महाद्वीप में भूख और दुर्भिक्ष की समस्या का समाधान कर सकती थीं जबकि उनके अपने ख़ज़ानों में इससे लेशमात्र भी कमी नहीं आती। बैंकों में मौजूद धन-पर्वतों से उन्हें जो ब्याज मिलता है और

पश्चिमी देशों में मौजूद सम्पत्तियों से उन्हें जो आय होती है अफ्रीका की भूमि के दुखों और कष्टों को कम करने के लिए वही पर्याप्त है। यों भी ब्याज की जो राशि ये देश प्राप्त करते हैं उसे अपने प्रयोग में नहीं ला सकते क्योंकि इस्लाम उन्हें ऐसा करने से रोकता है। इसी प्रकार बंगलादेश में भांति-भांति की आपदाओं के फलस्वरूप पैदा होने वाले करोड़ों गरीब और भूखे लोग भी हमारे ध्यान के पात्र हैं। इस जाति को समस्त संसार ने उनके हाल पर छोड़ दिया है और यदि उन तक कुछ सहायता पहुंचती भी है तो वह उनके दुखों का उपचार करने के लिए बिल्कुल अपर्याप्त है।

ये वे जातियां हैं जिन्हें 'यतीम' समझा जाना चाहिए क्योंकि 'यतीम' का शब्द अपने व्यापक अर्थों में उन पर निश्चय ही चरितार्थ होता है। यदि ऐसी जातियों को उनके निकट संबंधी भी परिस्थितियों की दया पर छोड़ दें तो परमेश्वर की दृष्टि में यह अवहेलना एक क्रूर अपराध होगी।

गरीब जातियों के कष्टों के लिए परमेश्वर अथवा प्रकृति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस प्रकार की सोच मूर्खता और उल्टी समझ पर आधारित होगी। वास्तव में मनुष्य स्वयं इस निर्दयता और चेतना के अभाव का उत्तरदायी ठहरता है। यदि हम मनुष्यों के हृदयों में दूसरों के लिए कष्ट उठाने की भावना भर दें तो आज भी यह संसार स्वर्ग में परिवर्तित हो सकता है।

इस्लामी संसार से बाहर के संसार में भी प्रत्येक स्थान पर ऐसी स्वार्थपरता कार्यरत दिखाई देती है। उदाहरणतया यदि इथोपिया के सोवियत संघ के साथ निकट संबंध हैं तो अन्य देशों के लिए उसकी सहायता न करने का यह बहाना नहीं होना चाहिए कि यह पूर्ण रूप से सोवियत संघ का दायित्व है। यदि मुसलमान देश सूडान में करोड़ों

लोग भूखे मर रहे हैं तो उनकी इस दयनीय अवस्था से यह कह कर आंखें बन्द नहीं की जा सकतीं कि उनको खिलाने-पिलाने का दायित्व सऊदी अरब पर आता है या तेल-सम्पदा से सम्पन्न अन्य मुसलमान देशों पर है क्योंकि सूडान के वही निकटवर्ती और मित्र देश हैं। يَّتِيۡمًا ذَا مَقۡرَبَةٍ के शाब्दिक अर्थ ऐसे यतीम के हैं जो निकट संबंधी हो। इस आयत में यह भी संकेत दिया गया है कि आर्थिक संकटों में ग्रस्त लोगों या जातियों को अपने पैरों पर खड़ा करने में सहायता देनी चाहिए। तृतीय विश्व के अधिकांश देशों में हमें यह दिखाई देता है कि उनकी आर्थिक स्थिति यथासमय और बड़े स्तर पर सहायता न मिलने के कारण तेज़ी से तबाही की ओर जा रही है।

क़ुर्आन करीम की इस आयत के अनुसार सहायता का तीसरा संभावित रूप اَوۡ مِسۡكِيۡنًا ذَا مَتۡرَبَةٍ ऐसी आर्थिक स्थिति पर बोला जाता है जो बिल्कुल तबाह हो चुकी हो और अर्थव्यवस्था की पूरी इमारत ही पृथ्वी में धंस चुकी हो। क़ुर्आन करीम की शिक्षानुसार ऐसे देशों के लोगों का पेट भर देना ही पर्याप्त नहीं है मानवजाति का यह भी दायित्व है कि वह ऐसे उपाय करे जिनके द्वारा उन देशों की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सके। दुर्भाग्यवश वर्तमान युग के व्यापारिक संबंधों की विशेषता इस के बिल्कुल विपरीत है। धन का प्रवाह अमीर और अधिक उन्नत देशों की ओर है जबकि गरीब देशों की अर्थव्यवस्था क़र्ज़ों के बोझ के नीचे दबी चली जा रही हैं। मैं एक माहिर अर्थशास्त्री तो नही हूं परन्तु कम से कम इतना तो अवश्य समझता हूं कि तृतीय विश्व के देशों के लिए विकसित देशों के साथ दो पक्षीय व्यापारिक संबंधों को जारी रखना अपनी धन-सम्पत्ति के प्रवाह को उन देशों की ओर रोके बिना असंभव है। स्पष्ट है कि धन के इस प्रवाह को निर्यात से प्राप्त आय तथा आयात पर होने वाले व्यय को बराबर और एक समान करके ही रोका जा सकता है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात भी दृष्टिगत रहनी चाहिए कि आर्थिक तौर पर समुन्नत जातियों में अपना जीवन-स्तर उत्तम बनाने की एक स्थायी इच्छा विद्यमान है। गरीब जातियों को भी प्रोत्साहित किया जाता है कि वे भी ऋण लेकर अपने जीवन-स्तर को विकसित देशों के स्तर के अनुसार बना लें। हालांकि वह टेक्नालॉजी जिसके द्वारा प्रत्येक कार्य बटन दबाने से होने लगता है एक आसान और आरामदायक जीवन का अभ्यस्त बना देती है और मनुष्य में कठिन परिश्रम करने की विशेषता को हानि पहुंचाती है। विकसित देशों के सब लोग मात्र अपने पेट भरना चाहते हों और अपने चेहरों को ही स्वस्थ देखना चाहते हों तो उन से यह आशा कैसे की जा सकती है कि वे गरीब जातियों को लगे हुए रक्त की कमी के प्राणघातक रोग का कुछ उपचार कर सकेंगे। वे उन निर्बल और अशक्त जातियों के लिए क्या कर सकते हैं जबकि स्वयं उनकी अपनी रक्त की प्यास नहीं बुझ रही। प्रत्येक वह वस्तु जो खरीदी जा सकती है उनकी आर्थिक स्थिति की ओर ही हस्तांतरित हो रही है और उनका जीवन स्तर प्रत्येक अवस्था में ऊंचा होता चला जा रहा है। जीवन स्तर को उच्च से उच्चतर करने की जो पागल कर देने वाली दौड़ हर ओर लगी हुई है उसके परिणामस्वरूप गरीब जातियों में जीवन की अन्तिम सांस भी रुकती जा रही है। केवल यही नहीं स्वयं विकसित देशों के लोगों की मानसिक शान्ति भी समाप्त हो रही है और वे सन्तोष के धन से वंचित हो रहे हैं। समस्त समाज कृत्रिम तौर पर पैदा की हुई आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए उद्विग्न है। प्रत्येक व्यक्ति هَلْ مِنْ مَّزِيْد (और भी है ?) की मस्ती में मस्त है, हर कोई दूसरे से आगे निकलने का अभिलाषी है। यही वह स्थिति है जो अन्ततः जातियों को युद्ध की ओर ले जाती है और यही वह रुझान है जिसे इस्लाम ने बड़ी सख्ती से रोका है। इस्लाम एक ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत करता है जिसमें लोग अपने संसाधनों

के अन्दर रहते हुए जीवन व्यतीत करते हों और किसी भावी कठिनाई के समय के लिए कुछ बचा कर रखते हों तथा यह जीवन पद्धति केवल एक सदस्य या खानदान तक सीमित न हो अपितु राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनाई गई हो।

अरब देशों के लिए ऐसी स्थिति में बहुत से ख़तरे छुपे हुए हैं। जिसका कारण यह है कि जब नई उभरने वाली आर्थिक स्थिति की ओर से प्रतिस्पर्धा की नई चुनौतियां पैदा होती हैं तो विकसित देश कठिनाइयों का शिकार हो जाते हैं और उनकी अपनी अर्थव्यवस्था का पहिया रुक जाता है। परिणाम स्वरूप ऐसे देश तृतीय विश्व के देशों अथवा अन्य गरीब देशों के साथ अपने संबंधों में और भी अधिक चेतना के अभाव एवं अनुदारता का प्रदर्शन करने लगते हैं और ऐसा होना अनिवार्य है क्योंकि उन देशों की सरकारों ने अपनी जनता का जीवन स्तर उस सीमा तक बहरहाल कायम रखना है जिसकी वह अभ्यस्त हो चुकी है। अन्तत: यह स्थिति निकृष्ट से निकृष्टतम होती चली जाती है और ऐसे प्रेरकों को जन्म देती है जिनका अन्त युद्धों पर होता है और इस्लाम मानवता को युद्धों से सुरक्षित रखना चाहता है।

अध्याय - 5

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक शान्ति

- इस्लाम किसी राजनीतिक व्यवस्था का पूर्णतया खंडन नहीं करता।
- बादशाहत
- प्रजातंत्र क्या है ?
- प्रजातंत्र की इस्लामी विचारधारा
- इस्लामी प्रजातंत्र के दो स्तंभ
- परामर्श करना
- इस्लामी सरकार क्या है ?
- मुल्लाइयत
- क्या धर्म का वफादार सरकार का गद्दार हो सकता है ?
- क्या केवल धर्म ही को कानून बनाने का अधिकार है ?
- इस्लाम और सरकार
- अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की नींव पूर्ण न्याय पर है।
- संयुक्त राष्ट्र की भूमिका

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰٓى اَهْلِهَا ۙ وَاِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ بِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ سَمِيْعًا بَصِيْرًا ○

(सूरह अन्निसा - 59)

अनुवाद - *निश्चय ही परमेश्वर तुम्हें आदेश देता है कि तुम अमानतें उन के हक़दारों के सुपुर्द किया करो और जब तुम लोगों के मध्य फैसला करो तो इंसाफ़ के साथ फैसला करो। निश्चय ही परमेश्वर जिस बात की तुम्हें नसीहत करता है वह बहुत (ही) उत्तम है। परमेश्वर निश्चय ही बहुत सुनने वाला (और) गहरी दृष्टि रखने वाला है।*

इस बात का निरीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है कि आज राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक शान्ति की वर्तमान स्थिति क्या है। सर्वप्रथम इस प्रश्न का उत्तर मालूम करना होगा कि मनुष्य के लिए कौन सी राजनीतिक व्यवस्था सब से उत्तम है। इसके लिए यह जानना भी आवश्यक होगा कि क्या किसी जाति का असंतोष और उनके संकट का कारण उनकी राजनीतिक व्यवस्था की असफलता तथा उसमें पाए जाने वाले दोष हैं या इसके परिदृश्य में कोई अन्य प्रेरक काम कर रहे हैं फिर यह कि क्या व्यवस्था की असफलता की उत्तरदायी स्वयं व्यवस्था है या उस व्यवस्था को चलाने वाले ? और क्या प्रजातंत्रीय प्रक्रिया के द्वारा शासन पर कब्ज़ा करने वाला, स्वार्थी, लालची और नियमों की अवहेलना, राजनीतिक लीडर अच्छे हैं या उदाहरणतया एक ऐसा शासक जो सदाचारी और सुशील मनुष्य हो ? तथा इस्लाम विश्व-शान्ति को सुनिश्चित बनाने के लिए जीवन के अन्य क्षेत्रों की भांति राजनीतिज्ञों को भी एक पूर्ण आचार-संहिता का पाबन्द रहने का उपदेश देता है।

इस्लाम किसी राजनीतिक व्यवस्था का पूर्णतया खण्डन नहीं करता

सर्वप्रथम यह बताना आवश्यक है कि जहां तक विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं का संबंध है, इस्लाम न तो किसी राजनैतिक व्यवस्था का खण्डन करता है और न ही किसी एक व्यवस्था को सर्वश्रेष्ठ और उच्चतम ठहराता है। नि:सन्देह क़ुर्आन करीम प्रजातंत्रीय व्यवस्था की भी चर्चा करता है जिसमें प्रजा अपने शासक स्वयं निर्वाचित करती है परन्तु प्रजातंत्र ही इस्लाम द्वारा प्रस्तुत एकमात्र शासन व्यवस्था नहीं, न ही विश्वव्यापी धर्म का यह काम है कि वह विश्व के विभिन्न

देशों और समाजों के लिए एक ही प्रकार की व्यवस्था प्रस्तावित करे। क्योंकि एक ही राजनीतिक व्यवस्था विभिन्न क्षेत्रों और विभिन्न समाजों के लिए व्यावहारिक नहीं हो सकती।

विश्व की विकसित जातियों में भी प्रजातंत्रीय प्रक्रिया उस चरमोत्कर्ष तक नहीं पहुंची जिस से एक संगठित समाज निर्माण पाता है जो प्रजातंत्र का अन्मिम लक्ष्य है। वास्तविकता यह है कि एक शक्तिशाली पूंजीवादी व्यवस्था में संगठित जातियों एवं स्वार्थी लोगों की उपस्थिति में सही तौर पर निष्पक्ष चुनाव हो ही नहीं सकते। इसी प्रकार भ्रष्टाचार की बढ़ती हुई बाढ़ भी वास्तविक प्रजातंत्र के अस्तित्व के लिए एक खतरे से कम नहीं। इसी प्रकार माफ़िया (Mafia) अर्थात गुप्त संगठनों, धौंस, धांधली से काम लेने वाले अन्य गिरोहों को देखते हुए यह परिणाम निकाला जा सकता है कि विश्व के बड़े-बड़े प्रजातंत्र वाले देशों में भी प्रजातंत्र सुरक्षित हाथों में नहीं है। प्रश्न यह है कि फिर तृतीय विश्व के लिए प्रजातंत्र एक उत्तम व्यवस्था क्योंकर हो सकती है। क्या अफ्रीका, दक्षिणी अमरीका और एशिया के देशों में आदर्श प्रजातंत्र का एक खोखला और निराधार दावा तो नहीं है ?

मैं समझता हूं कि इस्लाम विश्व की किसी राजनीतिक व्यवस्था का पूर्णतया खण्डन नहीं करता और इस बात को जनता की अच्छी राय पर छोड़ता है कि वह कौन सी राजनीतिक व्यवस्था पसन्द करते हैं। वास्तव में इस्लाम शासन-पद्धति और उसकी बाह्य रूप-रेखा पर बल नहीं देता अपितु वह इस बात पर बल देता है कि शासन को किस प्रकार अपने दायित्व निभाने चाहिएं। शासन की विभिन्न पद्धतियां उदाहरणतया बादशाहत, फ्यूडल सिस्टम इत्यादि सब की इस्लाम में गुंजाइश मौजूद है बशर्ते कि वह शासन व्यवस्था प्रजा से संबंधित अपने दायित्वों को इस्लाम द्वारा दी गई कल्पना के अनुसार निभाए।

बादशाहत

क़ुर्आन करीम ने बादशाहत की बार-बार चर्चा की है और कहीं भी बतौर एक व्यवस्था के उसकी निन्दा नहीं की। एक इस्राईली नबी की चर्चा करते हुए क़ुर्आन करीम फ़रमाता है कि उन्होंने तालूत बादशाह के अधीन बनी इस्राईल को स्मरण कराते हुए कहा -

وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ اِنَّ اللّٰهَ قَدْ بَعَثَ لَكُمْ طَالُوْتَ مَلِكًا ؕ قَالُوْٓا اَنّٰى يَكُوْنُ لَهُ الْمُلْكُ عَلَيْنَا وَنَحْنُ اَحَقُّ بِالْمُلْكِ مِنْهُ وَلَمْ يُؤْتَ سَعَةً مِّنَ الْمَالِ ؕ قَالَ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰىهُ عَلَيْكُمْ وَزَادَهٗ بَسْطَةً فِى الْعِلْمِ وَالْجِسْمِ ؕ وَاللّٰهُ يُؤْتِىْ مُلْكَهٗ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ○

(सूरह अल बक़रह - 248)

अनुवाद - *और उन के नबी ने उन से कहा कि परमेश्वर ने निश्चय ही तुम्हारे लिए तालूत को बादशाह नियुक्त किया है। उन्होंने कहा कि उसे हम पर शासन का अधिकार कैसे हुआ जबकि हम उसकी अपेक्षा शासन के अधिक अधिकारी हैं उसे तो आर्थिक सामर्थ्य (भी) नहीं दी गई। उस (नबी) ने कहा – निश्चय ही परमेश्वर ने उसे तुम पर श्रेष्ठता दी है और उसे ज्ञान और शारीरिक दृष्टि से (तुम से अधिक) विशालता प्रदान की है और परमेश्वर जिसे चाहता है अपना देश-प्रदान करता है और परमेश्वर सामर्थ्य प्रदान करने वाला (और) स्थायी ज्ञान रखने वाला है।*

क़ुर्आन करीम ने शासन के विशालतम अर्थों में प्रजा के शासन का वर्णन किया है

وَاِذْ قَالَ مُوْسٰی لِقَوْمِہٖ یٰقَوْمِ اذْکُرُوْا نِعْمَۃَ اللّٰہِ عَلَیْکُمْ اِذْ جَعَلَ فِیْکُمْ اَنْۢبِیَآءَ وَجَعَلَکُمْ مُّلُوْکًا ۖۗ وَّاٰتٰکُمْ مَّا لَمْ یُؤْتِ اَحَدًا مِّنَ الْعٰلَمِیْنَ ○

(सूरह अलमाइदह - 21)

अनुवाद - *और (याद करो) वह समय जब मूसा[अ.] ने अपनी जाति से कहा - हे मेरी जाति ! अपने ऊपर परमेश्वर की ने'मत को याद करो जब उस ने तुम्हारे बीच नबी बनाए और तुम्हें बादशाह बनाया और उसने तुम्हें वह कुछ दिया जो लोकों (संसारों) से किसी अन्य को न दिया।*

इसी प्रकार विजयों के द्वारा नए शासनों की स्थापना या उनके विकास को सामान्यतया अच्छा नहीं समझा गया। इस बात का वर्णन सबा की महाराज्ञी से सम्बद्ध क़ुर्आनी आयतों में मिलता है। सबा की महाराज्ञी ने अपने सलाहकारों को नसीहत करते हुए जो बात की उसका क़ुर्आन करीम ने इस प्रकार वर्णन किया है -

قَالَتْ اِنَّ الْمُلُوْکَ اِذَا دَخَلُوْا قَرْیَۃً اَفْسَدُوْھَا وَجَعَلُوْٓا اَعِزَّۃَ اَھْلِھَآ اَذِلَّۃً ۚ وَکَذٰلِکَ یَفْعَلُوْنَ ○

(सूरह अन्नम्ल - 35)

अनुवाद - *उसने कहा - निश्चय ही जब बादशाह किसी बस्ती में प्रवेश करते हैं तो उसमें उपद्रव फैला देते हैं और उस (बस्ती) के निवासियों में से आदरणीय लोगों को अपमानित कर देते हैं और वे इसी प्रकार किया करते हैं।*

वास्तविकता यह है कि बादशाह अच्छे भी हो सकते हैं और बुरे भी। बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार प्रजातंत्रीय पद्धति पर निर्वाचित मंत्री या अध्यक्ष अच्छे या बुरे हो सकते हैं परन्तु क़ुर्आन करीम ने बादशाहों की एक ऐसे प्रकार की भी चर्चा की है जो परमेश्वर द्वारा

नियुक्त थे। उदाहरणतया हज़रत सुलैमान[अ.] की गणना ऐसे ही बादशाहों में होती है। यहूदी और ईसाई तो हज़रत सुलैमान[अ.] को एक बादशाह ही समझते हैं परन्तु क़ुर्आन करीम की दृष्टि में वह केवल बादशाह ही नहीं परमेश्वर के चुने हुए एक नबी भी थे। इस से यह भी ज्ञात होता है कि परमेश्वर कभी एक ही व्यक्ति को एक ही समय में नुबुव्वत और बादशाहत के पद पर आसीन कर देता है। ऐसे लोग परमेश्वर की ओर से सीधे तौर पर नियुक्त किए हुए होते हैं। नुबुव्वत के द्वारा प्राप्त होने वाले शासन के एक अन्य प्रकार का वर्णन भी क़ुर्आन करीम में हमें मिलता है। निम्नलिखित आयत इसकी व्याख्या करती है :-

يَآيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اَطِيۡعُوا اللّٰهَ وَاَطِيۡعُوا الرَّسُوۡلَ وَاُولِى الۡاَمۡرِ مِنۡكُمۡ ۚ فَاِنۡ تَنَازَعۡتُمۡ فِىۡ شَىۡءٍ فَرُدُّوۡهُ اِلَى اللّٰهِ وَالرَّسُوۡلِ اِنۡ كُنۡتُمۡ تُؤۡمِنُوۡنَ بِاللّٰهِ وَالۡيَوۡمِ الۡاٰخِرِ ؕ ذٰلِكَ خَيۡرٌ وَّاَحۡسَنُ تَاۡوِيۡلًا ۝

(सूरह अन्निसा - 60)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो ! परमेश्वर की आज्ञा का पालन करो एवं रसूल की आज्ञा का (भी) पालन करो तथा अपने शासकों का भी और यदि तुम किसी मामले में (शासकगण से) मतभेद करो तो ऐसे मामले परमेश्वर और रसूल की ओर लौटा दिया करो। यदि (वास्तव में) तुम परमेश्वर पर, अन्तिम दिवस पर ईमान लाने वाले हो। यह बहुत उत्तम (उपाय) है और परिणाम की दृष्टि से बहुत अच्छा है।*

इस आयत में उच्च शासन के कुछ अन्य प्रकारों का वर्णन है। इस आयत में बल इस बात पर दिया गया है कि आवश्यक नहीं कि प्रजातंत्रीय पद्धति पर किया गया निर्वाचन उचित भी हो। बहुत संभव है कि प्रजा का बहुमत किसी नेता की महान नेतृत्व संबंधी योग्यताओं

को पहचानने से असमर्थ रहे और यह भी संभव है कि यदि एक ऐसे महान नेता को उन पर बतौर शासक नियुक्त कर दिया जाए तो प्रजा उसके विरुद्ध सर से पैर तक स्वयं में एक प्रतिवाद (Protest) का रूप धारण कर ले। किसी भी राजनीतिक मापदण्ड से उसे नापा जाए तो ऐसे शासकों की नियुक्ति निरंकुशतापूर्ण समझी जाएगी। अब यह निर्णय जनता की इच्छा के विरुद्ध हो तो, उनके वास्तविक हित के विरुद्ध कदापि नहीं होगा।

प्रजातंत्र-प्रणाली के निर्वाचन में मूल रूप से यह दोष है कि लोग अपनी ऊपरी और सामयिक प्रभाव लेने के आधार पर भावनाओं में आकर जल्दबाज़ी में निर्णय करते हैं। वे इस बात के योग्य नहीं होते कि अपने लिए उन उत्तम लोगों का निर्वाचन कर सकें जो नेतृत्व के उच्च गुणों से सम्पन्न हों और उनके वास्तविक हित की रक्षा कर सकें।

परमेश्वर द्वारा स्थापित सिलसिलों का इतिहास देखा जाए तो ज्ञात होता है कि परमेश्वरीय समुदायों पर ऐसे जटिल समय भी आते रहे हैं जब उनका राजनीतिक स्थायित्व प्रत्यक्षत: खतरे में था तब परमेश्वर ने बादशाह, शासक या लीडर के निर्वाचन का कार्य स्वयं अपने हाथ में ले लिया, परन्तु इससे यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि समस्त बादशाह या लीडर परमेश्वर द्वारा निर्वाचित होते हैं अथवा किसी प्रकार की पवित्रता लिए होते हैं। यह धारणा मध्य युगों में ईसाइयों द्वारा स्थापित व्यवस्था में सार्वजनिक रूप धारण कर चुकी थी, परन्तु क़ुर्आन करीम कदापि इस का समर्थन नहीं करता। उदाहरणतया रिचर्ड बादशाह यह विलाप करता हुआ दिखाई देता है कि :-

Not all the waters of rough rude seas can wash the balm of an annointed king. (Shakespeare)

अर्थात सारे समुद्रों का खारा पानी भी उस मरहम को नहीं धो सकता जो पवित्र बादशाह के हाथ का लगाया हुआ है। (शैक्सपीयर)

प्रजातंत्र क्या है ?

प्रजातंत्र की विचारधारा यद्यपि यूनानी है परन्तु 'अब्राहम लिंकन' ने प्रजातंत्र की जो संक्षिप्त निम्नलिखित परिभाषा की है वही उसका आधार है - Government of the people, by the people, for the people. अर्थात "प्रजातंत्र नाम है उस सरकार का जो जनता की हो, जनता के द्वारा हो तथा जनता के लिए हो।"

है तो यह एक घिसा-पिटा कथन, परन्तु है दिलचस्प। जो शायद ही कभी संसार में किसी सरकार पर चरितार्थ हुआ हो। इस परिभाषा का अन्तिम भाग अर्थात "जनता के लिए सरकार" एक बिल्कुल अस्पष्ट सी बात है और इसमें कई प्रकार के खतरे छुपे हुए हैं। क्या किसी सरकार के संबंध में हम पूर्ण विश्वास के साथ कह सकते हैं कि यह जनता के लिए है ? अधिकार बहुमत वाले दल के पास हो तो जनता से अभिप्राय केवल बहुमत है न कि अल्पमत। प्रजातंत्रीय सरकार में महत्त्वपूर्ण निर्णय केवल बहुमत के बल पर ही लिए जाते हैं परन्तु यदि समस्त वास्तविकताओं और आंकड़ों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए और उनका विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होगा कि वास्तव में यह प्रजातंत्र प्रणाली पर निर्वाचित एक अल्पमत का निर्णय था जो बहुमत पर लाद दिया गया। एक संभावित रूप यह भी हो सकता है कि शासक दल कुछ चुनावी क्षेत्रों में दूसरे दलों की अपेक्षा साधारण बहुमत प्राप्त करके शासन में आ जाए जबकि वास्तव में उसे सही बहुमत प्राप्त न हो। इसी प्रकार यदि चुनावों में डाले गए वोटों का अनुपात कम रहे तो भी यह बात संदिग्ध हो जाती है कि शासक दल को वास्तव में बहुमत का समर्थन प्राप्त है। फिर एक राजनीतिक दल यदि सामूहिक तौर पर शेष दलों से अधिक वोट प्राप्त कर भी लेता है तब भी उसके शासन के मध्य कई ऐसी घटनाएं प्रकट हो सकती

हैं जिनसे परिस्थिति बिल्कुल परिवर्तित हो जाए। उदाहरणतया जनमत पूर्णतया परिवर्तित हो सकता है जिसके परिणामस्वरूप शासक दल बहुमत का वास्तविक प्रतिनिधि ही नहीं रहता। जनता में धीरे-धीरे होने वाला मानसिक परिवर्तन अन्ततः सरकार परिवर्तन के समय स्पष्ट दिखाई देने लगता है। यदि जनता में शासन की सर्वप्रियता कायम भी रहे तब भी यह कोई अनुमान के विपरीत बात नहीं है कि महत्त्वपूर्ण निर्णय करते हुए शासक दल के साथ अपनी वफादारी निभाने के लिए उस निर्णय के पक्ष में अपना वोट दिया हो। जब यदि विपक्षी दलों के सामने शासक दल के अपने सदस्यों में मतभेद पाया जाता है तो प्रायः ऐसा होगा कि बहुमत दल का निर्णय वास्तव में एक अल्पमत का निर्णय होगा जिसे जनता पर ठूंसा जाएगा।

यह बात भी विचारणीय है कि जन-हित की कल्पना तथा अच्छे और बुरे की कल्पना समय के साथ-साथ परिवर्तित भी होती रहती है। इसलिए यदि निर्णय स्थायी सिद्धान्तों के आधार पर न किए जाएं अपितु एक व्यक्ति की उत्तम सलाह अथवा एक दल की पसन्द या नापसन्द के अनुसार जन-हित के निर्णय हों तो उसका परिणाम यह होगा कि नीति (Policy) सदैव परिवर्तित होती रहेगी। जो कुछ आज अच्छा दिखाई दे रहा है, हो सकता है कि कल बुरा दिखाई देने लगे और जो कुछ कल बुरा है वह परसों अच्छा बन जाए और यह स्थिति एक सामान्य व्यक्ति को झंझट में डाल सकती है। साम्यवाद (Communism) का अर्धशताब्दी से अधिक समय तक जारी रहने वाला लम्बा अनुभव आख़िर इसी उद्घोष पर ही तो आधारित था कि यह सब कुछ जनता के लिए है। आख़िर समस्त समाजवादी शासनों में निरंकुश शासन व्यवस्था ही तो जारी नहीं थी। इसी प्रकार प्रजातंत्रीय प्रणाली वाली सरकार में जहां तक जनता के द्वारा सरकार का प्रश्न है तो इस दृष्टि से भी समाजवादी देशों तथा प्रजातंत्र प्रणाली वाले

देशों में अन्तर या तो बहुत कम है या सिरे से मौजूद ही नहीं है। हम कैसे कह सकते हैं कि चूंकि समाजवादी देशों में निर्वाचित होने वाली सभी सरकारें जनता के द्वारा स्थापित नहीं हुईं। इसलिए निन्दनीय हैं। हां यद्यपि निरंकुश व्यवस्था वाले देशों में बहुत संभव है कि सरकार अपनी पसन्द के प्रत्याशियों को निर्वाचित कराने के लिए जनता को इस रंग में विवश कर दे कि उनके पास कोई अन्य मार्ग अपनाने की गुंजायश ही न रहे। पश्चिमी संसार के कुछ देशों को छोड़कर शेष संसार प्रजातंत्र-प्रणाली वाले देशों में भी ऐसे हथकंडों का प्रयोग कदापि अनुमान के विपरीत नहीं है।

वास्तविकता यह है कि संसार में अधिकांश स्थानों पर प्रजातंत्र को पूर्ण आज़ादी प्राप्त नहीं है। बहुत कम ऐसे चुनाव आयोजित होते हैं जिनके बारे में कहा जा सके कि सही अर्थों में जनता के द्वारा हुए हैं। धांधलियों, हार्स ट्रेडिंग और पुलिस आदि के द्वारा भय और आतंक फैलाने और ऐसे ही अवैध हथकंडों के प्रयोग से प्रजातंत्र की भावना इतनी क्षीण हो चुकी है कि अब प्रजातंत्र का केवल नाम रह गया है।

प्रजातंत्र की इस्लामी विचारधारा

क़ुर्आन करीम के अनुसार लोग अपने लिए शासन की कोई सी भी व्यवस्था जो उन की स्थिति के अनुकूल हो अपनाने में स्वतंत्र हैं। प्रजातंत्र, बादशाहत, क़बायली व्यवस्था, जागीरदारी व्यवस्था सभी सही और उचित हैं बशर्ते कि ऐसी व्यवस्था एक अच्छा उदाहरण और विरसे के तौर पर जनता को भी स्वीकार्य हो। तथापि मालूम होता है कि क़ुर्आन करीम ने प्रजातंत्र को शेष सब व्यवस्थाओं पर प्रमुखता दी है और मुसलमानों को प्रजातंत्र-व्यवस्था अपनाने का आदेश दिया है। यद्यपि क़ुर्आन करीम में प्रजातंत्र की कल्पना वह नहीं है जो पाश्चात्य प्रजातंत्र प्रणाली में हमें दिखाई देती है। क़ुर्आन करीम ने

कहीं भी प्रजातंत्र की खोखली और ऊपरी परिभाषा प्रस्तुत नहीं की। क़ुर्आन करीम केवल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन करता है और शेष विवरण स्वयं जनता की इच्छा पर छोड़ देता है। अब यदि कोई क़ुर्आन करीम की शिक्षा का पालन करेगा तो वह लाभान्वित होगा और यदि वह उचित मार्ग को छोड़ेगा तो तबाह होगा।

इस्लामी प्रजातंत्र के दो स्तम्भ

1. निर्वाचन की प्रजातंत्रीय प्रक्रिया पूर्ण रूप से ईमानदारी पर आधारित होनी चाहिए। इस्लाम हमें यह शिक्षा देता है कि वोट का अधिकार प्रयोग करते समय सदैव यह अहसास रहे कि परमेश्वर हमें देख रहा है। अतः जहां हम अपने निर्णय के उत्तरदायी हैं। इसलिए वोट उसे दिया जाएगा जो इस राष्ट्रीय दायित्व को पूरा करने का न केवल सब से अधिक पात्र हो अपितु स्वयं भी ईमानदार हो। इस शिक्षा में यह बात भी निहित है कि वोट डालने का अधिकार रखने वाले सब लोग अपने इस अधिकार का अवश्य प्रयोग करें, सिवाए इसके कि वे परिस्थितियों के आगे विवश हों या उस अधिकार के प्रयोग में कोई अन्य बाधा हो।

2. सरकारों को पूर्ण न्याय के सिद्धान्तों पर कार्य करना चाहिए। इस्लामी प्रजातंत्र का दूसरा स्तम्भ यह है कि निर्णय करते हुए पूर्ण न्याय को अपनाया जाए। न्याय से किसी मूल्य पर भी विमुख न हुआ जाए चाहे समस्या राजनीतिक हो, या सामाजिक अथवा आर्थिक। सरकार के निर्माण के बाद दल के अन्दर होने वाली वोटिंग के मध्य सदैव न्याय की मांगों को पूरा किया जाए। दल का कोई हित अथवा राजनीतिक नीति इन फ़ैसलों पर प्रभावी नहीं होनी चाहिए। अपने दूरगामी परिणामों की दृष्टि से इस भावना के साथ किए गए निर्णयों पर ही प्रजातंत्र की वह परिभाषा चरितार्थ होगी जो अब्राहम लिंकन ने प्रस्तुत की थी अर्थात ऐसी सरकार जनता की सरकार होगी जनता के द्वारा होगी और जनता के लिए होगी।

परस्पर परामर्श

क़ुर्आन करीम ने प्रजातंत्र की भावना और उसके केन्द्र बिन्दु को बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णन किया है और मुसलमानों को बताया है कि निःसन्देह प्रजातंत्र शेष समस्त व्यवस्थाओं से उत्तम शासन व्यवस्था है तथापि बादशाहत का कहीं भी अधार्मिक एवं बुरी शासन व्यवस्था ठहराकर पूर्णतया खण्डन नहीं किया गया है। क़ुर्आन करीम एक आदर्श इस्लामी समाज की चर्चा करते हुए फ़रमाता है -

فَمَآ اُوْتِيْتُمْ مِّنْ شَیْءٍ فَمَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَمَا عِنْدَ اللّٰهِ خَيْرٌ وَّاَبْقٰى
لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَلٰى رَبِّهِمْ يَتَوَكَّلُوْنَ ۚ وَالَّذِيْنَ يَجْتَنِبُوْنَ
كَبٰٓئِرَ الْاِثْمِ وَالْفَوَاحِشَ وَ اِذَا مَا غَضِبُوْا هُمْ يَغْفِرُوْنَ ۚ
وَالَّذِيْنَ اسْتَجَابُوْا لِرَبِّهِمْ وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ ۖ وَاَمْرُهُمْ شُوْرٰى بَيْنَهُمْ ۖ
وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۚ وَالَّذِيْنَ اِذَآ اَصَابَهُمُ الْبَغْیُ هُمْ يَنْتَصِرُوْنَ ۝

(सूरह अश्शूरा आयत 37 से 40)

अनुवाद - *अतः जो भी तुम्हें दिया गया है वह लौकिक जीवन का अस्थायी सामान है और जो परमेश्वर के पास है वह अच्छा और उन लोगों के लिए सब से अधिक शेष रहने वाला है जो ईमान लाए और अपने रब्ब पर भरोसा करते हैं और जो बड़े पापों से, निर्लज्जता की बातों से अलग रहते हैं और जब आक्रामक हों तो क्षमा याचना करते हैं और जो अपने रब्ब की आवाज़ पर लब्बैक (हम उपस्थित हैं) कहते हैं और नमाज़ क़ायम करते हैं और उनका मामला पारस्परिक परामर्श द्वारा निर्णय पाता है और हमने जो प्रदान किया उसमें से खर्च करते हैं और वे जिन पर जब अत्याचार होता है तो बदला लेते हैं।*

اَمۡرُهُمۡ شُوۡرٰى بَيۡنَهُمۡ का संबंध मुस्लिम समाज के राजनीतिक जीवन से है। इस का स्पष्ट अर्थ यह है कि सरकारी समस्याओं से सम्बन्धित उन के निर्णय पारस्परिक परामर्श से निर्णय पाते हैं। प्रजातंत्र की उपरोक्त परिभाषा का प्रथम भाग अर्थात सरकार जनता की है इसी आयत की पुष्टि कर रहा है। अतः एक मुस्लिम समाज में जनमत परस्पर परामर्श द्वारा सरकारी फैसला बन जाता है।

प्रजातंत्र की परिभाषा का दूसरा भाग यह है कि सरकार के द्वारा हो। यह बात बड़ी स्पष्टता से निम्नलिखित आयत में वर्णन की गई है।

اِنَّ اللّٰهَ يَاۡمُرُكُمۡ اَنۡ تُؤَدُّوا الۡاَمٰنٰتِ اِلٰٓى اَهۡلِهَا ۙ

(सूरह अन्निसा आयत - 59)

अनुवाद - *निश्चय ही परमेश्वर तुम्हें आदेश देता है कि तुम अमानतें उनके हक़दारों के सुपुर्द किया करो।*

इस का अर्थ यह है कि जब सरकार का निर्वाचन करो तो सदैव अमानत उन लोगों के सुपुर्द करो जो उसके सब से अधिक पात्र हों। यहां निर्वाचन के इस जनता के अधिकार के भाव की चर्चा की गई है।

वास्तव में क़ुर्आन करीम इस बात पर बल देता है कि इस अधिकार का प्रयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए। मुसलमानों को स्मरण कराया गया है कि यह केवल उनकी व्यक्तिगत पसन्द या नापसन्द का प्रश्न नहीं है अपितु इससे बढ़कर चुनाव का अधिकार एक राष्ट्रीय अमानत है और जहां अमानत का प्रश्न हो वहां मनुष्य इतना आज़ाद नहीं होता कि जो चाहे करता फिरे अपितु अनिवार्य है कि वह अमानत का हक़ पूर्ण सच्चाई, ईमानदारी और व्यक्तिगत उद्देश्यों से ऊपर होकर अदा करे और अमानत ऐसे लोगों के सुपुर्द की जाए जो वास्तव में उसके पात्र हों।

बहुत से मुसलमान विद्वानों के निकट इस आयत में यह संकेत किया गया है कि इस्लाम का प्रजातंत्र के संबंध में वही विचारधारा है जो पश्चिम का राजनीतिक दर्शन प्रस्तुत करता है जबकि वास्तविकता यह है कि यह बात केवल आंशिक तौर पर ही सही है। क़ुर्आन करीम ने परस्पर परामर्श की जिस व्यवस्था का वर्णन किया है उसमें वर्तमान युग के पश्चिमी प्रजातंत्रों और उनकी दलगत राजनीति के लिए कोई गुंजाइश शेष नहीं रखी गई।

इसी प्रकार क़ुर्आन करीम इस प्रकार की राजनीतिक बहस और शास्त्रार्थ की अनुमति भी नहीं देता जो वर्तमान युग की प्रजातंत्रीय तौर पर निर्वाचित विधान सभाओं (Assemblies) तथा प्रतिनिधियों की सभा (House of Representatives) की विशेषता है। इस विषय पर चूंकि विस्तृत बहस पहले से गुज़र चुकी है। इसलिए यहां उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

प्रजातंत्र की परिभाषा के दूसरे भाग Government by the people के संदर्भ में इस बात पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है कि परस्पर परामर्श के इस दृष्टिकोण के अनुसार वोट देने वाले को वोट का अधिकार पूर्ण और बिना किसी शर्त के प्राप्त होता है और इस अधिकार को उससे छीना नहीं जा सकता।

आजकल जो प्रजातंत्र प्रचलित है उसके अनुसार एक वोटर यदि चाहे तो अपना वोट निष्प्राण मूर्ति को देदे और चाहे तो उसे चुनाव-पेटी में डालने की बजाए रद्दी की टोकरी में फेंक दे। दोनों बातों में उसकी निन्दा नहीं की जा सकती। न ही उसे प्रजातंत्र के किसी नियम की अवज्ञा पर किसी प्रकार की आलोचना का लक्ष्य बनाया जा सकता है। परन्तु स्मरण रहे कि क़ुर्आन करीम जिस प्रजातंत्र को प्रस्तुत करता है उसके अनुसार एक वोटर अपने उस अधिकार के प्रयोग में

पूर्णतया आज़ाद नहीं है अपितु वोट उसके पास एक अमानत है और एक अमानतदार की हैसियत से उसे चाहिए कि वह यह अमानत पूरे न्याय के साथ वापस लौटाए। अर्थात अपना वोट उस व्यक्ति को दे जो उसका सबसे अधिक पात्र है।

वोट देने वाले को इस बात से भलीभांति अवगत होना चाहिए कि वह एक दिन परमेश्वर के सामने कर्मों का उत्तरदायी होगा। इस इस्लामी कल्पना के अनुसार यदि किसी राजनीतिक दल का सदस्य एक ही दल के मनोनीत प्रत्याशी के बारे में यह समझता है कि वह इस राष्ट्रीय दायित्व का पात्र नहीं होगा तो उसे चाहिए कि ऐसे व्यक्ति के पक्ष में वोट देने की बजाए ऐसे दल (Party) से पृथक हो जाए। दल के साथ वफ़ादारी वोट के स्वतंत्र रूप से प्रयोग में बाधा नहीं बननी चाहिए।

यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक वोटर चुनाव के मध्य अपना वोट अवश्य प्रयोग करे सिवाए इसके कि वह किसी विवशतावश ऐसा करने से असमर्थ हो। यदि वोटर अपना वोट प्रयोग नहीं करता तो इसके अर्थ यह होंगे कि वह अमानत का हक़ अदा करने में असफल रहा है।

बताया जाता है कि अमरीका में लगभग आधे वोटर अपना वोट प्रयोग करने का कष्ट ही नहीं उठाते। इस्लामी प्रजातंत्र की विचारधारा में अपने वोट का प्रयोग न करने की कोई गुंजाइश नहीं है।

इस्लामी सरकार क्या है ?

आज के मुसलमान राजनीतिक विचारकों को यह दावा करने का बड़ा शौक है कि इस्लाम प्रजातंत्र का दूसरा नाम है। उनकी राजनीतिक फ्लासफ़ी के अनुसार अन्तिम अधिकार चूंकि परमेश्वर के पास है इसलिए उच्च शासक होना उसी को प्राप्त है। क़ुर्आन करीम परमेश्वर

की बादशाहत का वर्णन करते हुए फ़रमाता है -

فَتَعٰلَى اللّٰهُ الْمَلِكُ الْحَقُّ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ رَبُّ الْعَرْشِ الْكَرِيْمِ ○

(सूरह अलमोमिनून - 117)

अनुवाद - *अतः बहुत उच्च स्थान रखता है परमेश्वर सच्चा बादशाह, उसके अतिरिक्त कोई उपास्य नहीं, आदरणीय सिंहासन का रब्ब है।*

ये मूल सिद्धान्त कि अन्तिम और वास्तविक अधिकार का मालिक परमेश्वर है और वही सब बादशाहों का बादशाह है क़ुर्आन करीम में कई प्रकार वर्णन हुआ है जिसका उदाहरण उपरोक्त आयत है।

शासन के कार्यों को पूर्ण करने में परमेश्वर की संप्रभुता का प्रकटन दो प्रकार से होता है -

(अ) - शरीयत का कानून - जिसे परमेश्वर की वाणी से लिया गया है। हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] का आचरण और प्रमाणित हदीसें जो प्रथम सदी के मुसलमानों ने हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के उद्धरण से वर्णन कीं। ये तीन माध्यम अपनी श्रेणी की दृष्टि से प्रथम स्तर पर हैं और हर प्रकार के विधि निर्माण के लिए आवश्यक मार्ग-दर्शन उपलब्ध करते हैं। किसी भी प्रजातंत्र-प्रणाली वाली सरकार को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह क़ुर्आन करीम, हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] की सुन्नत और मुबारक हदीसों में वर्णित परमेश्वर के आदेशों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे।

(ब) - कोई ऐसा कानून बनाना वैध न होगा जो उपरोक्त सिद्धान्त से टकराता हो। दुर्भाग्य यह है कि विभिन्न इस्लामी सम्प्रदाय इस बात पर सहमत नहीं हो सके कि शरीअत के स्पष्ट और दो टूक कानून क्या हैं, यद्यपि समस्त विद्वान (उलेमा) इस बात पर सहमत हैं कि

कानून देने का अधिकार केवल परमेश्वर ही को प्राप्त है और यह कि परमेश्वर ने हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] पर क़ुर्आनी वह्यी (ईशवाणी) के द्वारा अपने अन्तिम निर्णय को प्रकट कर दिया है।

अब प्रश्न यह है कि एक मुस्लिम सरकार की व्यवस्था किस प्रकार चलाई जानी चाहिए। इसके बारे में सामान्यतया यह विचार पाया जाता है कि प्रतिदिन के प्रशासनिक मामलों (Administrative Matters) में सरकार जनता की प्रतिनिधि के रूप में परमेश्वर की इच्छा को प्रकट करने का एक माध्यम बन जाती है और चूंकि शासन इन अर्थों में जनता का होता है और वह अपना अधिकार निर्वाचन द्वारा प्रतिनिधियों को हस्तांतरित कर देते हैं इसलिए ऐसी व्यवस्था प्रजातंत्रीय है।

मुल्लाइयत

केवल नाम के मुल्ला सामान्य मुसलमानों के नवीन प्रजातंत्रीय रुझानों से केवल इस शर्त पर सहमत हो सकते हैं कि प्रजातंत्रीय निर्णयों को शरीअत के आधार पर स्वीकार करने या अस्वीकार करने का अन्तिम अधिकार उन्हें प्राप्त हो। इस मांग को स्वीकार करने का दूसरे शब्दों में अर्थ यह है कि कानून बनाने का अन्तिम अधिकार परमेश्वर को नहीं अपितु मुल्लाओं और उनके साथियों के हाथ में दे दिया जाए। ऐसा शक्तिशाली अधिकार जब मौलवियों को मिल जाएगा जिनमें अभी तक इस मूल बात पर भी सहमति नहीं कि शरीअत क्या है और क्या नहीं। अतः स्पष्ट है कि इसके बड़े भयानक परिणाम निकलेंगे। इस्लामी धर्मशास्त्र संबंधी इतने अधिक मत हैं कि किसी एक विचारधारा के विद्वान भी शरीअत के समस्त आदेशों पर सहमत नहीं हैं। शरीअत के विभिन्न आदेशों में परमेश्वर का मूल उद्देश्य क्या है इस पर भी भिन्न-भिन्न युगों में धर्माचार्यों का दृष्टिकोण परिवर्तित होता रहा है। इस दृष्टि से आज इस्लामी संसार को बड़ी जटिल समस्याओं

का सामना है। यह कहना ग़लत न होगा कि इस्लामी संसार अभी तक अपनी वास्तविक पहचान की खोज में है।

मुसलमान विद्वानों पर यह वास्तविकता दिन-प्रतिदिन प्रकट होती जा रही है यदि मौलवी किसी एक मांग पर सहमत हो सकते हैं तो वह यह है कि किसी प्रकार की नर्मी और ढील के बिना शरीअत को बलात लागू कर दिया जाए। ईरान की क्रान्ति ने इन देशों में भी मुल्लाओं की इस शौक की अग्नि को और भड़का दिया है। जहां सुन्नी मुसलमानों का बहुमत है वे कहते हैं कि यदि शिया लीडर आदरर्णीय ख़ुमैनी क्रान्ति क़ायम कर सकते हैं तो हम क्यों सफल नहीं होंगे, परन्तु मुल्ला यह नहीं जानता कि क्रान्ति क्या रंग लाएगी और उसके क्या परिणाम होंगे। वह तो केवल अपने काल्पनिक स्वर्ग (Fools Paradise) में रह रहा है। दूसरी ओर जनता है जो विचित्र झंझटों में पड़ी हुई है। उन्हें यह समझ नहीं आ रहा कि परमेश्वर और हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के आदेशों को मानें या अपनी राजनीतिक समस्याओं को परमेश्वर के भय से लापरवाह नेताओं के सुपुर्द कर दें। एक सामान्य व्यक्ति के लिए इस प्रश्न का उत्तर खोजना बहुत कठिन है। वह हैरान और परेशान है कि क्या करे और क्या न करे। अधिकांश मुसलमान देशों की जनता इस्लाम से अत्यधिक प्रेम रखती है। उनके प्रेम की अवस्था यह है कि परमेश्वर की प्रसन्नता और हमारे पेशवा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] के सम्मान के लिए प्राण तक बलिदान करने के लिए तत्पर हो जाती है। इसके बावजूद इन परिस्थितियों में सामान्य व्यक्ति नाना प्रकार की मानसिक उलझनों एवं व्याकुलताओं का शिकार है। परमेश्वर और हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] से प्रेम के बावजूद लोगों के अतीत के वे रक्तरंजित युग भी रह-रह कर याद आते हैं जब या तो सरकारें मौलवियों की पकड़ में थीं या मौलवियों को सरकारें अपनी कार्य-सिद्धि का माध्यम बनाकर राजनीतिक लाभ प्राप्त कर रही थीं।

मुसलमान राजनीतिज्ञ भी दुविधा की स्थिति में पड़े हुए थे और भांति-भांति की बोलियां बोल रहे थे। उनमें से कुछ को तो मुल्लाओं का समर्थन और सहायता किए बिना खाना नहीं पचता। उनकी इच्छा वास्तव में यह होती है कि चुनावों में लोग उन्हें मुल्ला की बजाए इस्लाम के योद्धा के तौर पर निर्वाचित करें और उन्हें मुल्ला से अधिक शरीअत का अभिभावक और रक्षक समझें। उनके विचार में इससे यह लाभ होगा कि जीवन अपेक्षाकृत सुविधासम्पन्न व्यतीत होगा क्योंकि समस्त मामले पूर्णतया उनके अपने हाथों में रहेंगे, जबकि स्वर्ग के ठेकेदारों को अवसर मिल गया तो वे किसी प्रकार की कोई नर्मी या रिआयत को वैध नहीं रखेंगे, कुछ दूरदर्शी और होशियार राजनीतिज्ञ भलीभांति समझते हैं कि यह एक ख़तरनाक खेल है परन्तु खेद कि ऐसे राजनीतिज्ञों की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। लगता है कि राजनीति और द्विमुखता एक ओर तथा सत्य और ईमानदारी दूसरी ओर खड़ी हैं और उनका एक-दूसरे से दूर का भी संबंध नहीं। सामान्यतया विद्वान दिन-प्रतिदिन प्रजातंत्र की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं। ये लोग इस्लाम से प्रेम तो रखते हैं परन्तु मुल्ला की सरकार से भयभीत हैं। वे प्रजातंत्र को इस्लाम का तुल्य कदापि नहीं समझते अपितु वास्तव में यह विश्वास रखते हैं कि यह क़ुर्आन ही है जिसने प्रजातंत्र को एक राजनीतिक दर्शन के तौर पर प्रस्तुत किया है। अतः फ़रमाया -

وَالَّذِيْنَ اسْتَجَابُوْا لِرَبِّهِمْ وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ ۠ وَاَمْرُهُمْ شُوْرٰى بَيْنَهُمْ ۠

وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ○

(सूरह अश्शूरा - 39)

अनुवाद - *और जो अपने रब्ब की आवाज़ पर लब्बैक (हम उपस्थित हैं) कहते हैं और उनकी बात परस्पर परामर्श से निर्णय पाती है और उसमें से जो हमने प्रदान किया ख़र्च करते हैं।*

وَشَاوِرْهُمْ فِي الْاَمْرِ ۚ فَاِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ۗ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَوَكِّلِيْنَ ○

(सूरह आले इमरान - 160)

अनुवाद - *और (प्रत्येक) महत्त्वपूर्ण मामले में उनसे परामर्श कर। अतः जब तू (कोई) निर्णय कर ले तो फिर परमेश्वर ही पर भरोसा कर। निश्चय ही परमेश्वर भरोसा करने वालों से प्रेम रखता है।*

विभिन्न वर्गों के मध्य इस संघर्ष का उद्देश्य यह है कि पाकिस्तान जैसे नए अस्तित्व में आने वाले मुसलमान देश नाना प्रकार की जटिलताओं और प्रतिकूलताओं का शिकार हो जाते हैं। वोटर कदापि पसन्द नहीं करते कि असैम्बलियों में मौलवी ही मौलवी दिखाई दें। शरीअत लागू करने का आन्दोलन ज़ोरों पर हो तो भी बड़ी कठिनाई से पांच से दस प्रतिशत मौलवी चुनाव में सफल होते हैं परन्तु मुल्ला का समर्थन प्राप्त करने के शौक़ में शरीअत लागू करने का आश्वासन देकर राजनीतिज्ञ एक संकट में फंस गए हैं। वे भलीभांति समझते हैं कि कानून बनाने वाली असैम्बलियों के द्वारा शरीअत का लागू करना दो विपरीत वस्तुओं को एक स्थान पर इकट्ठा करने के समान है।

यदि यह मान लिया जाए कि कानून बनाने का अधिकार केवल परमेश्वर को प्राप्त है (जिस से एक मुसलमान इन्कार नहीं कर सकता) तो इस का तर्कसंगत परिणाम यह होगा कि कानून की परिभाषा और समझाने का अधिकार केवल मौलवियों और साम्प्रदायिक भावना रखने वाले उलेमाओं को प्राप्त हो जाएगा। इस परिस्थिति में कानून बनाने वाले विभागों की समस्त प्रक्रिया निरर्थक और निरुद्देश्य होकर रह जाएगी। संसद के सदस्यों का कार्य यह तो नहीं कि जहां मुल्ला उंगली रखे आंखें बन्द करके हस्ताक्षर कर दिया करें। विडम्बना यह है कि न तो राजनीतिज्ञों ने, न ही विद्वानों ने कभी गंभीरतापूर्वक यह समझने का प्रयास किया है कि क़ुर्आन करीम वास्तव में किस पद्धति या सरकार की पद्धति को प्रस्तुत करता है या स्वीकार करता है।

क्या धर्म का वफ़ादार सरकार का ग़द्दार हो सकता है ?

परमेश्वर के कथन (अर्थात् धर्म) और उसके कर्म (अर्थात् प्रकृति) में कदापि कोई प्रतिकूलता नहीं हो सकती। यह संभव ही नहीं कि मानव-प्रकृति में तो देश-प्रेम की भावना पाई जाए परन्तु धर्म इसके विपरीत शिक्षा दे। इस्लामी शिक्षानुसार धर्म और देश के साथ वफ़ादारी में कदापि कोई टकराव नहीं हो सकता परन्तु यह समस्या केवल इस्लाम से संबंध नहीं रखती अपितु मानव इतिहास के विभिन्न युगों में कई शासन इस समस्या से दो चार रहे हैं, विशेष तौर पर रोम की सरकार में ईसाइयत की प्रथम तीन शताब्दियों में विशेषकर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि ईसाई अपने धर्म के तो वफ़ादार हैं परन्तु सरकार के ग़द्दार हैं। इसी का परिणाम था कि प्रारंभिक युग के ईसाई अपने ही घर में नितान्त पशुतापूर्ण और अमानवीय अत्याचारों का शिकार बनते रहे। उन पर यह आरोप लगाया जाता था कि वे देश-द्रोही हैं तथा क़ैसरे रोम के वफ़ादार नहीं हैं। चर्च और सरकार के मध्य संघर्ष ने यूरोप के इतिहास-निर्माण में सदैव एक मुख्य भूमिका निभाई है। उदाहरण के तौर पर नेपोलियन बोनापार्ट ने रोमन कैथोलिक चर्च पर आरोप लगाया कि यह लोगों को देश-द्रोही बनाता है। उसने फ्रांसीसियों पर भलीभांति स्पष्ट कर दिया उन्हें सर्वप्रथम फ्रांसीसी जनता और सरकार का वफ़ादार बनना पड़ेगा और किसी वैटीकन पोप को फ्रांस में रहने वाले रोमन कैथोलिक लोगों के मामलों में हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जाएगी और न ही रोमन कैथोलिक लोगों को सरकारी मामलों में हस्तक्षेप की अनुमति होगी।

वर्तमान इतिहास में जमाअत अहमदिया को इन्हीं कारणों के आधार पर पाकिस्तान में कठोर संकटों का सामना करना पड़ा है। पाकिस्तान

पर एक लम्बी अवधि तक शासन करने वाले सैनिक डिक्टेटर जनरल मुहम्मद ज़ियाउलहक़ के समय में तो यहां तक हुआ कि सरकार ने अहमदियों के विरुद्ध स्वयं ही एक श्वेत पत्र (White Paper) प्रकाशित कर दिया जिसमें यह दावा किया गया कि अहमदी न तो इस्लाम के वफ़ादार हैं और न ही पाकिस्तान के। यह वही पुराना उन्माद है जो आज कुछ नए सुरों में समाया हुआ है। वही अग्नि है जो आज कुछ अन्य सीनों में भड़क रही है। कुछ ही समय पूर्व विश्व भर में बदनाम सलमान रुश्दी के मामले में भी यही हुआ। ब्रिटेन और यूरोप में रहने वाले मुसलमानों को इसी संकट का सामना करना पड़ा। उन पर आरोप लगाया गया कि वे अपने देश के नहीं अपितु ख़ुमैनी के वफ़ादार हैं। यद्यपि इस अग्नि की ज्वाला बहुत अधिक तो नहीं फैली परन्तु ऐसी अवस्था में जो खतरे निहित हैं उन्हें साधारण नहीं समझना चाहिए। धार्मिक समुदायों के परस्पर संबंधों को इन से बड़ी हानि पहुंच सकती है।

क्या केवल धर्म को ही विधि-निर्माण का अधिकार प्राप्त है ?

धर्म और सरकार की समस्या एक सर्वव्यापी और सार्वभौमिक समस्या है परन्तु इस पर कभी पूर्ण गंभीरता से विचार नहीं किया गया। राजनीतिज्ञ और धार्मिक लीडर दोनों ही कभी यह निर्णय नहीं कर पाए कि यह सीमा-रेखा कौन सी है जो धर्म को सरकार से पृथक करती है। जहां तक ईसाइयों का संबंध है इस समस्या का उसी समय समाधान हो जाना चाहिए था जब हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम ने फरीसियों (प्राचीन यहूदियों का परम्परावादी सम्प्रदाय, Pharisee) को एक ऐतिहासिक उत्तर दिया था जिसका इन्जील में इन शब्दों में उल्लेख है -

"तब उसने उन्हें कहा कि जो क़ैसर का है क़ैसर को दो और जो परमेश्वर का है वह परमेश्वर को दो।"

(मती बाब 22 आयत - 21)

हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम का यह बयान बहुत नीतिपूर्ण है इसमें प्रत्येक आवश्यक बात वर्णन कर दी गई है। धर्म और राजनीति समाज के दो पहियों के समान हैं। पहिए चाहे दो हों या चार या आठ इस से कोई अन्तर नहीं पड़ता जब तक सब कल-पुर्जे अपने-अपने स्थान पर रहते हुए उचित दिशा में गति करते रहें। किसी प्रकार के टकराव और झगड़े का प्रश्न पैदा नहीं होगा।

क़ुर्आन करीम ने पूर्व ग्रन्थों से पूर्ण सहमत होते हुए इस विचारधारा को अतिरिक्त स्पष्टता से वर्णन किया है और न केवल समाज के प्रत्येक घटक की सीमाओं को निर्धारित किया है अपितु उसके कार्य-क्षेत्र को बताया भी है। क़ुर्आन करीम की प्रशासनिक मामलों से संबंधित शिक्षा और उसकी दी हुई धार्मिक शिक्षा में कोई पारस्परिक प्रतिकूलता नहीं है। यद्यपि यह कहना भी उचित न होगा कि धर्म और सरकार के मध्य कोई भी ऐसी साझी ज़मीन नहीं है जहां दोनों का अधिकार हो। निःसन्देह कई ऐसे स्थान हैं जहां एक ही समय में दोनों अपना अधिकार रखते हैं परन्तु यह कार्य परस्पर सहयोग की भावना के साथ है न कि किसी एक के एकाधिकार की स्थापना के लिए। अतः धर्म द्वारा दी गई नैतिक शिक्षा विभिन्न देशों में होने वाली विधि-निर्माण प्रक्रिया का भाग बन जाती है। किसी देश में कम किसी देश में अधिक।

राष्ट्रीय कानूनों में अपराधों के निर्धारित दण्डों के परिदृश्य में धर्म की पसन्द या नापसन्द बहरहाल मौजूद है। इसके बावजूद जहां तक विभिन्न धर्मों से संबंधित लोगों का संबंध है वे अपने देश के कुछ

असाम्प्रदायिक (secular) कानूनों से मतभेदों के बावजूद बहुत कम ही किसी वैधानिक सरकार के साथ टकराव का मार्ग अपनाते हैं और यह मुसलमानों और ईसाइयों पर ही नहीं अन्य धर्मों के अनुयायियों पर भी यही लागू होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुस्मृति में लिखित हिन्दू कानून भारत की राजनीतिक सरकारों द्वारा निर्मित असाम्प्रदायिक कानूनों से बिल्कुल भिन्न हैं, परन्तु वहां के हिन्दू किसी न किसी प्रकार परिस्थितियों से समझौता करके जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यदि भिन्न-भिन्न देशों के लोग धार्मिक कानूनों के समर्थन में उस समय की प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था के मुकाबले पर खड़े हो जाएं तो निश्चय ही रक्त की नदियां बह जाएं, परन्तु मानव जाति का सौभाग्य है कि ऐसा होता नहीं। जहां तक इस्लाम का संबंध है धर्म और सरकार के मध्य कोई प्रतिद्वन्द्विता नहीं है। इसका कारण यह है कि इस्लाम प्रत्येक स्थिति में पूर्ण न्याय पर पाबन्द रहने का अटल और अपरिवर्तनीय सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। प्रत्येक उस सरकार के लिए जो इस्लामी होने का दावा करती है, यह सिद्धान्त एक आधारभूत एवं केन्द्रीय कार्य-प्रणाली की क्षमता रखता है। खेद कि राजनैतिक मामलों से संबंधित इस्लामी दृष्टिकोण के इस महत्त्वपूर्ण बिन्दु को राजनीतिज्ञों ने यदि कुछ समझा भी है तो बहुत कम। सामान्य प्रकार के अपराधों तथा किसी विशेष धार्मिक आदेश से संबंध रखने वाले अपराधों पर कानून लागू होने में जो अन्तर है वे उसे नहीं समझ सकते। स्पष्ट है कि बाद के उल्लिखित अपराधों का दण्ड उन्हीं लोगों पर लागू होगा जो उस धर्म के अनुयायी हैं। वास्तव में अपराधों के इन दोनों प्रकारों की निश्चित और स्पष्ट परिभाषा नहीं की गई है। अपराध और दण्ड के क्षेत्र में कई संयुक्त स्थान ऐसे हैं जहां सामान्य प्रकार के अपराध प्रत्यक्ष में धार्मिक और नैतिक अपराध भी दिखाई देते हैं तथा सामान्यतया मान्य मानव मूल्यों की दृष्टि से भी अपराध बन जाते

हैं। उदाहरणतया चोरी एक ऐसा अपराध है जिसकी कुछ समाजों में अधिक कुछ में कम निन्दा की जाती है। कुछ स्थानों में चोरी का दण्ड बहुत कठोर है परन्तु कुछ स्थानों पर इतनी कठोरता नहीं की जाती। इसी प्रकार हत्या, मदिरापान, उपद्रव जैसे अपराध हैं जिन्हें कुछ धर्मों ने आंशिक तौर पर अथवा पूर्णतया निषिद्ध ठहरा दिया है। कुछ ने इन अपराधों के निश्चित दण्ड भी बनाए हैं।

अब यहां यह प्रश्न पैदा होता है कि सरकार को ऐसे अपराधों से किस प्रकार निपटना होगा, फिर इसी से यह प्रश्न भी उभरता है कि क्या इस्लाम ने इस संबंध में एक मुस्लिम या ग़ैर मुस्लिम सरकार को कोई निश्चित और स्पष्ट कार्य-प्रणाली दी है ? यदि इस्लाम ने सरकार का कोई निश्चित रूप प्रस्तुत किया है तो फिर कई अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी पैदा होंगे। उदाहरणतया यह कि क्या कोई ऐसी सरकार हो सकती है जो स्वयं को किसी विशेष धार्मिक शिक्षा के अधीन समझे और क्या यह उचित होगा कि ऐसी सरकार उस धार्मिक शिक्षा को अपने समस्त नागरिकों पर लागू करे, चाहे वे उस धर्म से संबंध रखते हों या न रखते हों। बात यह है कि धर्म का कर्त्तव्य विधि-निर्माण करने वालों का ध्यान नैतिक समस्याओं की ओर दिलाना है। यह कदापि आवश्यक नहीं है कि सम्पूर्ण विधि-निर्माण-कार्य धर्मों के अधीन हों। जब बात यह है कि बिल्कुल भिन्न आस्थाएं रखने वाले सम्प्रदाय मौजूद हैं और फिर प्रत्येक सम्प्रदाय आगे कई शाखाओं में विभाजित है, प्रत्येक धर्म दूसरे धर्म से विपरीत आस्थाएं रखता है तो इस स्थिति में विधि-निर्माण को धर्म के अधीन करने का परिणाम अस्त-व्यस्तता के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। उदाहरण के तौर पर मदिरापान के दण्ड को ही ले लीजिए। यद्यपि क़ुर्आन करीम ने मदिरा को अवैध ठहरा दिया है परन्तु क़ुर्आन करीम ने इसका कोई निश्चित दण्ड वर्णन नहीं किया। इसके लिए कुछ ऐसी रिवायतों

पर भरोसा किया गया है जो इस्लामी धर्मशास्त्र के कुछ विद्वानों की दृष्टि में उचित ही नहीं। अब इस मतभेद का परिणाम यह होगा कि एक क्षेत्र या देश में मदिरापान का दण्ड कुछ और होगा तथा दूसरे क्षेत्र या देश में कुछ और। अतः जनता को मालूम ही नहीं होगा कि वास्तविक क़ानून कौन सा है ? केवल इस्लाम ही नहीं शेष धर्मों को भी ऐसी ही स्थिति का सामना होगा। तालमूद का दिया हुआ कानून भी बिल्कुल अव्यवहार्य बन कर रह जाएगा और यही दशा ईसाइयत द्वारा दी गई शिक्षा की होगी।

वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीय कानून के अन्दर रहते हुए किसी भी धर्म का अनुयायी अपनी धार्मिक आस्थाओं के अनुसार जीवन व्यतीत कर सकता है। वह सच बोल सकता है, सरकार का कानून उसे सच बोलने से नहीं रोकता, वह अपनी उपासनाएं कर सकता है। इस बात की कुछ आवश्यकता नहीं कि सरकार उसे ऐसा करने की अनुमति देने के लिए कोई विशेष कानून बनाए।

इस प्रश्न को एक अन्य दिलचस्प दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। यदि इस्लाम यह कहता है कि जिन देशों में मुसलमान बहुमत में हों वहां सरकार इस्लामी बहुमत की होनी चाहिए। अतः पूर्ण न्याय की मांग यह है कि अन्य देशों को भी यह अधिकार दिया जाए कि वहां के धार्मिक बहुमत अपने अपने धर्म के आदेशों के अनुसार सरकारी आदेशों का पालन करें। पाकिस्तान को यह मानना पड़ेगा कि उसका निकटवर्ती पड़ोसी देश भारत में हिन्दू कानून राष्ट्रीय कानून के रूप में जारी हो और समस्त नागरिकों पर समान रूप से लागू हो। वास्तविकता यह है कि जिस दिन ऐसा हुआ वह दिन भारत के दस करोड़ मुसलमानों के लिए एक कष्टदायक दिवस

होगा क्योंकि उस दिन वे सभी लोग भारत में सम्मानपूर्वक जीवित रहने के समस्त अधिकारों से वंचित कर दिए जाएंगे। फिर यह कि यदि भारत में मनुस्मृति के अनुसार सरकार बन सकती है तो इस्राईल को यह अधिकार क्यों नहीं दिया जा सकता कि वह भी अपने देश में यहूदी और ग़ैर यहूदी दोनों पर तालमूद के कानून के अनुसार शासन करे। यदि वास्तव में ऐसा हुआ तो न केवल इस्राईल के रहने वाले ग़ैर यहूदी नागरिकों के लिए अपितु स्वयं यहूदियों की एक बहुत बड़ी संख्या के लिए भी जीवन एक अज़ाब बन कर रह जाएगा। भिन्न-भिन्न देशों में धार्मिक सरकारों की स्थापना की कल्पना तभी उचित होगी जब साथ ही यह भी स्वीकार किया जाए कि जिन देशों में मुसलमान बहुमत में हैं वहां इस्लामी शासन में शरीअत को बलात डण्डे के बल पर लागू कर दिया जाए, परन्तु इस प्रकार फिर सम्पूर्ण विश्व को एक विपरीत परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि एक ओर तो पूर्ण न्याय के नाम पर समस्त देशों को यह अधिकार दिया जाएगा कि वे अपनी जनता पर बहुमत के धर्म का कानून थोप दें। दूसरी ओर प्रत्येक देश में धार्मिक अल्पमत वाले वर्गों से उन के प्रत्येक कार्य पर बहुमत के कानून के अनुसार पकड़ की जाएगी जिस पर वे ईमान ही नहीं रखते। अतः क्या यह परिस्थिति पूर्ण न्याय के साथ इस्लामी कल्पना के अपयश का कारण नहीं होगी ? इस्लामी शरीअत को लागू करने की बातें करने वालों ने इस उलझन और दुविधा के बारे में न तो कभी सोचा है और न कभी उसके समाधान का प्रयास किया है। मेरे विचार में इस्लामी शिक्षा का सार यह है कि सरकारी मामलों को चलाने के लिए मूल सिद्धान्त यह है कि सब के साथ एक समान और पूर्ण न्याय करना है। यदि इस सिद्धान्त का पालन किया जाए तो प्रत्येक देश की सरकार जैसे एक

इस्लामी सरकार बन जाएगी। इन तर्कों के अनुसार और विशेषतया لَا اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ (धर्म में कोई ज़बरदस्ती नहीं) जैसे आदेश की उपस्थिति में मैं समझता हूं कि धर्म को सरकारी मामलों एवं विधि निर्माण में कोई उच्च अधिकार देने की आवश्यकता नहीं।

इस्लाम और शासन

क़ुर्आन करीम के गहन अध्ययन के पश्चात मैं पूर्ण असंदिग्धता से कह सकता हूं कि क़ुर्आन करीम जब सरकार के विषय पर बात करता है तो मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम देशों में भेद-भाव नहीं करता और सरकारी मामलों को पूर्ण करने के बारे में जो मापदण्ड स्थापित करता है उसे प्रथम सम्बोधित यद्यपि मुसलमान हैं परन्तु वास्तव में सम्बोधित समस्त मानव जाति है। इस सन्दर्भ में क़ुर्आन करीम ने जो शिक्षा दी है वह हिन्दुओं, सिखों, बौद्धों, ईसाइयों, यहूदियों, मुसलमानों तथा अन्य धर्मों के अनुयायियों अर्थात सब के लिए समान रूप से व्यवहार्य हैं। इस शिक्षा का निचोड़ जिन आयतों में वर्णन किया गया है उनमें से एक आयत का पहले वर्णन किया जा चुका है। इस विषय की कुछ अन्य आयतें निम्नलिखित हैं -

فَلَا وَرَبِّكَ لَا يُؤْمِنُوْنَ حَتّٰى يُحَكِّمُوْكَ فِيْمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوْا فِيْٓ اَنْفُسِهِمْ حَرَجًا مِّمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوْا تَسْلِيْمًا۝

(सूरह अन्निसा - 66)

अनुवाद - *नहीं। तेरे रब्ब की क़सम ! वे कभी ईमान नहीं ला सकते जब तक वे तुझे उन मामलों में न्यायकर्ता न बना लें जिन में उनके मध्य झगड़ा हुआ है। फिर तू जो भी फैसला करे उसके बारे में वे अपने हृदयों में कोई तंगी न पाएं और पूर्ण आज्ञापालन करें।*

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ بِالْقِسْطِ شُهَدَآءَ لِلّٰهِ وَلَوْ عَلٰۤى اَنْفُسِكُمْ اَوِ الْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ ۚ اِنْ يَّكُنْ غَنِيًّا اَوْ فَقِيْرًا فَاللّٰهُ اَوْلٰى بِهِمَا ۫ فَلَا تَتَّبِعُوا الْهَوٰۤى اَنْ تَعْدِلُوْا ۚ وَاِنْ تَلْوٗۤا اَوْ تُعْرِضُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ○

(सूरह अन्निसा - 136)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो! परमेश्वर के लिए साक्षी बनते हुए न्याय को दृढ़तापूर्वक स्थापित करने वाले बन जाओ चाहे स्वयं अपने विरुद्ध साक्ष्य देनी पड़े या माता-पिता और निकट संबंधियों के विरुद्ध। चाहे कोई अमीर हो या ग़रीब दोनों का परमेश्वर ही संरक्षक है। अत: अपनी इच्छाओं का अनुसरण न करो कहीं ऐसा न हो कि न्याय से पलायन करो और यदि तुम ने गोलमोल बात की या मुख फेर लिया तो निश्चय ही जो कुछ तुम करते हो उससे परमेश्वर बहुत अवगत है।*

हदीसों में इस विषय पर बड़ी स्पष्टतापूर्वक प्रकाश डाला गया है। हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] का आदेश है कि प्रत्येक शासक और अधिकारी परमेश्वर के समक्ष सीधे तौर पर इस बात का उत्तरदायी है कि वह अपनी प्रजा और अपने अधीन लोगों के साथ क्या व्यवहार करता है। चूंकि इस विषय पर विस्तारपूर्वक बहस हो चुकी है इसलिए इस पर अतिरिक्त कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

इस बहस का सार यह है कि इस्लाम एक ऐसी पूर्ण एवं निष्पक्ष केन्द्रीय सरकार की कल्पना प्रस्तुत करता है जिसमें सरकार के नागरिक होने की दृष्टि से सब समान हों और सब पर समान रूप से कानून लागू हों तथा धार्मिक मामलों में कोई अधिकार और हस्तक्षेप न हो।

इस में कोई सन्देह नहीं कि इस्लाम मुसलमानों को सतर्क करता है कि वे सांसारिक मामलों में उस समय के प्रचलित कानून को अनुसरण करें। अत: फ़रमाता है -

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اَطِيۡعُوا اللّٰهَ وَاَطِيۡعُوا الرَّسُوۡلَ وَاُولِى الۡاَمۡرِ مِنۡكُمۡ‌ۚ فَاِنۡ تَنَازَعۡتُمۡ فِىۡ شَىۡءٍ فَرُدُّوۡهُ اِلَى اللّٰهِ وَالرَّسُوۡلِ اِنۡ كُنۡتُمۡ تُؤۡمِنُوۡنَ بِاللّٰهِ وَالۡيَوۡمِ الۡاٰخِرِ‌ ؕ ذٰلِكَ خَيۡرٌ وَّاَحۡسَنُ تَاۡوِيۡلًا

(सूरह अन्निसा - 60)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो ! परमेश्वर की आज्ञा का पालन करो और रसूल की आज्ञा का पालन करो और अपने शासकों का भी और यदि तुम किसी विषय में (शासकों) से मतभेद करो तो ऐसे विषय परमेश्वर और रसूल की ओर लौटा दिया करो, यदि (वास्तव में) तुम परमेश्वर और अन्तिम दिवस पर ईमान लाने वाले हो। यह अत्युत्तम (उपाय) है और परिणाम की दृष्टि से बहुत अच्छा है।*

परन्तु जहां तक परमेश्वर और उसके बन्दे के संबंध का प्रश्न है यह एक ऐसा मामला है जो धर्म से विशेष्य है और सरकार को इसमें हस्तक्षेप का कोई अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण तौर पर स्वतंत्र है कि जो आस्था चाहे रखे और उसको व्यक्त करे। प्रत्येक व्यक्ति का यह मूल अधिकार है कि वह अपने धर्म के अनुसार परमेश्वर या किसी मूर्ति की उपासना करे।

अत: इस्लाम की शिक्षा यह है कि धर्म का कोई अधिकार नहीं कि वह इन मामलों में हस्तक्षेप करे जो शुद्ध रूप से सरकार के कार्य-क्षेत्र में आते हैं। न ही सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करे। इस्लाम ने समस्त अधिकारों और

कर्त्तव्यों को इतनी स्पष्टता के साथ निश्चित कर दिया है कि किसी टकराव की स्थिति पैदा नहीं हो सकती। इस विषय से संबंधित बहुत सी आयतों की धार्मिक शान्ति के सन्दर्भ में चर्चा की जा चुकी है। दुर्भाग्य यह है कि प्राय: असाम्प्रदायिक देश अपनी सीमाओं से सीमोल्लंघन कर जाते हैं और यही स्थिति धार्मिक सरकारों अथवा उन सरकारों की है जिन पर धर्म के ठेकेदार अधिकार जमाए बैठे हैं। ऐसे देश जहां धार्मिक उन्मादियों की सरकार हो उन के लिए सहानुभूति की भावनाएं तो कदाचित पैदा न हों, परन्तु उनके यहां असंतुलित विचारधाराओं का पाया जाना किसी सीमा तक समझने योग्य है, परन्तु जब इस प्रकार की अपरिपक्व और बचकाना गतिविधियों का प्रदर्शन उन असाम्प्रदायिक देशों में भी किया जाए जो अपने ही विचार में उदारचरित और विकसित कहलाते हैं तो विश्वास नहीं होता। दुर्भाग्य से मानव जाति की राजनीतिक कार्य-प्रणाली की केवल यही एक बात नहीं जिसे समझना कठिन है। वास्तविकता यह है कि जब तक राजनीति इसी प्रकार राष्ट्रीय हितों की बंदी रहेगी उसकी सोच राष्ट्रीयता की संकुचित सीमा से बाहर नहीं निकलेगी। उस समय तक राजनीति में सिद्धान्त नाम की कोई वस्तु मौजूद नहीं होगी। जब तक राष्ट्रीय पक्षपात राजनैतिक विचारधारा पर छाए रहेंगे और जब तक राष्ट्रीय हितों से टकराव की स्थिति में सच्चाई, ईमानदारी, न्याय एवं इन्साफ़ की अवहेलना होती रहेगी और देश-प्रेम की यही परिभाषा की जाती रहेगी मानव राजनीति इसी प्रकार संदिग्ध, प्रतिकूल एवं विवादित रहेगी।

क़ुर्आन करीम सरकार और जनता के जिन दायित्वों का वर्णन करता है उनमें से कुछ का वर्णन पहले किया जा चुका है। उदाहरणतया भोजन, वस्त्र एवं निवास तथा जीवन की अन्य मूल आवश्यकताओं की उपलब्धता, अन्तर्राष्ट्रीय सहायता के सिद्धान्त, सरकार और प्रजा के हिसाब की कार्य-पद्धति, सरकार और प्रजा किस प्रकार एक-दूसरे

पर प्रभावी होते हैं ? वास्तविक न्याय क्या है ? प्रजा के कष्टों का स्वयं अहसास करना ताकि उन्हें अपने अधिकारों के प्रति आवाज़ उठाने की कोई आवश्यकता न रहे। ये सब बातें पहले वर्णन की जा चुकी हैं। इस्लामी शासन व्यवस्था का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की समस्याओं से अवगत रहे और उन्हें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए हड़तालों की आवश्यकता न पड़े। मालिक और मज़दूर के झगड़े न हों और न ही प्रदर्शन करने और तोड़-फोड़ करने की नौबत आए। क़ुर्आन करीम ने इन सब के अतिरिक्त कुछ अन्य दायित्वों का भी वर्णन किया है जिन का हम अब संक्षिप्त रूप में वर्णन करते हैं -

وَإِمَّا تَخَافَنَّ مِنْ قَوْمٍ خِيَانَةً فَانْبِذْ إِلَيْهِمْ عَلَىٰ سَوَاءٍ ۚ إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْخَائِنِينَ ۝

(सूरह अलअन्फ़ाल - 59)

अनुवाद - *और यदि तू किसी जाति से बेईमानी का भय करे तो उन से वैसा ही कर जैसा उन्होंने किया हो। परमेश्वर बेईमानी करने वालों को कदापि पसन्द नहीं करता।*

أَمَّنْ يُجِيبُ الْمُضْطَرَّ إِذَا دَعَاهُ وَيَكْشِفُ السُّوءَ وَيَجْعَلُكُمْ خُلَفَاءَ الْأَرْضِ ۗ أَإِلَٰهٌ مَعَ اللَّهِ ۚ قَلِيلًا مَا تَذَكَّرُونَ ۝

(सूरह अन्नम्ल - 63)

अनुवाद - *या (फिर) वह कौन है जो व्याकुल व्यक्ति की दुआ स्वीकार करता है जब वह उसे पुकारे। और कष्ट को दूर करता है और तुम्हें पृथ्वी का उत्तराधिकारी बनाता है। क्या परमेश्वर के साथ कोई (अन्य) उपास्य है ? बहुत कम है जो तुम शिक्षा-ग्रहण करते हो।*

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की नींव पूर्ण न्याय पर है

वास्तविकता यह है कि आज प्रत्येक राजनीतिज्ञ छोटा हो अथवा बड़ा इस बारे में इस्लामी शिक्षाओं के पथ-प्रदर्शन का मुहताज है। इस्लाम ही वह धर्म है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की नींव पूर्ण न्याय पर रखी गई है। अतः फ़रमाया -

يَآيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ لِلّٰهِ شُهَدَآءَ بِالْقِسْطِ ۫ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ عَلٰٓى اَلَّا تَعْدِلُوْا ؕ اِعْدِلُوْا ۟ هُوَ اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى ۫ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌۢ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ۝

(सूरह अलमाइदह - 9)

अनुवाद - *हे वे लोगो जो ईमान लाए हो। परमेश्वर के लिए दृढ़तापूर्वक निगरानी करते हुए न्याय के समर्थन में साक्षी बन जाओ और किसी जाति की शत्रुता तुम्हें कदापि इस बात की ओर प्रेरित न करे कि तुम न्याय न करो। न्याय करो, वह संयम के सर्वाधिक निकट है और परमेश्वर से डरो। जो तुम करते हो निःसन्देह परमेश्वर उससे सदैव अवगत रहता है।*

मैं यह दावा तो नहीं करता कि मैंने विश्व के समस्त बड़े-बड़े धर्मों के बारे में सब कुछ अध्ययन कर रखा है परन्तु मैं उन धर्मों की शिक्षाओं से बिल्कुल अनभिज्ञ भी नहीं हूं। मुझे धर्मों की पुस्तकों में कोई एक भी ऐसा आदेश नहीं मिला जो इस क़ुर्आनी आयत के मापदण्ड पर पूरा उतरता हो। अन्य धार्मिक पुस्तकों की स्थिति तो यह है कि उनमें अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का वर्णन मिलना दुर्लभ ही दिखाई देता

है तथापि यदि किसी अन्य धर्म में भी ऐसी ही शिक्षा पाई जाती हो तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि इस्लाम उस शिक्षा से पूर्णतया सहमत है क्योंकि यही वह शिक्षा है जिसमें विश्व-शान्ति की कुन्जी निहित है।

आज समस्त विश्व, विश्व-शान्ति के भविष्य के लिए चिन्तित है। समाजवादी संसार में प्रकट होने वाले युग-निर्माता परिवर्तन और अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों के पारस्परिक संबंधों में सुधार होने से आशा की हल्की सी किरण दिखाई देती है। लोग बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। हमारे चारों ओर जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं उनके संभावित परिणामों के बारे में सम्पूर्ण विश्व के राजनीतिक नेता न केवल नितान्त आशान्वित हैं अपितु आवश्यकता से अधिक प्रसन्न दिखाई दे रहे हैं। विशेष तौर पर पश्चिमी संसार तो कुछ अधिक ही विश्वास से भरा हुआ है और ख़ुशी से फूला नहीं समाता। अमरीकी लोगों की तो बाछें खिली जा रही हैं, उन्हें अपनी प्रसन्नता की भावनाओं को संभालना कठिन हो रहा है। वे साम्यवादी संसार पर अपनी इस महान विजय पर मृदंग बजाते हुए विजयोत्सव मना रहे हैं और कुछ लोग तो उसे अच्छाई की बुराई पर और सत्य की असत्य पर विजय ठहरा रहे हैं। यहां समस्त विश्व की भौगोलिक और राजनीतिक स्थिति का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करने का अवसर तो नहीं तथापि जुलाई 1990 के अन्त में जमाअत अहमदिया यू.के. (U.K.) के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर परमेश्वर ने चाहा तो मैं इस विषय पर विस्तारपूर्वक बात करूंगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) की भूमिका

विश्व में प्रकट होने वाली वर्तमान घटनाएं तथा विश्व-शान्ति के भविष्य पर स्थान-स्थान पर जो बहस एवं विचार-विमर्श जारी है उसका यह पक्ष विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) को विश्व-शान्ति की स्थापना एवं उसकी सुरक्षा के बारे में पहले से कहीं अधिक प्रभावी तौर पर भूमिका निभानी होगी। दो सुपर शक्तियों के मध्य शीत-युद्ध की समाप्ति के पश्चात आशा की जा रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में उनका दृष्टिकोण समान हो जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप सुरक्षा परिषद में वीटो के अधिकार का प्रयोग भी कम हो जाएगा और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का पारस्परिक सहमति द्वारा निर्णय होने लगेगा। इस प्रकार विश्व सुरक्षा परिषद भविष्य में एक नए रूप में हमारे सामने आएगी। यद्यपि चीन के संबंध में आशंका है कि वह कदाचित इस नई परिस्थिति में समाविष्ट न हो सके तथापि उसकी जटिल आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं की उपस्थिति में उसे महाशक्तियों के साथ सहयोग पर तैयार कर लेना इतना असंभव भी नहीं है। चीन के बारे में हमारा अनुमान उचित सिद्ध होता है अथवा नहीं यह एक अलग बहस है, परन्तु यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि आगामी वर्षों में विश्व-सुरक्षा परिषद (World Security Council) और स्वयं संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) विश्व-घटनाओं पर अपनी पकड़ की दृष्टि से एक शक्तिशाली राजनीतिक कार्य-सिद्धि का माध्यम बन कर उभरने वाली है जिसके द्वारा छोटे राष्ट्रों को महा शक्तियों की इच्छा के सामने झुकने पर विवश किया जाएगा। घटना यह है कि बर्लिन की दीवार गिरने से पूर्व तो ऐसी परिस्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती

थी। बहरहाल यह प्रश्न अपने स्थान पर मौजूद है कि क्या संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) अपने वर्तमान न्याय एवं व्यवस्थागत अधिकारों के साथ विश्व-शान्ति के स्वप्न को यथार्थ में परिवर्तित कर सकती है ? मेरे विचार में इस प्रश्न का उत्तर नहीं में है। यदि इस उत्तर में आप को निराशा दिखाई दे तो मैं क्षमा चाहता हूं। बात यह है कि विश्व में शान्ति और युद्ध के निर्णय मात्र महाशक्तियों के पारस्परिक संबंधों पर ही निर्भर नहीं हुआ करते अपितु यह एक बहुत गंभीर और जटिल समस्या है जिसकी जड़ें देशों के राजनीतिक और नैतिक रुझानों से संलग्न हैं।

इसके अतिरिक्त विश्व में पाया जाने वाला आर्थिक अन्तर तथा अमीर और ग़रीब देशों के मध्य बढ़ती हुई दूरी भी भविष्य में प्रकट होने वाली घटनाओं की श्रृंखला में अनिवार्य रूप से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावी भूमिका निभाएगी जिसके कुछ पहलुओं का वर्णन पहले किया जा चुका है। यह बात बहरहाल निश्चित है कि जब तक संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के समस्त सदस्य देशों के मध्य आर्थिक संबंधों में पूर्ण न्याय के सिद्धान्त को अपनाया नहीं जाता और जब तक उसे व्यावहारिक तौर पर लागू नहीं किया जाता शान्ति का कोई आश्वासन नहीं दिया जा सकता। जब तक आर्थिक एवं व्यापारिक अन्याय होते रहेंगे और गरीब देशों की धन-सम्पत्ति को लूटा जाता रहेगा विश्व-शान्ति के आश्वासन की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती तथा जब तक सदस्य देशों के साथ संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) का संबंध और भूमिका स्पष्ट तौर पर सुनिश्चित नहीं हो जाती विश्व-शान्ति का भविष्य अंधकारमय रहेगा।

आवश्यकता ऐसे यत्नों की है जिनके द्वारा सरकारों को अपनी

जनता पर अत्याचार करने से रोका जा सके। संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के पास कुछ ऐसे अधिकार और ऐसी कार्य-पद्धति होनी चाहिए जिस से वह विश्व में किसी भी स्थान पर होने वाले अन्याय के विरुद्ध एक न्यायपूर्ण और प्रभावी प्रयास कर सके। जब तक ऐसा नहीं होता विश्व-शान्ति का स्वप्न पूरा नहीं हो सकता।

यह एक बड़ा गंभीर परन्तु विश्व-शान्ति की स्थापना के लिए बहुत आवश्यक प्रश्न है कि संयुक्त राष्ट्र संघ किसी देश के आन्तरिक मामलों में किस सीमा तक हस्तक्षेप कर सकता है परन्तु यह बात निश्चित है कि यदि संयुक्त राष्ट्र संघ की नीति पूर्ण न्याय पर आधारित न हो और सब देशों के साथ समानता के आधार पर व्यवहार न किया जाए तो ऐसी स्थिति में संयुक्त राष्ट्र संघ को भिन्न-भिन्न देशों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप के अतिरिक्त अधिकार देने से और अधिक समस्याएं जन्म लेंगी और समाधान कम होंगे। अतः यह एक ऐसी समस्या है जिस पर ठंडे हृदय और निष्पक्षता के साथ विस्तार से विचार होना चाहिए।

अब तक जो हुआ वह यह है कि सोवियत संघ और पूर्वी ब्लाक यह मानने पर विवश कर दिए गए हैं कि साइंटिफिक समाजवाद की समस्त विचारधाराएं उनके जीवन को उत्तम बनाने में असफल हो चुकी हैं। इस असफलता को स्वीकार करने से स्थिति अत्यन्त जटिल हो गई है। भविष्य में विश्व घटनाएं कौन सा रूप धारण करेंगी यह देखने के लिए हमें अभी कुछ देर और प्रतीक्षा करनी होगी। अभी हम यह नहीं जानते कि क्या साम्यवाद पूर्णतया पराजित हो जाएगा और क्या समस्त विश्व पूंजीवादी व्यवस्था की ओर पागलों की भांति सरपट दौड़ पड़ेगा या एक मिली-जुली मिश्रित अर्थव्यवस्था के नवीन अनुभव

किए जाएंगे। हमें अभी यह ज्ञात नहीं कि क्या निरंकुश सरकारों का कठोर केन्द्रीय नियंत्रण समाप्त हो जाएगा या ऐसी सरकारें छिन्न-भिन्न हो जाएंगी, जिसके परिणामस्वरूप अराजकता और गृह-युद्ध की सी स्थिति पैदा हो जाएगी। यह भी हो सकता है कि निरंकुश सरकारों का नियंत्रण शनैः शनैः व्यक्ति और राजनीति के मध्य '**कुछ लो कुछ दो**' के आधार पर एक नवीन गठबंधन-प्रणाली में परिवर्तित हो जाए और धीरे-धीरे नागरिक स्वतंत्रताएं वापस मिल जाएं तथा मूल मानवाधिकारों को बहाल कर दिया जाए। प्रेसीडेन्ट गुर्वाचीफ़ की विचारधाराओं पर परस्ट्रॉइका (Perestroika) (अर्थात रूस का राजनीतिक एवं आर्थिक नवनिर्माण) और ग्लासनोस्ट (Glasnost) (अर्थात सरकारी मामलों में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एवं खुलापन) तथा कट्टरवादी साम्यवादियों के मध्य जारी संघर्ष का परिणाम क्या होगा ? यह देखने के लिए अभी कुछ और प्रतीक्षा करनी होगी।

जहां तक मुझे ज्ञान है रूस के वर्गहीन समाज में अधिकांश सुविधाएं साम्यवादी दल के पदाधिकारियों, कर्मचारी वर्ग और सशस्त्र सेनाओं ने आपस में बांटी हुई हैं। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अब जिस क्रान्ति के लक्षण प्रकट होना आरंभ हो गए हैं और जिस संवेदनशील कठिन कार्य का सामना है उसमें इन सब लोगों की क्या भूमिका होगी। रूस में प्रकट होने वाले परिवर्तनों के विश्व-शान्ति पर संभावित प्रभावों का अनुमान लगाने के लिए प्रथम ऐसे समस्त प्रश्नों का उत्तर देना आवश्यक है। दो महाशक्तियों के मध्य संघर्ष की कमी से शान्ति की आशाएं संलग्न नहीं की जा सकतीं। इससे तो तृतीय विश्व के देश कई प्रकार के भयानक खतरों की चपेट में आ गए हैं।

वास्तविकता यह है कि इन शक्तियों के मध्य पाये जाने वाले

अविश्वास के कारण कमज़ोर देशों को एक प्रकार की सुरक्षा प्राप्त थी। इन परिस्थितियों में निर्बल देश कम से कम अपनी वफ़ादारियां तो परिवर्तित कर सकते थे। उनके वश में इतना तो था कि वे चाहें तो पूरब की ओर मुख कर लें और चाहें तो पश्चिम का मार्ग धारण कर लें। इन परिस्थितियों में वे कुछ न कुछ होशियारी और चतुराई से भी काम ले सकते थे और कुछ सौदेबाज़ी भी कर सकते थे परन्तु महाशक्तियों के मध्य संघर्ष की समाप्ति से अब स्थिति बिल्कुल परिवर्तित हो गई है। वास्तविकता यह है कि इन निर्बल देशों के पास स्वतंत्र देशों की अपेक्षा में सम्मानपूर्ण जीवित रहने की कोई आशा शेष नहीं रही। नि:सन्देह इस गन्तव्य पर मस्तिष्क संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर चला जाता है। अब ले देकर प्रत्यक्षत: संयुक्त राष्ट्र संघ ही विश्व-शान्ति का एकमात्र संरक्षक है और विश्व में किसी नवीन व्यवस्था (New World Order) की स्थापना के लिए आशा की एकमात्र किरण है। काश यह आशा पूर्ण हो जाए। परन्तु वास्तविकताओं को निकट से तथा समीक्षात्मक दृष्टि से देखा जाए तो एक अंधकारयुक्त निराशाजनक एवं भयावह चित्र उभरता है। क्या यह सत्य नहीं कि अब विश्व में शक्ति का जो नया संतुलन पैदा हुआ है उसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था को चलाने वाली महान विश्व-शक्ति क्रियात्मक तौर पर एक ही होगी ? इन परिस्थितियों में छोटे और निर्बल देशों का भाग्य उस जानवर के समान ही हो सकता है जिसे चारों ओर से शिकारियों ने घेर लिया हो और उसके लिए भागने का कोई मार्ग शेष न रह गया हो।

वर्तमान परिस्थिति में संयुक्त राष्ट्र संघ के बारे में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यह वह शक्तिशाली संगठन है जो न्याय के लिए नहीं अपितु उस जाति के राजनैतिक उद्देश्यों के लिए काम करता है जिसका प्रभाव क्षेत्र सर्वाधिक विशाल हो। मुझे स्मरण नहीं कि संयुक्त राष्ट्र

संघ के वर्तमान निर्णयों में सत्य और असत्य की कल्पना ने कभी कोई सार्थक भूमिका निभाई हो और न ही उसकी वर्तमान व्यवस्था को देखते हुए भविष्य के बारे में कोई आशा की जा सकती है। वर्तमान युग में राजनीति एवं कूटनीति इस प्रकार परस्पर अनिवार्य हो चुकी हैं कि न्याय और इन्साफ़ की स्थापना और उसके स्थायित्व की कोई संभावना ही शेष नहीं रही। इस कटु सत्य का कोई मनुष्य जिसके हृदय में सत्य का सम्मान शेष है इन्कार नहीं कर सकता कि राजनीति जैसा महान सम्माननीय विभाग अब मात्र अत्यधिक जटिल, जत्थाबंदी, गुप्त संबंध तथा शासन प्राप्ति के लिए किए जाने वाले जोड़-तोड़ का नाम रह गया है। विडम्बना यह है कि यह सब कुछ विश्व-शान्ति के नाम पर हो रहा है।

क़ुर्आन करीम के अनुसार विश्व को आज एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जिसका कार्य केवल न्याय और इन्साफ़ की स्थापना करना हो क्योंकि न्याय और इन्साफ़ को स्थापित किए बिना शान्ति की कल्पना तक नहीं की जा सकती। अपने ही विचार में शान्ति और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर युद्ध तो आरंभ किया जा सकता है परन्तु उसका परिणाम विनाश और बरबादी के अतिरिक्त कुछ और नहीं निकल सकता। खेद यह है कि आज सम्पूर्ण विश्व के महान राजनीतिज्ञों में से मात्र गिनती के कुछ नाम होंगे जो विनाश और शान्ति के अन्तर को समझते हैं। विनाश परिणाम है शक्तिशाली के हाथों अन्याय, अत्याचार, बलात एवं अनीति का जबकि अमन और शान्ति, न्याय एवं इन्साफ़ के फलस्वरूप पैदा होती है। क़ुर्आन करीम में कई बार शान्ति का वर्णन हुआ है तथा प्रत्येक बार यह वर्णन न्याय और इन्साफ के प्रसंग में किया गया है। सामान्यतया शान्ति को न्याय और इन्साफ़

की स्थापना के साथ बतौर शर्त निर्धारित किया गया है।

दो मुसलमान व्यक्तियों या जातियों के मध्य मतभेद यदि युद्ध और लड़ाई का रूप धारण कर लें तो क़ुर्आन करीम ने निम्नलिखित समाधान प्रस्तुत किया है -

وَاِنْ طَآئِفَتٰنِ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ اقْتَتَلُوْا فَاَصْلِحُوْا بَيْنَهُمَا ۚ فَاِنْۢ بَغَتْ اِحْدٰىهُمَا عَلَى الْاُخْرٰى فَقَاتِلُوا الَّتِىْ تَبْغِىْ حَتّٰى تَفِىْٓءَ اِلٰٓى اَمْرِ اللّٰهِ ۚ فَاِنْ فَآءَتْ فَاَصْلِحُوْا بَيْنَهُمَا بِالْعَدْلِ وَاَقْسِطُوْا ۭ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِيْنَ ○ اِنَّمَا الْمُؤْمِنُوْنَ اِخْوَةٌ فَاَصْلِحُوْا بَيْنَ اَخَوَيْكُمْ وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ ○

(सूरह अलहुजुरात - 10, 11)

अनुवाद - *और यदि मोमिनों में से दो समुदाय परस्पर लड़ पड़ें तो उनके बीच संधि कराओ। फिर यदि उनमें से एक दूसरे के विरुद्ध उद्दण्डता करे तो जो अत्याचार कर रहा है उससे लड़ो, यहां तक कि वह परमेश्वर के निर्णय की ओर लौट आए। अत: यदि वह लौट आए तो उन दोनों के बीच न्यायपूर्वक संधि करवाओ और न्याय करो। नि:सन्देह परमेश्वर न्याय करने वालों से प्रेम करता है। मोमिन तो भाई-भाई ही होते हैं। अत: अपने दो भाइयों के बीच संधि करवाया करो। और परमेश्वर का तक़्वा (संयम) धारण करो ताकि तुम पर कृपा की जाए।*

इन आयतों में मोमिनों का वर्णन है। ग़ैर मुस्लिमों का वर्णन न करने का स्पष्ट कारण यह है कि उन से आशा नहीं की जा सकती कि वे क़ुर्आन करीम के अनुसरण का जुआ उठाएंगे। इसके अतिरिक्त यह

भी उचित है कि इन आयतों में वर्णित शिक्षा सम्पूर्ण विश्व के लिए एक उत्तम आदर्श के तौर पर काम दे सकती है।

आज विश्व यह आशा लगाए बैठा है कि अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधान के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ तथा विश्व सुरक्षा परिषद पहले से कहीं अधिक कर्मठ, प्रभावी, विशाल तथा सार्थक भूमिका अदा करेगी और सम्पूर्ण विश्व अमन और शान्ति का गढ़ बन जाएगा। ये समस्त आशाएं अपने स्थान पर, परन्तु अतीत में संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य-कुशलता को देखा जाए तो यह स्वप्न पूरा होता दिखाई नहीं देता। आज विश्व एक विचित्र दृश्य प्रस्तुत कर रहा है। अपने प्रतिद्वन्द्वी पर श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के वैध-अवैध हथकंडे प्रयोग किए जाते हैं, षडयंत्र किए जाते हैं, जत्थे बनाए जाते हैं, दबाव डालने वाले दल बनाने के लिए कूटनीति को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया जाता है। राजनीति का यह वह संसार है जहां ईमानदारी, शर्म और लज्जा निरर्थक होकर रह गई हैं और जहां अन्तरात्मा का प्रवेश निषेध है। ऐसी संस्था (अपने मतभेद और प्रतिकूलताओं के बावजूद) जातियों की बहुत बड़ी भीड़ तो कहला सकती है परन्तु उसे संयुक्त राष्ट्र संघ कहना एक भयानक परिहास से कम नहीं। यदि इसे एकता कहते हैं तो मैं ऐसे राष्ट्रों में रहने का खतरा मोल ले लूंगा जो निःसन्देह परस्पर फूट का शिकार हैं, परन्तु कम से कम सत्य, न्याय एवं इन्साफ़ के मामले में तो सहमत हैं।

अपने शत्रुओं और विरोधियों का दमन करने के लिए शक्ति प्राप्त करना और बातें शान्ति की करना। कथन और कर्म में यह अन्तर ही वह महत्त्वपूर्ण समस्या है जिसका प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश को समाधान करना होगा। यह आश्चर्य और दुख की बात है कि संयुक्त

राष्ट्र संघ जैसी प्रसिद्ध संस्था के सदस्य देश न जाने कब तक इन खतरों से आंखें बन्द किए बैठे रहेंगे जो इस पद्धति में निहित हैं जिसके अनुसार आजकल विश्व के राष्ट्रों के मामलों को चलाया जा रहा है। आज विश्व-शान्ति का भविष्य अनिश्चित हो चुका है और इस हल्की सी आशा से समबद्ध है कि कदाचित एक दिन विश्व में न्याय और इन्साफ़ का प्रचलन हो जाए।

अध्याय - 6

व्यक्तिगत शान्ति

- दान देने में प्रतिस्पर्धा
- स्वजनों और निकट संबंधियों से प्रेम
- जन-सेवा
- परमेश्वर की प्रसन्नता-प्राप्ति
- लोगों को दुख-दर्द से सदैव अवगत रहना
- प्रेम और सहानुभूति का विशाल क्षेत्र
- मानव-उत्पत्ति का उद्देश्य
- परमेश्वर को त्याग कर कोई शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَتَطْمَئِنُّ قُلُوْبُهُمْ بِذِكْرِ اللّٰهِ ؕ اَلَا بِذِكْرِ اللّٰهِ تَطْمَئِنُّ الْقُلُوْبُ ○

(सूरह अर्रअद - 29)

अनुवाद - *(अर्थात) वे लोग जो ईमान लाए और उनके हृदय परमेश्वर की स्तुति से संतुष्ट हो जाते हैं। सुनो ! परमेश्वर ही की स्तुति से हृदय सन्तोष ग्रहण करते हैं।*

मेरे भाषण का अन्तिम भाग जो व्यक्तिगत शान्ति से संबंध रखता है किसी भी प्रकार कम महत्त्व नहीं रखता है। समाज शान्तिपूर्ण हो या आपत्तियों से भरा, व्यक्ति उसके निर्माण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अब तक हमने समाज के इन धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप-रेखा का निरीक्षण किया है जिनका निर्माण और प्रशिक्षण देना चाहता है। एक भवन के निर्माण में जिस प्रकार अच्छी ईंटों की आवश्यकता हुआ करती है इसी प्रकार इस्लाम के निकट एक अच्छे समाज के निर्माण में सदस्यों के उच्च चरित्र और गुणों की भी आवश्यकता हुआ करती है। यह एक बहुत व्यापक विषय है जिस पर क़ुर्आन करीम में आद्योपान्त बहस और मार्ग-दर्शन मौजूद है। इस्लाम जो उच्च आचरण और गुण समाज के प्रत्येक सदस्य में पैदा करना चाहता है, उनमें से कुछ एक निम्नलिखित हैं -

दान करने में प्रतिस्पर्धा

इस्लाम ने परमेश्वर की शिक्षानुसार मानव इच्छाओं को सुधारने और संतुलित करने के साथ-साथ उन्हें उभारा है ताकि पूर्ण संतुलन स्थापित किया जा सके। ऐसे संतुलन के अभाव में सामाजिक शान्ति की प्राप्ति असंभव है। इस्लाम ऐसी इच्छाओं को बढ़ावा देता है जिन की पूर्णता किसी व्यक्ति की आर्थिक प्रतिष्ठा पर निर्भर न हो और प्रत्येक स्तर के लोग उन इच्छाओं को बिना व्यय अथवा बहुत साधारण से व्यय द्वारा पूर्ण कर सकें।

दूसरों से विशेष दिखाई देना तथा जनता के जीवन-स्तर से उच्च होना एक स्वाभाविक भावना है तथापि दूसरों से आगे निकलने का यह स्वाभाविक रुझान यदि उचित और वैध सीमाओं से बाहर निकल जाए और स्वच्छंद हो जाए तो एक अस्वस्थ रुझान और उन्माद का रूप धारण कर लेता है। उदाहरणतया ईर्ष्या या अवैध साधनों के प्रयोग से प्रतिस्पर्धा का प्रयास ऐसी बुराइयां हैं जो स्वतंत्र और स्वच्छ प्रतिस्पर्धा की भावना के लिए घातक विष का आदेश रखती हैं। ऐसी बुराइयों की उपस्थिति में प्रतिस्पर्धा की लाभप्रद भावना उल्टा सारे समाज को रोगग्रस्त कर देती है। इसका छोटा सा उदाहरण खेलों में प्रतिस्पर्धा के मध्य नशीली औषधियों का सेवन है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर औद्योगिक और व्यापारिक प्रतिस्पर्धाओं में इसके बहुत ही बुरे और घृणित उदाहरण मिलते हैं, जहां न्याय नाम की वस्तु नहीं मिलती। स्मरण रहे कि तृतीय विश्व के देशों के अवैध संसाधन विकसित देशों द्वारा अपनाए गए अवैध संसाधनों से भिन्न होते हैं। तृतीय विश्व के देशों में त्वरित आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए अवैध संसाधन नि:संकोच और प्रचुरता के साथ प्रयोग किए जाते हैं। उदाहरणतया भ्रष्टाचार, मिलावट, वचन भंग करना, धोखा, छल इत्यादि। यही

कारण है कि जीवन के समस्त क्षेत्रों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा को कार्यान्वित करने की नितान्त आवश्यकता है। स्पष्ट है कि इस शिक्षा के अभाव से बहुत भयानक परिणाम निकलने का खतरा है।

प्रतिस्पर्धा से संबंधित भिन्न-भिन्न मुकाबलों की श्रृंखला में इस्लाम ने विस्तृत निर्देश दिए हैं। यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है कि स्वयं मुसलमान देशों में जहां इस्लामाइज़ेशन और इस्लामी रूढ़िवादिता की इतनी चर्चा रहती है वहां भी उद्योग एवं व्यापार तथा आर्थिक सम्बंधों को इस्लामी पद्धति पर ढालने का कोई गंभीर प्रयास दुर्लभ के तौर ही दिखाई देता है। क़ुर्आन करीम की निम्नलिखित आयत में प्रतिस्पर्धा की स्वाभाविक भावना के बारे में इस्लामी शिक्षा का सार प्रस्तुत किया गया है -

وَلِكُلٍّ وِّجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيْهَا فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرٰتِ ۗ اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يَاْتِ
بِكُمُ اللّٰهُ جَمِيْعًا ۗ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ○

(सूरह अलबक़रह - 149)

अनुवाद - *और प्रत्येक के लिए एक लक्ष्य है जिसकी ओर वह ध्यान देता है। अतः पुण्यकर्म में एक दूसरे से आगे बढ़ जाओ। तुम जहां कहीं भी होगे परमेश्वर तुम्हें एकत्र करके ले आएगा। निःसन्देह परमेश्वर प्रत्येक वस्तु पर जिसे वह चाहे स्थायी सामर्थ्य रखता है।*

यह क़ुर्आन करीम का चमत्कार है कि इस संक्षिप्त सी आयत में दूरदर्शिता के सागर को गागर में भर दिया है। यह आयत हर मैदान और हर प्रकार की प्रतिस्पर्धा के लिए निर्देशक सिद्धान्त उपलब्ध करती है अन्तिम उद्देश्य तो नेकी की प्राप्ति है और वास्तव में यही सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य है। इसलिए नेकी ही को प्रतिस्पर्धाओं का वही उद्देश्य होना चाहिए जिसकी वास्तव में आवश्यकता हो। अतः इस संक्षिप्त आयत के द्वारा हर प्रकार के अवैध संसाधनों तथा हेराफेरी द्वारा प्रतिस्पर्धा

के प्रयास का पूर्णतया निषेध कर दिया गया है।

यदि समय अनुमति देता तो हम विस्तार तथा स्पष्टतापूर्वक यह जानने का प्रयास करते और इस्लामी शिक्षा से उदाहरण प्रस्तुत करते कि समस्त प्रतिस्पर्धाओं को किस प्रकार स्वस्थ, स्वच्छ और शुद्ध रखा जा सकता है। बहुत कम लोग यह समझ रखते हैं कि मन और मस्तिष्क की वास्तविक संतुष्टि वास्तव में नेक होने में है न कि अवैध साधनों से काम लेकर कोई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने में। उचटती दृष्टि से देखने वालों को ऐसे लोग प्रत्यक्षतया बड़े बहादुर और प्रसन्न दिखाई देंगे परन्तु आन्तरिक तौर पर उनकी विजय और सफलता खोखली हुआ करती है।

पाकिस्तान के एक स्वर्गीय अरबपति व्यक्ति के एक मित्र ने मुझे यह आश्चर्यजनक और दुखद वृत्तान्त सुनाया - कि एक बार उसने अपने मित्र के समक्ष उसकी महान सफलताओं की प्रशंसा की तो प्रसन्न होने के स्थान पर उसने जो त्वरित प्रतिक्रिया प्रदर्शित की वह बड़ी ही हैरान करने वाली थी। उसने अपना गला खोला और अपने हाथ को इस प्रकार गति दी जैसे वह अपने नाख़ूनों से जानवर के पंजे की तरह अपना सीना फाड़ना चाहता है। उसने चिल्लाते हुए कहा कि मैं इस सफलता पर ला'नत भेजता हूं। यदि कोई मेरा सीना चीर कर देख सके तो उसे अन्दर केवल एक भड़कती हुई अग्नि की ज्वाला दिखाई देगी।

इस कटु सत्य को कुछ लोग तो स्वीकार कर लेते हैं परन्तु कुछ नहीं करते परन्तु मानव-प्रकृति को कौन पराजित कर सकता है। एक व्यक्ति धन का ढेर तो लगा सकता है और ऐश्वर्य के साधनों तक भी पहुंच जाता है परन्तु यह खेदजनक यथार्थ अपने स्थान पर विद्यमान है कि कदाचित ही कुछेक अमीर लोग ऐसे होंगे जिन्हें वास्तविक आराम और सन्तुष्टि प्राप्त हो। इनकी दशा को क़ुर्आन करीम ने इस प्रकार वर्णन किया है -

وَيْلٌ لِّكُلِّ هُمَزَةٍ لُّمَزَةِۣ ۙ الَّذِىْ جَمَعَ مَالًا وَّعَدَّدَهٗ ۙ يَحْسَبُ اَنَّ مَالَهٗٓ اَخْلَدَهٗ ۚ كَلَّا لَيُنْۢبَذَنَّ فِى الْحُطَمَةِ ۖ وَمَآ اَدْرٰىكَ مَا الْحُطَمَةُ ۗ نَارُ اللّٰهِ الْمُوْقَدَةُ ۙ الَّتِىْ تَطَّلِعُ عَلَى الْاَفْـِٕدَةِ ۗ اِنَّهَا عَلَيْهِمْ مُّؤْصَدَةٌ ۙ فِىْ عَمَدٍ مُّمَدَّدَةٍ ۚ

(सूरह अल हुमज़: आयत 2 से 10)

अनुवाद - *हर चुग़लखोर (और) छिद्रान्वेषी (दूसरों के दोष ढूंढने वाला) का सर्वनाश हो, जिसने धन एकत्र किया और उसकी गणना करता रहा। वह विचार किया करता था कि उसका धन उसे अमरत्व प्रदान करेगा। सावधान ! वह अवश्य हुतम: (नर्क) में गिराया जाएगा। और तुझे क्या मालूम कि हुतम: क्या है ? वह परमेश्वर की भड़काई हुई अग्नि है जो हृदयों के अन्दर तक जा पहुंचेगी और वह (अग्नि) सब तरफ से बन्द कर दी जाएगी ताकि उसकी गर्मी उन्हें और भी अधिक कष्टप्रद महसूस हो और वे लोग (उस समय) लम्बे स्तम्भों के साथ बंधें हुए होंगे।*

जब तक मनुष्य की इस स्वाभाविक भावना की संतुष्टि नहीं होती कि वह नेक बने, नेक कर्म करे और पवित्र जीवन व्यतीत करे उसे सच्ची सन्तुष्टि प्राप्त नहीं हो सकती।

स्वजनों और निकट संबंधियों से प्रेम

एक सुदृढ़ खानदानी व्यवस्था और सामाजिक शान्ति की स्थापना के लिए स्वजनों एवं निकट संबंधियों से प्रेम और भ्रातृत्व, अपने परिवार वालों से प्रेम और उनकी सहायता एवं सद्व्यवहार की आवश्यकता का वर्णन किया जा चुका है। यहां इसका वर्णन इसीलिए किया जा रहा है ताकि व्यक्ति की भूमिका के महत्त्व और आवश्यकता को

उजागर किया जाए। वास्तव में समाज में व्यक्ति की भूमिका का वही स्थान है जो किसी भवन-निर्माण में ईंट का होता है। ईंट को ठीक किए बिना भवन को उत्तम नहीं बनाया जा सकता।

जन-सेवा

इस्लाम ने इस बात पर बल दिया है कि मनुष्य को अपने अन्दर यह योग्यता पैदा करनी चाहिए कि वह दूसरों की सेवा करके प्रसन्नता महसूस करे न कि दूसरों से सेवा लेकर। क़ुर्आन करीम की एक आयत के निम्नलिखित भाग में यही सन्देश दिया गया है। परमेश्वर फ़रमाता है -

كُنْتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَتُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ ط

(सूरह आले इमरान - 111)

अनुवाद - *तुम सर्वश्रेष्ठ उम्मत (जाति) हो जो समस्त मानव जाति के लाभ के लिए उत्पन्न की गई हो तुम अच्छी बातों का आदेश देते हो और बुरी बातों से रोकते हो और परमेश्वर पर ईमान लाते हो।*

इस आयत में यह संकेत किया गया है कि एक मुसलमान को दूसरे पर अकारण श्रेष्ठता नहीं दी गई। किसी पुरुष या स्त्री के मात्र मुसलमान होने से स्वयं यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि वह दूसरों से श्रेष्ठ है كُنْتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ की उपाधि दूसरों की सेवा करके ही प्राप्त की जा सकती है। जिसका तात्पर्य यह है कि आप दूसरों के साथ उपकार का व्यवहार करने वाले हों।

ख़ैर के अर्थ श्रेष्ठ और सर्वश्रेष्ठ दोनों ही हैं। एक बार हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने ख़ैर के अर्थों की व्याख्या करते हुए फ़रमाया -

"ऊपर वाला हाथ नीचे वाले हाथ से श्रेष्ठ है। ऊपर वाला हाथ देने और ख़र्च करने वाला है और निचला हाथ मांगने और लेने वाला है।"

(सही बुख़ारी, किताबुज़्ज़कात, बाब-ला सदक़ता इल्ला अन ज़हरे ग़िना, तथा सही मुस्लिम - किताबुज़्ज़कात, बाब-बयान - अल यदुल उलिया ख़ैरुम्मिनल यदिस्सुफ़्ला)

क़ुर्आन करीम और हदीसों में चरित्र की श्रेष्ठता के इस पक्ष पर बहुत बल दिया गया है। यही कारण था कि आदरणीय सहाबा[रज़ि.] (हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के साथी) ने इस शिक्षा पर कार्यरत होते हुए चरित्र की श्रेष्ठता के नवीन और उच्चतम मापदण्ड क़ायम किए। उन्हें केवल एक ही लगन थी और वह यह कि दूसरों की सेवा करें। दूसरों से सेवा लेने में तो वे एक प्रकार की लज्जा महसूस करते।

हज़रत औफ़ बिन मालिक अशजई[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि एक अवसर पर हम सात-आठ या नौ लोग हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] की सेवा में उपस्थित थे। आप[स.] ने फ़रमाया - क्या तुम परमेश्वर के रसूल के साथ एक प्रतिज्ञा नहीं करोगे ? हज़रत औफ़[रज़ि.] कहते हैं कि हमने कुछ ही समय पूर्व आप[स.] के मुबारक हाथ पर बैअत की थी। अतः हमने कहा - हे परमेश्वर के रसूल ! हम तो पहले ही प्रतिज्ञा कर चुके हैं। इस पर हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने अपना प्रश्न दोहराया और हमने वही उत्तर देते हुए कहा - कि हे परमेश्वर के रसूल ! अब आप हमसे कौन सी प्रतिज्ञा लेना चाहते हैं ? आप[स.] से फ़रमाया - तुम परमेश्वर की उपासना करोगे, उसके साथ किसी को भागीदार नहीं ठहराओगे और यह कि तुम पांच समय की अनिवार्य नमाज़ें अदा करोगे और परमेश्वर की आज्ञा का पालन करोगे और किसी से कुछ नहीं मांगोगे। हज़रत औफ़ बिन मालिक[रज़ि.] वर्णन करते हैं कि इसके पश्चात मैंने देखा कि उन सहाबा में से किसी सवार के हाथ से घोड़े का चाबुक

भी गिर जाता तो वह किसी से यह भी नहीं कहता था कि यह चाबुक उठा कर मुझे दे दो।

(सही मुस्लिम किताबुज़्ज़कात - बाब कराहतुल मसअलते लिन्नास)

जन-सेवा पर जो इतना बल दिया गया है तो यह कोई मात्र नीरस संयमियों जैसी शिक्षा नहीं है अपितु मानव व्यवहारों में कोमलता और सौम्य पैदा करने का एक प्रयास है ताकि इसमें उच्चतम मूल्यों की रुचि उन्नति करे। यदि एक बार इस प्रकार की उच्च रुचि पैदा कर दी जाए तो बड़ी सरलता से यह प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है कि मनुष्य सेवा में ही आनन्द महसूस करने लगे बजाए इसके कि वह दूसरों के उपकारों और दया का प्रतीक्षक बना रहे।

परमेश्वर की सृष्टि की सेवा आधा ईमान है। इस्लाम का दृष्टिकोण भी यही है कि नेकी (भलाई) स्वयं में ही एक पुरस्कार है और यह एक ऐसी बात है जो तर्क और प्रमाणों से श्रेष्ठतर है। इसे केवल महसूस किया जा सकता है।

परमेश्वर की प्रसन्नता-प्राप्ति

इस्लाम मानव-आचरण में मात्र उच्च मूल्य पैदा करने को ही पर्याप्त नहीं समझता अपितु यह समझ भी पैदा करता है कि वास्तविक महत्त्व इस बात को प्राप्त है कि परमेश्वर के निकट किसी व्यक्ति की नेकियों का महत्त्व और मूल्य क्या है। इस बात पर बल देने से उस मानव इच्छा का भी निवारण हो जाता है कि जिसके कारण मनुष्य चाहता है कि लोग उसकी नेकियों की सराहना करें, परन्तु एक वास्तविक मोमिन के लिए तो इतना विश्वास ही पर्याप्त है कि उसके अच्छे-बुरे समस्त कार्य बहुत अधिक ख़बर रखने वाले और बहुत अधिक देखने वाले परमेश्वर की दृष्टि में हैं। अत: क़ुर्आन करीम फ़रमाता है -

يَوْمَئِذٍ تُحَدِّثُ اَخْبَارَهَا ۝ بِاَنَّ رَبَّكَ اَوْحٰى لَهَا ۝ يَوْمَئِذٍ يَّصْدُرُ النَّاسُ اَشْتَاتًا ۙ لِّيُرَوْا اَعْمَالَهُمْ ۝ فَمَنْ يَّعْمَلْ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ خَيْرًا يَّرَهٗ ۝ وَمَنْ يَّعْمَلْ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ شَرًّا يَّرَهٗ ۝

(सूरह अज़्ज़ुलिज़ाल - 5 से 9)

अनुवाद - *उस दिन वह (धरती) अपने समाचार वर्णन करेगी, क्योंकि तेरे रब्ब ने उसे वह्यी (ईशवाणी) की होगी। उस दिन लोग तितर-बितर होकर निकल खड़े होंगे ताकि उन्हें उनके कर्म दिखा दिए जाएं। अतः जो कोई भी लेशमात्र भी भलाई करेगा वह उसे देख लेगा और जो कोई लेशमात्र भी बुराई करेगा वह उसे देख लेगा।*

यह कहना अनुचित न होगा कि यह शिक्षा समाज-सुधार की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम है तथा दिखावा, गर्व तथा अहंकार का एकमात्र प्रभावी उपचार भी यही है।

दान और पुण्य के व्यापक अर्थों में हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने फ़रमाया कि मानव अंगों में से प्रत्येक अंग का प्रतिदिन दान देना अनिवार्य है।

- दो लोगों के मध्य इन्साफ़ करना दान है।
- मार्ग में किसी कष्टदायक वस्तु का हटा देना भी दान है।

(बुख़ारी व मुस्लिम)

उद्दी बिन हातिम रिवायत करते हैं कि हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने फ़रमाया - यदि कोई मुसलमान वृक्ष लगाता है और फिर उसमें से जो कुछ खाया जाता है वह वृक्षारोपण करने वाले की ओर से दान है और यदि उसमें से कुछ चोरी कर लिया जाता है अथवा उसमें से से लिया जाता है तो वह भी दान है।

(सही बुख़ारी, किताबुल मुज़ारिअते - बाब फ़ज़्लुज़्ज़रए वल ग़र्से इज़ा अकला मिन्हो)

इब्ने अबी हातिम रिवायत करते हैं कि हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने फ़रमाया - अग्नि से बचो चाहे आधी खजूर ही दान करके और यदि इसकी सामर्थ्य नहीं रखते तो अच्छी बात कह कर।

(सही बुख़ारी - किताबुल अदब, बाब तय्यबुल कलाम)

हज़रत अबू मूसा अशअरी[रज़ि.] रिवायत करते हैं कि हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने फ़रमाया - यदि एक व्यक्ति के पास कुछ नहीं है तो उसे चाहिए कि अपने हाथों से काम करे और अपनी कमाई में से कुछ दान भी दे। यदि वह काम नहीं कर सकता तो वह किसी मुहताज और असहाय की सहायता करे, यदि वह यह भी नहीं कर सकता तो उसे चाहिए कि दूसरों को नेकी की प्रेरणा दे और यदि वह इसकी शक्ति भी नहीं रखता तो उसे चाहिए कि वह बदी करने से बचता रहे। यह भी दान है।

(सही बुख़ारी किताबुज़्ज़कात)

एक अन्य हदीस में हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] ने फ़रमाया - पत्नी के मुख में कौर डालना परमेश्वर का प्रेम प्राप्त करने का कारण है।

लोगों के दुख-दर्द से सदैव अवगत रहना

इस्लाम दूसरों के दुख और कष्टों की समझ और अहसास पैदा करता है चूंकि यह पहलू इससे पूर्व सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शान्ति के प्रसंग में बहस के अंतर्गत आ चुका है इसलिए यहां इस पर अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

प्रेम और सहानुभूति का व्यापक होना

इस्लाम मानव-प्रेम और प्रेम की इस विशेषता को केवल मानव-जाति तक सीमित नहीं रखता अपितु उसे परमेश्वर की समस्त सृष्टि (मख़लूक़) तक फैला देता है। उस का दावा है कि यह वह अन्तिम

धर्म है जो किसी एक जाति के लिए नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवता के लिए आया है। सामान्यतया यही आशा की जाती है कि हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के मुबारक अस्तित्व को सम्पूर्ण मानव जाति के लिए प्रकाश और दया का उदगम ठहरा दिया जाएगा, परन्तु मनुष्य यह देख कर हैरान रह जाता है कि क़ुर्आन करीम हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स.अ.व.] को 'रहमतुल्लिलआलमीन' ठहरा देता है अर्थात आप[स.] न केवल मानव जाति अपितु समस्त संसारों के लिए दया हैं। (सूरह अलअंबिया - 109)

अरबी में 'आलम' (संसार) के अर्थ एक संसार अथवा समस्त संसार के होते हैं परन्तु यहां 'अलआलमीन' का शब्द प्रयोग हुआ है जो आलम का बहुवचन है। इस दृष्टि से यहां इस शब्द से अभिप्राय यह संसार नहीं अपितु समस्त संसार हैं। संभव है एक सन्देह करने वाला इतने बड़े दावे की सच्चाई को स्वीकार न कर सके, परन्तु यदि एक मनुष्य को नुबुव्वत के स्थान की सार्वभौमिकता जो हज़रत मुहम्मद[स.अ.व.] के मुबारक अस्तित्व में समवेत रूप से पाई जाती है की गहरी चेतना प्राप्त हो जाए तो मनुष्य पर 'रहमतुल्लिलआलमीन' के स्थान और श्रेणी की महत्ता खुल जाती है।

मानव-सृष्टि का उद्देश्य

क़ुर्आनी दृष्टिकोण के अनुसार यदि यह सम्पूर्ण जगत (कायनात) मात्र निष्प्राण और अचेतन सृष्टि पर आधारित होता तो कायनात को सृष्टि करने का कार्य ही (ख़ुदा की शरण चाहते हैं) निरर्थक और व्यर्थ ठहरता। इसका कारण यह है कि यदि एक चेतन सृष्टि न होती तो स्रष्टा को कौन पहचान सकता।

जगत की रचना का उद्देश्य वास्तव में एक ऐसी चेतना को जन्म देना था जिसे शनैः शनैः प्रगति और विस्तार देकर एक उच्च स्थान तक पहुंचाना था ताकि सृष्टि करने का मूल उद्देश्य प्राप्त किया जा सके।

स्पष्ट है कि यह कोई साधारण उद्देश्य नहीं है। इसकी पूर्ण व्याख्या एक पृथक विस्तृत बहस की मुहताज है जिसकी आज के भाषण में गुंजाइश नहीं है। हां सरल शब्दों में संक्षेप रूप से यों कहा जा सकता है कि सृष्टि की रचना का महानतम उद्देश्य एक सर्वश्रेष्ठ प्रज्ञावान अस्तित्व को जन्म देना ही था जो न केवल स्वेच्छा से परमेश्वर के अपूर्व सौन्दर्य के समक्ष जो सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है नतमस्तक हो अपितु मानव जीवन के वास्तविक उद्देश्य के प्रति मार्ग-दर्शन भी करे अथवा कम से कम उन लोगों के लिए इस मार्ग पर चलना संभव बना दे जो वास्तव में परमेश्वर का आज्ञापालन करना चाहते हैं। यदि कुछ समय के लिए मान लिया जाए कि जगत की रचना करने का कोई उद्देश्य नहीं तो उसी क्षण जगत की रचना का औचित्य ही समाप्त हो जाता है। इस वास्तविकता को समझने के लिए एक साधारण सा उदाहरण दिया जा सकता है - एक फलदार वृक्ष लगाने, उसकी सिंचाई, देखभाल और काट-छांट कर उद्देश्य उस वृक्ष का फल ही तो है। यदि फल न हो तो वृक्ष भी न हो। यदि उद्देश्य की प्राप्ति न हो तो वृक्ष लगाने और उसकी देखभाल एवं पोषण के समस्त प्रयास व्यर्थ और निरर्थक होकर रह जाते हैं। इस दृष्टि से वृक्ष का अस्तित्व जिसमें जड़ें, तना, शाखाएं, पत्ते और कोंपलें सब ही सम्मिलित हैं फल ही का आभारी है। इस वास्तविकता के बावजूद कि वृक्ष के ये सब भाग फल से पूर्व अस्तित्व में आए फिर भी यह वृक्ष का मुख्य कारण अर्थात फल ही के कृतज्ञ हैं। यह मुख्य कारण और उद्देश्य ही का वरदान है जिसके कारण सृष्टि (रचना) की प्रक्रिया जारी है। सृष्टि के इस उद्देश्य और पराकाष्ठा अर्थात मानव और शेष जगत के पारस्परिक संबंध के परिप्रेक्ष्य में इस्लामी शिक्षाओं का अध्ययन किया जाए तो यह ज्ञात करके आश्चर्य होता है कि इस्लाम केवल परमेश्वर और मनुष्य के संबंध ही को अपनी परिधि में नहीं लेता अपितु मनुष्य

के अन्य प्राणियों और जड़ पदार्थों से संबंध पर भी व्याप्त है। इस दृष्टि से जगत की प्रत्येक वस्तु पवित्र बन जाती है। इसलिए नहीं कि मनुष्य से श्रेष्ठ है अपितु इसलिए कि जगत के रचयिता ने विशेषत: उसे सीधे तौर पर अथवा किसी माध्यम से मनुष्य के लिए पैदा किया है। इस दृष्टि से जगत में कोई भी वस्तु व्यर्थ, निरर्थक और पृथक नहीं रहती, यहां तक कि पृथ्वी से अत्यधिक दूरियों पर सितारों का अस्तित्व भी सार्थक और सोद्देश्य हो जाता है तथा सृष्टि की योजना में उनका स्थान स्पष्ट हो जाता है।

यही वह रहस्य है जिसे क़ुर्आन करीम ने बार-बार विभिन्न दृष्टिकोणों से वर्णन किया है जिसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं -

وَالشَّمْسِ وَضُحٰهَا ۝ وَالْقَمَرِ اِذَا تَلٰهَا ۝ وَالنَّهَارِ اِذَا جَلّٰهَا ۝ وَالَّيْلِ اِذَا يَغْشٰهَا ۝ وَالسَّمَآءِ وَمَا بَنٰهَا ۝ وَالْاَرْضِ وَمَا طَحٰهَا ۝ وَنَفْسٍ وَّمَا سَوّٰهَا ۝ فَاَلْهَمَهَا فُجُوْرَهَا وَتَقْوٰهَا ۝ قَدْ اَفْلَحَ مَنْ زَكّٰهَا ۝ وَقَدْ خَابَ مَنْ دَسّٰهَا ۝

(सूरह अश्शम्स आयत 2 से 11)

अनुवाद - *मैं सूर्य को साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत करता हूं और उस समय को भी जब वह उदय होने के पश्चात ऊंचा हो जाता है और चन्द्रमा को जब वह सूर्य के पीछे आता है और दिन को भी (साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत करता हूं) जब वह उस (सूर्य) को प्रकट कर देता है और रात्रि को भी (साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत करता हूं) जब वह उस (सूर्य) के प्रकाश को आंखों से ओझल कर देती है और आकाश को और उसके बनाए जाने को भी और पृथ्वी को भी और उसके बिछाए*

जाने को भी (साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत करता हूं) और मानव प्राण को भी और उसके दोषरहित बनाए जाने को भी कि उस (परमेश्वर) ने उस (प्राण) पर उसके दुष्कृत्यों (के मार्गों को भी) तथा उसके संयम (के मार्गों) को भी अच्छी तरह खोल दिया है। अत: जिसने उस (नफ़्स) को पवित्र किया तो निश्चय ही वह अपने उद्देश्य को पा गया और जिसने उसे (मिट्टी में) गाड़ दिया तो वह निष्फल हो गया।

وَسَخَّرَ لَكُمْ مَّا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا مِّنْهُ ؕ اِنَّ فِيْ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوْمٍ يَّتَفَكَّرُوْنَ ○

(सूरह अलजासिय: - 14)

अनुवाद - *और जो भी आसमानों और पृथ्वी में है उसमें से सब उसने तुम्हारे लिए मुफ़्त काम पर लगा दिया है। इसमें सोच-विचार करने वालों के लिए निश्चय ही खुले-खुले निशान हैं।*

اَلَمْ تَرَوْا اَنَّ اللّٰهَ سَخَّرَ لَكُمْ مَّا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ وَاَسْبَغَ عَلَيْكُمْ نِعَمَهٗ ظَاهِرَةً وَّبَاطِنَةً ؕ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّجَادِلُ فِي اللّٰهِ بِغَيْرِ عِلْمٍ وَّلَا هُدًى وَّلَا كِتٰبٍ مُّنِيْرٍ ○

(सूरह लुक़मान - 21)

अनुवाद - *क्या तुमने विचार नहीं किया कि परमेश्वर ने तुम्हारे लिए मुफ़्त काम पर लगा दिया है जो भी आसमानों और पृथ्वी में है और उसने अपनी ने'मतें तुम पर प्रत्यक्ष तौर पर भी पूर्ण कीं और आन्तरिक तौर पर भी। और मनुष्यों में से ऐसे भी हैं जो परमेश्वर के बारे में बिना किसी ज्ञान या निर्देशन अथवा प्रकाशमान किताब के झगड़ते हैं।*

لَقَدۡ خَلَقۡنَا الۡاِنۡسَانَ فِیۡۤ اَحۡسَنِ تَقۡوِیۡمٍ ۝

(सूरह अत्तीन - 5)

अनुवाद - *निश्चय ही हमने मनुष्य को उत्तम से उत्तम उन्नतिशील अवस्था में पैदा किया है।*

क़ुर्आन करीम की अन्य बहुत सी आयतें यहां तक कि कुछ छोटी सूरतें भी सभी इसी विषय के लिए समर्पित हैं। उनसे पता चलता है कि मनुष्य एक लघु संसार है जिस पर समस्त सृष्टियों ने अपने प्रभाव डाले हैं यहां तक कि नितान्त दूरियों पर विद्यमान नक्षत्रों ने भी इस लघु संसार अर्थात मनुष्य पर अपने प्रभाव डाले हैं परन्तु मनुष्य और शेष कायनात के मध्य यह संबंध दास और स्वामी का नहीं अपितु स्वामी और दास का है। स्वामी अपने उन दासों के आगे नतमस्तक नहीं होते अपितु दास उनकी सेवा में कटिबद्ध रहते हैं। अतः मनुष्य इस समस्त जगत (कायनात) का स्वामी है परन्तु दास है केवल उस महान अस्तित्व का जो इस समस्त जगत का स्रष्टा और स्वामी है। अब देखिए कि इस्लाम की यह विचारधारा अन्य कई धर्मों के दर्शनों की विचारधाराओं से कितनी भिन्न है जो केवल मूर्तियों की उपासना ही नहीं सिखाते अपितु प्रकृति (नेचर) की उपासना के अनेक रूप भी उनमें पाए जाते हैं। इन धर्मों की शिक्षाओं के अनुसार तो यों लगता है जैसे सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, वृक्ष, बिजली, तूफान, समुद्र यहां तक कि गाय, सर्प और पक्षी एक पहलू से मनुष्य से उच्चतम स्थान और श्रेणी पर आसीन हैं। मनुष्य को यह शिक्षा दी जाती है कि वह इन वस्तुओं को उपास्य स्वीकार करके उनकी उपासना करे, क्योंकि उनके मतानुसार इस सब को मनुष्य पर एक प्रकार की श्रेष्ठता प्राप्त है। संक्षेप में यह कि मनुष्य को सृष्टियों में सब से निचले स्तर की सृष्टि ठहरा कर उसे प्रत्येक उस वस्तु का आज्ञाकारी और सेवक बना दिया

जाता है जो मात्र उसकी सेवा के लिए पैदा की गई थी।

जगत की व्यवस्था को पहचानने का जो विवेक इस्लाम ने प्रदान किया है उसके अनुसार मनुष्य स्वामी है और शेष समस्त जगत उसका सेवक है। इस दृष्टि से समस्त जगत में मनुष्य ही अपने स्रष्टा के उपकारों का सर्वाधिक पात्र है। अतः उसे सब से अधिक परमेश्वर का कृतज्ञ और आभारी भी होना चाहिए जिसकी सेवा के लिए परमेश्वर ने सम्पूर्ण जगत को मुफ्त सेवा पर लगा दिया है। दूसरे शब्दों में परमेश्वर की दासता में आकर मनुष्य हर दूसरी दासता से मुक्ति पा लेता है। सम्पूर्ण जगत के विवेक और अन्तरात्मा के लक्षण और उसका साकार होना है। जब मनुष्य स्रष्टा के समक्ष नतमस्तक होता है तो जैसे समस्त जगत स्रष्टा के सामने नतमस्तक हो जाता है और जब मनुष्य अपने स्रष्टा की ओर लौटता है तो जैसे सम्पूर्ण जगत अपने स्रष्टा की ओर लौटता है। इस्लाम के निकट इसी उद्देश्य की प्राप्ति तथा उसके अनुसार मानव जीवन को ढालने में वास्तविक और पूर्ण शान्ति निहित है।

इस समस्त दर्शन (फ़्लास्फ़ी) को क़ुर्आन करीम की इस आयत में जिसे मुसलमान अधिकतर दोहराते रहते हैं। बहुत संक्षिप्त रूप में वर्णन कर दिया गया है -

اِنَّا لِلّٰهِ وَاِنَّاۤ اِلَيۡهِ رٰجِعُوۡنَ ○

(सूरह अलबक़रह - 157)

अनुवाद - *हम निश्चय ही परमेश्वर ही के लिए हैं और हम निश्चय ही उसी की ओर लौट कर जाने वाले हैं।*

बहुत कम लोग यह समझते हैं कि यहां लौटने से शारीरिक तौर पर नहीं अपितु आध्यात्मिक तौर पर लौटना अभिप्राय है और यह आयत केवल वास्तविकता का वर्णन नहीं करती मनुष्य को उसके जीवन का

उद्देश्य भी स्मरण कराती है। जैसे Salmon मछली को उस समय तक चैन नहीं आता जब तक कि वह उन समुद्रों की ओर वापस न लौट जाए जहां उसने जन्म लिया था, ठीक इसी प्रकार ही मनुष्य का हृदय कभी संतोष नहीं पा सकता जब तक कि वह आध्यात्मिक तौर पर अपनी उत्पत्ति के उद्गम तक न लौट जाए। निम्नलिखित आयत के यही अर्थ हैं -

اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ تَطْمَئِنُّ قُلُوْبُهُمْ بِذِكْرِ اللّٰهِ ؕ اَلَا بِذِكْرِ اللّٰهِ تَطْمَئِنُّ الْقُلُوْبُ ۝

(सूरह अर्रअद - 29)

अनुवाद - *वे लोग जो ईमान लाए और उनके हृदय परमेश्वर की स्तुति से सन्तुष्ट हो जाते हैं। सुनो ! परमेश्वर ही की स्तुति से हृदय सन्तुष्टि पकड़ते हैं।*

परमेश्वर को त्याग कर कोई शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती

परमेश्वर को त्याग कर कोई शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। यही वह रहस्य है जिससे परिचित हुए बिना मनुष्य को न तो हार्दिक सन्तुष्टि प्राप्त हो सकती है और न ही समाज में शान्ति और अमन का आश्वासन दिया जा सकता है। वास्तविक शान्ति और संतुष्टि तक ले जाने वाला अन्य कोई मार्ग नहीं है। परमेश्वर का प्रेम ही है जिसके परिणामस्वरूप हृदय में उसकी सृष्टि का सच्चा सम्मान पैदा हो सकता है। सृष्टि जितनी उच्च स्तर की होगी उतनी ही वह स्रष्टा के निकट होगी और उसका संबंध अपने स्रष्टा से उतना सुदृढ़ होगा। मनुष्य एक महानतम और उच्चतम उद्देश्य के साथ अन्य मनुष्यों का सम्मान करना आरंभ कर

देता है अर्थात अपने स्रष्टा के सम्मान के कारण उस पर जो कर्त्तव्य लागू होता है उसके कारण वह मानवता का सम्मान करना आरंभ कर देता है। संक्षिप्त तौर पर यह कहा जा सकता है कि यह परमेश्वर का प्रेम ही है जो उसकी सृष्टि के प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। यदि मध्य से परमेश्वर का प्रेम निकाल दिया जाए तो सहसा मानवीय संबंधों का सारा दृश्य ही परिवर्तित हो जाता है। परमेश्वर न होने से जो शून्य पैदा होगा उसे भरने के लिए मनुष्य का अहं तुरन्त सामने आ जाएगा। यह एक अज्ञानता की बात और नितान्त मूर्खतापूर्ण विचारधारा है कि मनुष्य परमेश्वर के बिना रह सकता है।

अन्ततः नास्तिकता का परिणाम केवल यही निकलता है किसी व्यक्ति के कथनानुसार - परमेश्वर मर जाता है अपितु इसके परिणामस्वरूप अचानक हज़ारों झूठे परमेश्वर जीवित हो जाते हैं। हर वह अस्तित्व जो चेतना रखता है पल भर में अपने विचार में परमेश्वर बन जाता है। अहं और अन्तिम श्रेणी की स्वार्थपरायणता बल पकड़ लेती है और उसका शासन हो जाता है। ऐसे लोगों पर आधारित समाज भी हमेशा अहंवादी और स्वार्थी रहता है। निःस्वार्थ होकर दूसरों के लिए लाभप्रद बनने का कोई तर्क ही शेष नहीं रहता। एक कृपालु और दयालु परमेश्वर के रूप में कोई बाहरी हवाला ही शेष नहीं रहता जो समस्त प्रकार की सृष्टियों को परस्पर संयुक्त रखने और एक करने का एकमात्र माध्यम है।

इससे बढ़कर इस्लाम की कोई अन्य विचारधारा नहीं है। परमेश्वर की ओर प्रवृत्त हुए बिना कोई व्यक्ति वास्तविक सन्तोष प्राप्त नहीं कर सकता और वास्तविक सन्तोष के अभाव में समाज अमन और शान्ति का गढ़ नहीं बन सकता। शान्ति की स्थापना के लिए समस्त ऐसे प्रयास जिन के प्रेरक व्यक्तिगत उद्देश्य हों निश्चय ही असफल और निष्परिणाम रहते हैं। यदि परमेश्वर विद्यमान नहीं तो फिर शान्ति भी नहीं और इस वास्तविकता की चेतना ही वास्तव में बुद्धिमत्ता की विशेषता है।